मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम

कोड संख्या 828-830

योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम

सैद्धांतिक विषय

योग और जीवन-828

व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग-829

स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा-830

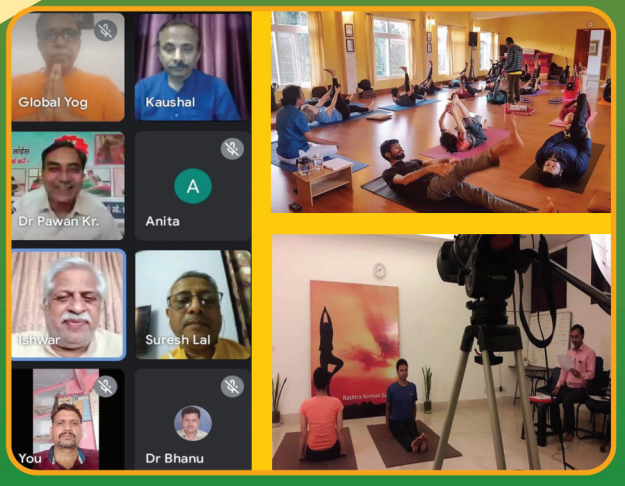

विद्याधनम् सर्वधनं प्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24-25, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर – 62, नोएडा – 201309 (उ.प्र.)

मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम
पाठ्यक्रम कोड 828-830

योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम

सैद्धांतिक विषय

योग और जीवन-828

व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग-829

स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा-830

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24-25, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर - 62, नोएडा -201309 (उ.प्र.)

वेवसाइट: www.nios.ac.in, टॉल फी नंबर 18001809393

योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम : 828-830

आभार

सलाहकार एवं मार्ग-दर्शन समिति

प्रोफेसर सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

श्री एस के प्रसाद
निदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

डॉ. टी एन गिरि
संयुक्त निदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

श्रीमती अनीता नायर
उपनिदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

पाठयक्रम-पाठ्यचर्या

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष, पूर्व विभागाध्यक्ष
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. भानु प्रकाश जोशी
कार्यक्रम संयोजक, योग विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. सुरेश बरनवाल
विभागाध्यक्ष, योग विभाग
देव संस्कृति यूनिवर्सिटी, हरिद्वार

डॉ. रामअवतार शर्मा
योग स्पेशलिस्ट, सामान्य गवर्नमेंट
हॉस्पिटल, जिला नूंह, हरियाणा

आचार्य कौशल कुमार
निदेशक
राष्ट निर्माण योग संस्थान, दिल्ली

डॉ. गोपाल जी
गेस्ट प्रोफेसर (योग)
दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

श्रीमती सरिता शर्मा
निदेशक
योग सरिता फाउंडेशन, दिल्ली

योगाचार्या सीमा सिंह
निदेशक, इंटीग्रल योग केंद्र
वैशाली, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

डॉ. निधीश यादव
सहा. प्रोफेसर, पतंजलि योगपीठ
विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)

डॉ. निधि गर्ग
सहा. प्रोफेसर, संस्कृति विश्वविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

डॉ. स्नेहलता
एसो. प्रोफेसर, वी.वाई.डी.एस.
आयु. मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल
खुर्जा (उ.प्र.)

श्री आदित्य भारद्वाज
संयुक्त सचिव
अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संघ
दिल्ली

डॉ. पवन कुमार चौहान
व.का. अधिकारी (योग एवं प्रा.चि.)
व्या.शि.वि., रा.म.वि.शि.सं., नोएडा (उ.प्र.)

लेखन टीम

डॉ. मलिक राजेंद्र प्रताप
प्रवक्ता, योग विभाग
एम बी गवर्नमेंट पी जी कॉलेज
हल्द्वानी (उत्तराखंड)

डॉ. ऊधम सिंह
सहा. प्रोफेसर, योग विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. निधि गर्ग
सहा. प्रोफेसर
संस्कृति विश्वविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

डॉ. मोनिका हीरा
सी. एम. ओ.
विवेकानंद प्राकृतिक चिकित्सालय, दिल्ली

डॉ. रामअवतार शर्मा
योग स्पेशलिस्ट, सामान्य गवर्नमेंट हॉस्पिटल
जिला नूंह, हरियाणा

डॉ. पवन कुमार चौहान
व.का. अधिकारी (योग एवं प्रा.चि.)
व्या.शि.वि., रा.म.वि.शि.सं., नोएडा (उ.प्र.)

संपादन

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
(पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष), पूर्व विभागाध्यक्ष
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड

आचार्य कौशल कुमार
निदेशक
राष्ट निर्माण योग संस्थान, दिल्ली

डॉ. भानु प्रकाश जोशी
कार्यक्रम संयोजक, योग विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. सुरेश बरनवाल
विभागाध्यक्ष, योग विभाग
देव संस्कृति यूनिवर्सिटी, हरिद्वार

पाठयक्रम डिजाइन, परिवर्धन एवं संयोजन

डॉ. पवन कुमार चौहान
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा)
व्यावसायिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा (उत्तर प्रदेश)

ग्राफिक्स/पिक्चर्स तथा पाठ्यक्रम विकास में सहयोग

डॉ. एस के त्यागी
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराखंड

डॉ. विक्रमादित्य
निदेशक
विवेकानंद हॉस्पीटल, दिल्ली

श्री आदित्य भारद्वाज
संयुक्त सचिव,
अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संघ
दिल्ली

डॉ. सतीश गुप्ता
निदेशक
गांधी योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा केंद
जयपुर (राजस्थान)

अध्यक्ष की कलम से ...

प्रिय शिक्षार्थियों,

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में आपका स्वागत है!

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ एक शैक्षिक बोर्ड है, जो शिक्षा से वंचित प्रत्येक वर्ग को शैक्षिक व व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करता है। आज समाज को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो शिक्षित बनाने के साथ-साथ रोजगार भी उपलब्ध करा सके और देश के युवाओं को कौशल प्रदान कर, उनके कार्यक्षेत्र में सक्षम बना सके। वर्तमान समय की इस मांग को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) का यही प्रयास है कि, प्रमुख रूप से देश के युवा, अपना काम-काज जारी रखते हुए मुक्त शिक्षा के माध्यम से अपनी रूचि अनुसार व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें और व्यवसाय व रोजगार की दिशा में उन्नति कर सकें।

योग भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो प्राचीनकाल से ही हमारी जीवनशैली के साथ जुड़ा है। योग अनुशासन का वह विज्ञान है, जो मनुष्य का सर्वांगीण विकास करता है। इसी आधार पर मनुष्य जीवन जीने की कला सीखता है। स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त रहने के लिए, आज समाज को योग की आवश्यकता है। पिछले एक दशक में विश्व भर के लोगों का ध्यान योग पर गया है और वे चिकित्सा सहित योग के विभिन्न पहलुओं पर अन्वेषण में अनवरत प्रयत्नशील हैं। अभी तक जो तथ्य सामने आए हैं, उनमें योग चिकित्सा प्रमुख है और अधिकांशत: लोग योग चिकित्सा पर विश्वास कर रहे हैं और लाभ उठा रहे हैं। यह बिना औषधि की ऐसी प्रभावी चिकित्सा है, जो स्वास्थ्य प्रदान करने के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास करती है।

मुझे प्रसन्नता है कि, आपने योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा क्षेत्र के अन्तर्गत, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) के योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम का चुनाव किया है। यह दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम है, जो यौगिक चिकित्सा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इसमें प्रथम वर्ष में योग-शिक्षण-प्रशिक्षण तथा द्वितीय वर्ष में योग चिकित्सा को शामिल किया गया है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों में योग शिक्षण-प्रशिक्षण और योग चिकित्सा हेतु कौशल विकसित करना एवं सक्षम बनाना है। ताकि उन्हें सरकारी-गैरसरकारी स्वास्थ्य व योग संस्थानों में रोजगार मिल सके।

यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर देश के विभिन्न विषय विशेषज्ञों और चिकित्सकों द्वारा विकसित किया गया है। इसका श्रेय पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, पूर्व विभागाध्यक्ष, योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड और डॉ. पी. के. चौहान, वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा), राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान को जाता है, जिन्होंने डॉ. भानु जोशी, विभागाध्यक्ष, योग एवं प्रा. चि. विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ. सुरेश बरनवाल, विभागाध्यक्ष, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, आचार्य कौशल कुमार, निदेशक, राष्ट्र निर्माण योग संस्थान, दिल्ली, डॉ. रामअवतार शर्मा, योग स्पेशलिस्ट, सामान्य अस्पताल (हरियाणा सरकार), जिला नूंह, हरियाणा, डॉ. निधीश यादव, सहा. प्रोफेसर पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार आदि प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ मिलकर इस पाठ्यक्रम को विकसित किया।

मैं इस पावन एवं मंगलकार्य में विशेष सहयोग व मार्गदर्शन के लिए प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज और उनकी पूरी टीम को बहुत-बहुत धन्यवाद देती हूँ और आशा करती हूँ कि राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) के साथ आप इसी प्रकार अपना सहयोग बनाएं रखेंगे और अपने बहूमूल्य सुझावों से हमें अनुग्रहीत करते रहेंगे।

पाठ्यक्रम में नामांकन कराने के लिए मैं, शिक्षार्थियों आप सब को बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि, यह पाठ्यक्रम आपके लिए अत्यंत हितकर सिद्ध होगा।

सफल व उज्ज्वल भविष्य की बहुत-बहुत शुभकामनाएं!

प्रोफेसर सरोज शर्मा

अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

शिक्षार्थियों के लिए दो शब्द ...

प्रिय शिक्षार्थियों,

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के व्यावसायिक पाठ्यक्रम – 'योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम' में आपका स्वागत है।

'योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम' योग विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। योग के क्षेत्र में रुचि रखने वाले वे सभी लोग, इस पाठ्यक्रम में भाग ले सकते हैं, जो योग शिक्षण-प्रशिक्षण तथा योग चिकित्सा में कार्य करने के इच्छुक हैं। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इस कार्यक्रम को विकसित किया गया है। यह कार्यक्रम, जहां योग दर्शन, यौगिक संस्कृति तथा मानवीय मूल्य, मानव शरीर, शुद्धि, यौगिक आहार, यौगिक अभ्यास, योग और जीवन, व्यवहारिक मनोविज्ञान एवं योग आदि पर गहन ज्ञान का प्रकाश डालता है, वहीं यौगिक-प्रशिक्षण और जीवन शैली संबन्धित विकारों के यौगिक प्रबंधन पर कौशल एवं दक्षता प्रदान करता है। भारतीय नागरिकों के साथ-साथ विदेशी नागरिक भी इस पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग का बहुत महत्व है। प्राचीनकाल से ही योग हमारी जीवन शैली के अंग के रूप में समाहित रहा है। योग स्वस्थ जीवन जीने की कला है जो मन व शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। योग अनुशासन का विज्ञान है, जो शरीर, मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास कर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। आज योग सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त रहने की दृष्टि से भी योग शिक्षा की समाज में विशेष रूप से मांग है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में, शिक्षार्थियों को योग में प्रशिक्षित करना है। इस कार्यक्रम के सफल शिक्षार्थी, यौगिक संस्थानों, योग प्रशिक्षण केंद्रों, स्वास्थ्य केंद्रों, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सालयों, आयुष के योग केंद्रों, विभिन्न विद्यालयों-महाविद्यालयों, कॉर्पोरेट सेक्टर आदि में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं और योग से चिकित्सा कर सकते हैं।

उक्त पाठ्यक्रम में कुल दस पेपर हैं। प्रथम वर्ष सिद्धांत (थ्योरी) के तीन (1. योग दर्शनशास्त्र एवं क्रियाविज्ञान, 2. मानव शरीर, यौगिक आहार, और शारीरिक शुद्धि, 3. व्यावहारिक योग विज्ञान) और व्यावहारिक प्रशिक्षण के दो (1. प्रायोगिक योग अभ्यास और प्रशिक्षण, 2. योग शिक्षण-प्रशिक्षण कौशल विकास) पेपर शामिल हैं। इसी प्रकार द्वितीय वर्ष में भी सिद्धांत (थ्योरी) के तीन (1. योग और जीवन, 2. व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग, 3. स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा) और व्यावहारिक प्रशिक्षण के दो (1. मानव शरीर पर यौगिक प्रभाव और 2. योग चिकित्सा) पेपर शामिल हैं।

सम्पूर्ण स्व-अनुदेशात्मक अध्ययन सामग्री में शिक्षार्थी सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्रत्येक पाठ सरल व सुव्यवस्थित ढंग से तैयार किया गया है। शिक्षार्थी की पाठ-संबंधी समझ का विश्लेषण करने के लिए प्रत्येक पाठ में पाठगत प्रश्नों को शामिल किया गया है साथ ही कक्षा के बाहर का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी गतिविधियां शामिल की गई हैं।

उक्त पाठ्यक्रम के संबंध में, आपके महत्वपूर्ण सुझावों का हम स्वागत करेंगे। यदि कोई संदेह अथवा समस्या है तो आप नि:संकोच हम से संपर्क कर सकते हैं अथवा हमें लिख सकते हैं।

हमें आशा है कि यह कार्यक्रम आपके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा और आपके कैरियर को सही दिशा प्रदान करेगा। हम आपके सफल और उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं!

शुभकामनाओं सहित,

कार्यक्रम समन्वयक एवं पाठ्यक्रम समिति
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
(व्यावसायिक शिक्षा विभाग)

योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम
पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या

- पाठ्यक्रम शीर्षक : योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (डीवाईएस)
- जॉब रोल : योग एवं प्राकृतिक चिकित्सालयों, अस्पतालों, योग वेलनेस केन्द्रों तथा संबन्धित स्वास्थ्य विभागों में योग अनुदेशक/शिक्षक, सहायक चिकित्सक के रूप में
- स्तर : डिप्लोमा पाठ्यक्रम
- पाठ्यक्रम अवधि : 2 वर्ष

परिचय

भारतीय संस्कृति में योग का बहुत महत्व है। प्राचीनकाल से ही योग, मनुष्य की जीवन शैली का एक अंग रहा है। योग, मन एवं शरीर के बीच सासामंजस्य स्थापित करता है। यह अनुशासन का वह विज्ञान है, जो शरीर, मन व आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है। आज स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त रहने की दृष्टि से, योग विश्व भर में लोकप्रिय हो रहा है। अत: समाज में योग शिक्षा की विषेशरूप से मांग है।

'योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम' योग विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। योग के क्षेत्र में रुचि रखने वाले वे सभी लोग, इस पाठ्यक्रम में भाग ले सकते हैं, जो योग शिक्षण-प्रशिक्षण तथा योग चिकित्सा में कार्य करने के इच्छुक हैं। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इस कार्यक्रम को विकसित किया गया है। यह कार्यक्रम, जहां योग दर्शन, यौगिक संस्कृति तथा मानवीय मूल्य, मानव शरीर, शुद्धि, यौगिक आहार, यौगिक अभ्यास, योग जीवन, आदि पर गहन ज्ञान का प्रकाश डालता है, वहीं यौगिक-प्रशिक्षण और जीवन शैली संबन्धित विकारों के यौगिक प्रबंधन पर कौशल एवं दक्षता प्रदान करता है।

उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षार्थियों को प्रशिक्षित करना है। पाठ्यक्रम को पूरा करने के पश्चात, प्रशिक्षु सक्षम होंगे -

- मानव शरीर विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान की मूलभूत जानकारी रखने में;
- योग सिद्धांतों तथा योग क्रिया विज्ञान को समझा पाने में;
- स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं यौगिक आहार पर प्रकाश डालने में;
- यौगिक संस्कृति की अवधारणाओं को जानने और मानवीय मूल्यों की विवेचना करने में;

- योग के एकीकृत दृष्टिकोण के अनुप्रयोगों को लागू करने में;
- योग कक्षाएं संचालित करने तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण देने में;
- शिक्षार्थियों को योग शिक्षा देने में;
- मानव शरीर पर यौगिक प्रभाव की व्याख्या करने में;
- विशेष रूप से जीवन शैली संबन्धित विकारों के यौगिक प्रबंधन पर कौशल प्राप्त करने एवं दक्षता हासिल करने में।

रोजगार के अवसर

सफल अभ्यर्थी प्रशिक्षण के पश्चात, निम्नांकित संस्थानों में रोजगार के अवसर प्राप्त कर सकेंगे;

- आयुष वेलनेस केंद्र
- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र
- योग संस्थान
- योग प्रशिक्षण केंद्र,
- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र
- संबन्धित चिकित्सालय
- विभिन्न विद्यालय-महाविद्यालय,
- स्वास्थ्य क्लब
- कॉर्पोरेट जगत आदि में रोजगार

प्रवेश योग्यता

- **शैक्षिक योग्यता :** किसी भी मान्यता प्राप्त शिक्षा बोर्ड से 12 वीं कक्षा पास या समकक्ष
- वे सभी अभ्यर्थी, जो एनआईओएस का योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को पूरा कर चुके हैं, वे अभ्यर्थी भी इस पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष (सैद्धांतिक पेपर - 6, 7 व 8 और प्रैक्टिकल पेपर - 9 व 10) में सीधे एडमीशन ले सकते हैं और पाठ्यक्रम पूर्ण करने के पश्चात, दोनों मिलाकर डिप्लोमा प्राप्त कर सकते हैं।
- न्यूनतम उम्र: प्रवेश के समय उम्र 18 वर्ष या अधिक

लक्ष्य समूह

सभी भारतीय तथा विदेशी नागरिक, जो उपर्युक्त पात्रता की शर्तें पूरी करते हों।

पाठ्यक्रम अवधि: दो वर्ष

पीसीपी/प्रशिक्षण : कुल आवश्यक संपर्क घंटे - 1280 घंटे

- प्रथम वर्ष: 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 5 घंटे = 400 घंटे
- द्वितीय वर्ष: 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 5 घंटे = 400 घंटे
- अवधि के दौरान 10-10 दिनों की 06 कार्यशालाएं (अनिवार्य) अर्थात प्रत्येक कार्यशाला 10 दिन × 08 घंटे = 80 घंटे × 06 = 480 घंटे

अध्ययन योजना

- सिद्धांत – 30%
- प्रशिक्षण – 50%
- शिक्षार्थी पोर्टफोलियो – 20%

अनुदेश योजना

- स्व-निर्देशित मुद्रित सामग्री
- एवीआई/अध्ययन केन्द्रों पर सम्पर्क कक्षाओं एवं व्यावहारिक-प्रशिक्षण की सुविधा;
- श्रव्य-दृश्य सामग्री

पाठ्यक्रम में कुल दस विषय/पेपर हैं, जिसमें सिद्धांत (थ्योरी) के छः और व्यावहारिक प्रशिक्षण के चार विषय/पेपर शामिल हैं;

क्र. सं.	विषय/पेपर संख्या	विषय/पेपर का नाम	कोड संख्या
प्रथम वर्ष के सिद्धांतिक विषय/पेपर			
1.	प्रथम विषय/पेपर	योग दर्शनशास्त्र एवं क्रिया विज्ञान (Yoga Philosophy and Physiology)	823
2	द्वितीय विषय/पेपर	मानव शरीर रचना, शारीरिक शुद्धि और यौगिक आहार (Human Body, Cleansing and Yogic Diet)	824
3	तृतीय विषय/पेपर	व्यावहारिक योग विज्ञान (Applied Yogic Science)	825
प्रथम वर्ष के प्रायोगिक विषय/पेपर			
4	चतुर्थ विषय/पेपर	प्रायोगिक योग अभ्यास और प्रशिक्षण (Yogic Practices and Training)	826
5	पंचम विषय/पेपर	योग शिक्षण-प्रशिक्षण कौशल विकास (माइक्रो/मैक्रो-टीचिंग) (Yoga Teaching Skill Development)	827
द्वितीय वर्ष के सिद्धांतिक विषय/पेपर			
1	प्रथम विषय/पेपर	योग और जीवन (Yoga and life)	828
2	द्वितीय विषय/पेपर	व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग (Applied Psychology and Yoga)	829

3	तृतीय विषय/पेपर	स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा (Health Management and Yoga Therapy)	830
द्वितीय वर्ष के प्रायोगिक विषय/पेपर			
4	चतुर्थ विषय/पेपर	मानव शरीर पर यौगिक प्रभाव (Yogic Effect On Human Body)	831
5	पंचम विषय/पेपर	योग चिकित्सा (Yoga Therapy)	832

प्रथम वर्ष के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम-पाठ्यचर्या
(सिद्धांतिक व प्रायोगिक विषय/पेपर)

सैद्धान्तिक विषय -1: योग दर्शनशास्त्र एवं क्रिया विज्ञान

1. योग और योगिक ग्रंथ

- योग-एक परिचय
- अर्थ और परिभाषा
- योग का उद्भव, इतिहास एवं विकास
- योग दर्शन (योग के दर्शनशास्त्र का परिचय)
- मुख्य यौगिक ग्रंथों का सामान्य परिचय
- योग की प्रमुख परम्पराएँ; ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, अष्टांग योग और हठ योग
- योग की उपयोगिता एवं महत्व

2. अष्टांग योग

- अष्टांग योग का परिचय
- यम
- नियम
- आसन
- प्राणायाम
- प्रत्याहार

- धारणा
- ध्यान
- समाधि
- अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्व

3. यौगिक संस्कृति और मूल्य शिक्षा

- यौगिक संस्कृति
- पुरुषार्थः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
- चार आश्रमः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास
- साधन चतुष्टयः विवेक, वैराग्य, षट संम्पती, और मुमुक्षुत्व
- भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य
- आधुनिक काल में मूल्यों का क्षय
- आधुनिक जीवन के संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों की प्रासंगिकता

सैद्धान्तिक विषय - 2: मानव शरीर, यौगिक आहार और शारीरिक शुद्धि

4. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान

- मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान; परिचय
- मानव शरीर, कोशिका, ऊतक एवं अंग
- मानव शरीर का संगठन; अंग तथा संस्थान
- मानव शरीर में संस्थानों (प्रणालियों) का संक्षिप्त परिचय

5. यौगिक आहार

- भोजन, आवश्यकता और महत्व
- आहार, पोषण और स्वास्थ्य में संबंध
- यौगिक आहार की अवधारणा
  - सात्विक,
  - राजसिक,
  - तामसिक
- अम्लीय और क्षारीय आहार (20:80 अनुपात)

- आहार संबंधी अच्छी आदतें
- मिताहार; कब और कितना आहार लें
- आयु, रोग, मौसम और समय के अनुसार यौगिक आहार
- चिकित्सा के रूप में खाद्य पदार्थ और विभिन्न बीमारियों के उपचार में भोजन का महत्व।

6. षट्कर्म (शारीरिक शुद्धि)

- षट्कर्म की अवधारणा
- हठ योग में शुद्धि क्रियाएँ
- धौति – अन्तर्धौति, दन्तधोती, हृदधोति एवं मूलशोधन
- बस्ती
- नेति
- त्राटक
- नौली
- कपालभाती
- षट्कर्म की उपयोगिता एवं महत्व

सैद्धान्तिक विषय –3 : व्यावहारिक योग विज्ञान

7. योगाभ्यास करने से पूर्व-निर्देश, तैयारी और सावधानियाँ

- योगाभ्यास करने से पूर्व की जाने वाली तैयारियां
- योगाभ्यास के पूर्व आवश्यक निर्देश
- साफ, सफाई, स्वच्छता और आवश्यक सावधानियाँ
- आपातकालीन स्थिति में प्रबंधन और प्राथमिक उपचार

8. यौगिक सूक्ष्म क्रियाएँ (व्यायाम)

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाएँ (व्यायाम) और इनका महत्व
- यौगिक क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारी और सावधानियां
- प्रार्थना और यौगिक क्रियाओं के अभ्यास

- पवनमुक्त आसान सीरीज -1
  - हस्त संधि संचालन के अभ्यास
  - पाद संधि संचालन के अभ्यास
  - ग्रीवा संचालन के अभ्यास
- पवनमुक्त आसान सीरीज -2
  - उदर संचालन के अभ्यास; उत्तानपादासन, पाद संचालन, पवन मुक्तासन आदि
- पवनमुक्त आसान सीरीज -3
  - शक्ति बंध के अभ्यास; चक्की चालन, नौका चलासन, रज्जूकर्षण आदि
- विशेष अभ्यास
- विश्रामात्मक आसन और ध्यानात्मक आसन

9. योग आसन

- योग आसन, महत्व एवं उपयोगिता
- अभ्यास से पूर्व तैयारी और सावधानियां
- सूर्यनमस्कार
- विभिन्न योग आसन, क्रिया-विधि, लाभ एवं सावधानियां

10. प्राणायाम, मुद्रा- बंध और ध्यान साधना

- प्राणायाम, प्राण का स्वरूप, प्राणवाही नाड़ियाँ, क्रिया-विधि एवं महत्वपूर्ण निर्देश
- हठयोग में वर्णित प्राणायाम
- प्राणायामों के अभ्यास से पूर्व तैयारी और सावधानियां
- मुद्रा एवं बंध; परिचय, क्रिया विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
- ध्यान साधना; मंत्र, आजपा साधना, अंतरमौन एवं स्वदर्शन
- चक्र
- योग निद्रा

11. योग द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन (सभी के लिए योग)

- समग्र स्वास्थ्य के आयाम
- बच्चों के किशोरों के लिए योग अभ्यास
- युवाओं के लिए योग अभ्यास
- महिलाओं के लिए योग अभ्यास
- बुजुर्गों के लिए योग अभ्यास

व्यावहारिक विषय - 4: प्रायोगिक योग अभ्यास और प्रशिक्षण

- भक्ति योग, कर्म योग आदि पर अभ्यास
- यौगिक आहार
- षटकर्म
- यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं (व्यायाम)
- सूर्य-नमस्कार
- विभिन्न योग आसन
- प्राणायाम
- मुद्रा एवं बंध
- ध्यान साधना
- योग निद्रा
- मंत्र एवं चेंटिंग
- स्वास्थ्य संवर्धन के लिए योग
- योग केंद्रों की विजिट

व्यावहारिक विषय - 5: योग शिक्षण-प्रशिक्षण (माइक्रो/मैक्रो-टीचिंग कौशल विकास) और अभ्यास

- पाठ्यक्रम परिचय एवं संचालन
- प्रशिक्षण केंद्र के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश
- 10-10 दिन की तीन योग कार्यशालाओं का आयोजन
  - **प्रथम योग कार्यशाला में योग अभ्यास तथा सैद्धान्तिक कक्षाएँ**

    (i) प्रशिक्षार्थियों से प्रायोगिक अभ्यास पुस्तिका तैयार कराई जाएं।
  - **द्वितीय योग कार्यशाला में योग अभ्यास तथा सैद्धान्तिक कक्षाओं के लिए सूक्ष्म शिक्षण-प्रशिक्षण कौशल विकास**

    प्रशिक्षार्थियों में मुख्यत: निम्नांकित कौशल विकसित किए जाएं और सूक्ष्म शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए पाठ्-योजना (Lesson Plan) तैयार कराया जाए -

    (i) स्वस्थ एवं स्वच्छ वातावरण

    (ii) प्रदर्शन के सिद्धांत एवं गुणात्मक शिक्षण

    (iii) अवलोकन, सहायता और सुधार

    (iv) अनुशासन, समय-पालन तथा शिक्षार्थियों से व्यवहार

(v) शिक्षण-प्रशिक्षण शैली

(vi) शिक्षकों के गुण

(vii) आवाज प्रक्षेपण,

(viii) शिक्षार्थियों की प्रगति पर प्रोत्साहन, देखभाल और मार्गदर्शन

(ix) कक्षा योजना और संरचना

(x) कक्षा का आयोजन

(xi) सीखने की छात्र की प्रक्रिया

(xii) संरेखण और हाथों से समायोजन

(xiii) सुरक्षा, संरक्षा और सावधानी

(xiv) कक्षा तथा योगाभ्यास के दौरान आपातकालीन स्थितियों में प्रबंधन

(xv) प्राथमिक उपचार

(xvi) योग की जीवन शैली और योग शिक्षक की नैतिकता

(xvii) योग शिक्षण (अध्यापन)

(xviii) प्रशिक्षण के अनुदेश

- **तृतीय योग कार्यशाला में योग अभ्यास तथा सैद्धान्तिक कक्षाओं के लिए बृहद शिक्षण-प्रशिक्षण कौशल विकास**

प्रशिक्षार्थियों के वृहद शिक्षण-प्रशिक्षण की पाठ्-योजना (Lesson Plan) को चेक किया जाए, साथ ही निम्नांकित कौशल विकास का अवलोकन शिक्षक द्वारा कक्षा के दौरान किया जाएं-

(i) स्वस्थ एवं स्वच्छ वातावरण

(ii) प्रदर्शन के सिद्धांत एवं गुणात्मक शिक्षण

(iii) अवलोकन, सहायता और सुधार

(iv) अनुशासन, समय-पालन तथा शिक्षार्थियों से व्यवहार

(v) शिक्षण-प्रशिक्षण शैली

(vi) शिक्षकों के गुण

(vii) आवाज प्रक्षेपण,

(viii) शिक्षार्थियों की प्रगति पर प्रोत्साहन, देखभाल और मार्गदर्शन

(ix) कक्षा योजना और संरचना

(x) कक्षा का आयोजन

(xi) सीखने की छात्र की प्रक्रिया

(xii) संरेखण और हाथों से समायोजन

(xiii) सुरक्षा, संरक्षा और सावधानी

(xiv) कक्षा तथा योगाभ्यास के दौरान आपातकालीन स्थितियों में प्रबंधन

(xv) प्राथमिक उपचार

(xvi) योग की जीवन शैली और योग शिक्षक की नैतिकता

(xvii) योग शिक्षण (अध्यापन)

(xviii) प्रशिक्षण के अनुदेश

द्वितीय वर्ष के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम-पाठ्यचर्या
(सिद्धांतिक व प्रायोगिक विषय/पेपर)

सैद्धान्तिक विषय - 6: योग और जीवन

1. योग का अस्तित्व

- वैदिक काल में योग का स्वरूप एवं अस्तित्व
- उपनिषद् काल में योग का स्वरूप एवं अस्तित्व
- दर्शन काल में योग का स्वरूप एवं अस्तित्व
- आधुनिक काल में योग का स्वरूप एवं अस्तित्व
- योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

2. मुख्य उपनिषद् श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यौगिक जीवन

- श्रीमद्भगवद्गीता में योग
- ज्ञान योग
- भक्ति योग
- कर्म योग

3. पातांजल योग दर्शन

- भारतीय परम्परा में योग का स्वरूप
- योग सूत्र के प्रणेता का परिचय

- योग सूत्र एक उत्तम योग ग्रंथ
- योग सूत्र के अनुसार, योग परिभाषा की विवेचना

4. हठ योग एवं प्रमुख ग्रंथ

- हठयोग का अर्थ, परिभाषा तथा सामान्य परिचय
- चक्र, कुंडलिनी एवं नाड़ी
- हठयोग के अंग – षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, समाधि ।
- हठयोग अभ्यास के लाभ
- अन्य प्रमुख परम्पराएँ एवं ग्रंथ

5. योग एवं स्वास्थ्य

- स्वास्थ्य
- स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण
- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
- साफ, सफाई, स्वच्छता और स्वास्थ्य के साथ परस्पर सम्बंध
- स्वास्थ्य रक्षा के छः नियम
- स्वस्थ-वृत
- दिनचर्या एवं रात्रिचर्या
- ऋतुचर्या
- योग द्वारा समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति

सैद्धान्तिक विषय – 7: व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग

6. व्यावहारिक मनोविज्ञान

- परिचय, अर्थ एवं परिभाषा
- व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्र

7. व्यक्तित्व

- व्यक्तित्व
- व्यक्तित्व का अर्थ, परिभाषाएँ
- व्यक्तित्व का निर्धारण करने वाले कारक

8. मनोवैज्ञानिक समस्याएँ एवं यौगिक प्रबंधन

- स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ
  - तनाव; लक्षण, कारण एवं यौगिक प्रबंधन
  - चिंता; लक्षण, कारण एवं यौगिक प्रबंधन
  - अवसाद; लक्षण, कारण एवं यौगिक प्रबंधन

9. व्यसन

- व्यसन
- प्रकृति, लक्षण, कारक एवं मादक पदार्थों का व्यसन
- समाज में व्यसन की स्थिति
- मादक पदार्थों का दुष्प्रभाव
- व्यसन मुक्ति के लिए यौगिक प्रबंधन

सैद्धान्तिक विषय - 8: स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा

10. यौगिक स्वास्थ्य प्रबंधन

- बाल्यावस्था में यौगिक प्रबंधन (शारीरिक समग्र विकास - शारीरिक और मानसिक)
- किशोरावस्था में यौगिक प्रबंधन
- युवावस्था में यौगिक प्रबंधन
- प्रोढ़ावस्था में यौगिक प्रबंधन
- महिलाओं के लिए यौगिक प्रबंधन
- वृद्धावस्था में यौगिक प्रबंधन
- खिलाड़ियों के लिए यौगिक प्रबंधन
- सुरक्षाबल के लिए यौगिक प्रबंधन
- फिटनेस के लिए योगाभ्यास क्रम
- पर्यटकों के लिए यौगिक प्रबंधन

11. तनाव (स्ट्रेस) में यौगिक प्रबंधन

- छात्रों के लिए तनाव (स्ट्रेस) में यौगिक प्रबंधन
- सामान्यजन एवं परिवार जनों के लिए तनाव (स्ट्रेस) में यौगिक प्रबंधन
- कॉर्पोरेट एवं सेवा सेक्टर में यौगिक प्रबंधन

12. श्वसन एवं हृदय (कोर्डियोवेस्कुलर) संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

- श्वसन विकार - साइनोसाइटिस, टॉन्सिलाईटिस, ब्रोंकाइटिस, अस्थमा आदि में यौगिक चिकित्सा ।
- हृदय (कोर्डियोवेस्कुलर) संबंधी बीमारियाँ - कोरोनरी आर्टिरी डीजीज (सीएडी), अंजाइना, रक्तचाप, इस्केमिक हृदय रोग (आईएचडी), वैरिकाज शिरा, आदि में यौगिक चिकित्सा।

13. पाचन एवं मूत्र-जनन संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

- पाचन तंत्र विकार - अपच, कब्ज, एसीडिटी, आईबीएस, पेप्टिक अल्सर, हर्निया, गुदा रोग आदि में यौगिक चिकित्सा।
- मूत्र तंत्र विकार - नेफ्राइटिस, मूत्रदाह (यूटीआई), किडनी स्टोन, मूत्र रोग आदि में यौगिक चिकित्सा।
- प्रजनन संबंधी बीमारियों में यौगिक चिकित्सा।

14. मस्कुलो-स्केलेटल सिस्टम संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

- मांसपेशियों में दर्द, मांसपेशियों में जकड़न आदि में यौगिक चिकित्सा।
- अर्थराइटिस, सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, पीठ दर्द, कटिस्नायुशूल और स्लिप डिस्क आदि में यौगिक चिकित्सा।

15. तंत्रिका तंत्र संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

- माइग्रेन, वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेंद्रित, पक्षाघात, पार्किंसंस, अल्जाइमर आदि में यौगिक चिकित्सा।

16. जीवन शैली संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

- तनाव (स्ट्रेस), मोटापा, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, मधुमेह, थायराइड संबंधी समस्या, नेत्र, त्वचा संबंधी विकार आदि में यौगिक चिकित्सा।

व्यावहारिक विषय-9: मानव शरीर पर यौगिक प्रभाव

- प्रशिक्षण केंद्र के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश
- 10 दिन की एक योग कार्यशाला का आयोजन
  - योग कार्यशाला में विभिन्न योग अभ्यासों (सूची संलग्न) के माध्यम से शरीर पर पड़ने वाले यौगिक प्रभाव का अनुभव कराया जाए तथा सैद्धान्तिक कक्षाएँ ली जाएँ -
    1. षट्कर्म क्रियाओं (नेति, कुंजल, शंख प्रक्षालन, त्राटक, कपाल भाति आदि) का यौगिक प्रभाव
    2. सूक्ष्म् व्यायाम का यौगिक प्रभाव
    3. सूर्यनमस्कार का यौगिक प्रभाव
    4. योग आसनों का यौगिक प्रभाव
    5. प्राणायामों का यौगिक प्रभाव

6. मुद्राओं का यौगिक प्रभाव
7. बंधों का यौगिक प्रभाव
8. ध्यान साधना का यौगिक प्रभाव
9. योग निद्रा का यौगिक प्रभाव
10. मंत्र उच्चारण का यौगिक प्रभाव

- प्रशिक्षार्थियों से प्रायोगिक अभ्यास पुस्तिका तैयार कराई जाएं।

व्यावहारिक विषय-10: योग चिकित्सा

- प्रशिक्षण केंद्र के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश
- 10-10 दिन की दो योग कार्यशालाओं का आयोजन
  - एक योग कार्यशाला में विभिन्न योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संबन्धित केन्द्रों पर विभिन्न विकारों तथा रोगों (सूची संलग्न) की यौगिक चिकित्सा का प्रशिक्षण दिया जाए-
    1. संधि संबधित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    2. अस्थि संबधित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    3. पेशीय संबन्धित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    4. पाचन संबधित विकारों (अपच, कब्ज व ऐसिडिटी आदि) के लिए यौगिक चिकित्सा
    5. श्वनसन संबधित विकारों (अस्मााकि एवं ब्रोकांइटिस आदि) में यौगिक चिकित्सा
    6. हृदय संबधित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    7. अंत:स्रावी (हॉर्मोनल) व चपापचय विकारों में यौगिक चिकित्सा
    8. तंत्रिका तंत्र संबधित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    9. मूत्र-जननांग तंत्र संबधित विकारों में यौगिक चिकित्सा
    10. प्रजनन तंत्र के लिए यौगिक चिकित्सा
    11. जीवन शैली संबंधी बीमारियों में यौगिक चिकित्सा
    12. महिलाओं से संबंधित रोग के लिए यौगिक चिकित्सा
    13. चिंता एवं अवसाद की स्थिति में यौगिक चिकित्सा
    14. अवसाद की स्थिति में यौगिक चिकित्सा
    15. व्यसन मुक्ति के लिए यौगिक चिकित्सा

द्वितीय योग कार्यशाला में विभिन्न योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संबन्धित केन्द्रों पर विभिन्न विकारों तथा रोगों की यौगिक चिकित्सा कराई जाए। प्रशिक्षणार्थी द्वारा इस इन्टर्नशिप का प्रमाणपत्र, संबन्धित योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा से प्राप्त किया जाए।

निर्देश का माध्यम

पाठयसामग्री हिंदी में उपलब्ध है, जिसे शीघ्र ही अंग्रेजी में उलब्ध कराया जाएगा।

प्रवेश प्रक्रिया

- अभ्यर्थी ऑनलाइन प्रवेश के माध्यम से सीधे भी प्रवेश ले सकता है और मन पसंद प्रशिक्षण केंद्र का चयन कर सकता है।
- प्रवेश वर्ष भर खुला है परंतु प्रवेश की अंतिम तिथि 30 जून व 31 दिसम्बर निर्धारित है।

पाठ्यक्रम शुल्क

पाठ्यक्रम का शुल्क 15,000 रुपये है जिसमें प्रवेश, पाठयसामग्री, और प्रथम बार का परीक्षा शुल्क भी सम्मिलित है। विदेशी नागरिकों के लिए यह शुल्क 700 डॉलर है। जो अभ्यर्थी पहले से एनआईओएस का योग शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम (495-499) कर चुके हैं, वे शेष शुल्क 5000 रुपए मात्र जमा करेंगे।

व्यावसायिक अध्ययन केंद्र आवासीय व्यवस्था, भोजन और अन्य विविध सुविधाओं के लिए, यदि चाहे तो सीमित शुल्क, सुविधा अनुसार अलग से ले सकते हैं।

मूल्यांकन और प्रमाणन के लिए योजना

- परीक्षा में बैठने के लिए, परीक्षार्थी परीक्षा हेतु निर्धारित प्रारूप पर आवेदन करेंगे। पाठ्यक्रम के दोनों घटकों (सिद्धांत और व्यावहारिक) का मूल्यांकन किया जाएगा।
- उत्तीर्ण शिक्षार्थियों को एनआईओएस द्वारा प्रमाणपत्र प्रदान किया जाएगा।

क्र. सं.	योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम के विषय/पेपर	कोड संख्या	अधिकतम अंक व समय		कुल अंक
			अधिकतम अंक	समय (घंटे में)	
प्रथम वर्ष (सैद्धांतिक)					
1.	योग दर्शनशास्त्र एवं क्रिया विज्ञान (Yoga Philosophy and Physiology)	823	50	3	50
2.	मानव शरीर रचना, शारीरिक शुद्धि और यौगिक आहार (Human Body, Cleansing and Yogic Diet)	824	50	3	50
3.	व्यावहारिक योग विज्ञान (Applied Yogic Science)	825	50	3	50

प्रथम वर्ष (प्रायोगिक)					
4.	प्रायोगिक योग अभ्यास और प्रशिक्षण (Yogic practices)	826	200	3	200
5.	योग शिक्षण-प्रशिक्षण कौशल विकास (माइक्रो/मैक्रो-टीचिंग) (Yoga Teaching Skill Development)	827	150	3	150
	कुल योग				**500**
द्वितीय वर्ष (सैद्धांतिक)					
1.	योग और जीवन (Yoga and life)	828	50	3	50
2.	व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग (Applied (Applied Psychology and Yoga)	829	50	3	50
3.	स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा (Health Management and Yoga Therapy)	830	50	3	50
द्वितीय वर्ष (प्रायोगिक)					
4.	मानव शरीर पर यौगिक प्रभाव (Yogic Effect On Human Body)	831	150	3	150
5.	योग चिकित्सा (Yoga Therapy)	832	200	3	200
	कुल योग				**500**

उत्तीर्णता मापदंड

- सिद्धान्त और व्यावहारिक दोनों ही घटकों में परीक्षार्थी को 50% अंक प्राप्त करने होंगे।

विषय सूची

विषय-6: योग और जीवन

1. योग का अस्तित्व 1
2. मुख्य उपनिषद् श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यौगिक जीवन 20
3. पातंजल योग दर्शन 35
4. हठयोग एवं प्रमुख ग्रंथ 48
5. योग एवं स्वास्थ्य 70

विषय-7: व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग

6. व्यावहारिक मनोविज्ञान 95
7. व्यक्तित्व की अवधारणा 108
8. मनोवैज्ञानिक समस्याएँ एवं यौगिक प्रबंधन 123
9. व्यसन और मादक पदार्थों का कुप्रभाव 138

विषय-8: स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा

10. यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन 151
11. तनाव (स्ट्रैस) में यौगिक प्रबन्धन 169
12. श्वसन एवं हृदय (कॉर्डियोवेस्कुलर) सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा 188
13. पाचन एवं मूत्र-जनन सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा 204
14. मस्कुलो-स्केलेटल संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा 225
15. तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा 241
16. जीवनशैली सम्बन्धित रोग एवं उनकी यौगिक चिकित्सा 258

विषय-6: योग और जीवन

1. योग का अस्तित्व
2. मुख्य उपनिषद् श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यौगिक जीवन
3. पातंजल योग दर्शन
4. हठयोग एवं प्रमुख ग्रंथ
5. योग एवं स्वास्थ्य

1

योग का अस्तित्व

प्रिय शिक्षार्थियों, इस सृष्टि के आदि ग्रन्थ के रूप में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद नामक चार वेदों का वर्णन आता है। इसमें ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसमें ज्ञानकाण्ड के लगभग दस हजार मंत्रों का संकलन है। सामवेद गायन का वेद है जिसमें उपासना हेतु गायन मंत्रों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और यज्ञ के मंत्रों का वर्णन है।

चित्र 1.1: वेदों में योग

इसी प्रकार अथर्ववेद में धर्म, आरोग्य और यज्ञ के मंत्रों का वर्णन किया गया है। वेद का अर्थ ज्ञान होता है। संसार की समस्त विद्याओं का मूल वेदों में निहित है। योग विद्या का वर्णन वेद के मंत्रों में किया गया है। इन चारों वेदों से ऋक्, साम, यजु और अथर्व नामक संहिताओं की रचना हुई। इस वैदिक ज्ञान से ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ। उपनिषद् काल के उपरान्त रामायण और महाभारत का महाकाव्य काल आता है। इसके उपरान्त दर्शन काल का वर्णन आता है, जिसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त नामक षड्दर्शनों के साथ-साथ बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन का समावेश होता है। दर्शन काल के उपरान्त मध्यकाल का वर्णन आता है, जिसे भक्ति काल भी कहा जाता है। इस काल में हठयोग के आचार्यों के द्वारा हठ प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता और शिव संहिता आदि ग्रन्थों की रचना हुई। मध्यकाल के उपरान्त, आधुनिक काल का वर्णन आता है। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, स्वामी शिवानन्द, महर्षि अरविन्द आदि योगियों के द्वारा योग परम्परा को आगे बढ़ाया गया। इसके साथ-साथ वर्तमान काल में भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री जी के आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में योग विद्या का प्रचार प्रसार बहुत व्यापक स्तर पर हो रहा है। भारत वर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातक और परास्नातक स्तर पर योग पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। इन पाठ्यक्रमों के द्वारा शिक्षा ग्रहण कर विद्यार्थी सम्पूर्ण विश्व में योग विद्या का प्रचार प्रसार कर रहे हैं।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से अवगत होने के उपरान्त, अब आपके मन में योग के अस्तित्व को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इसके साथ-साथ आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि उपरोक्त ग्रन्थों में योग का वर्णन किस रूप में किया गया है। अतः अब क्रमशः वैदिक काल, उपनिषद् काल, काव्य काल, दर्शन काल, मध्य काल और आधुनिक काल में योग के अस्तित्व पर सविस्तार विचार करते हैं-

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक काल में योग के स्वरूप की विवेचना करने में सक्षम हो सकेंगे;
- उपनिषद् काल में योग के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे;
- दर्शन काल में योग के स्वरूप का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक काल में योग के अस्तित्व की व्याख्या करने में सक्षम हो पायेगें;
- योग में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 वैदिक काल (वेदों) में योग का अस्तित्व

शिक्षार्थियों, योग विद्या सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान रही है। योग विद्या के आदि प्रवर्तक, हिरण्यगर्भ को स्वीकार किया गया गया है। हिरण्यगर्भ से तात्पर्य प्रकाश पुंज अर्थात् परमात्मा से लिया जाता है। चूंकि संसार की समस्त विद्याओं का आदि मूल परमात्मा है अतः योगविद्या का आरम्भ भी ईश्वर से ही हुआ है। यहाँ पर ईश्वर को हिरण्यगर्भ की संज्ञा दी गयी है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए यजुर्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है–

ओउम् हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥

(यजुर्वेद)

जो स्वयं प्रकाशस्वरूप है और जिसने, प्रकाश करने वाले सूर्य, चन्द्रमा आदि को उत्पन्न करके धारण किये हैं। जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वह इस भूमि और सूर्य आदि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

इसी प्रकार ऋग्वेद में ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा गया है–

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्र मूतये॥

(ऋग्वेद)

अर्थात् हम साधक लोग योग मार्ग में उपस्थित होने वाले विघ्नों में और सभी कठिनाईयों में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आवाहन करते हैं। इस प्रकार यहाँ पर योग मार्ग की बाधाओं को दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में मानव शरीर को अयोध्यापुरी की संज्ञा देते हुए कहा गया है–

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अथर्ववेद)

अर्थात् इस मानव शरीर रूपी अयोध्यापुरी में आठ चक्र और नौ द्वार हैं। इसमें आत्मा निवास करता है। इस शरीर के माध्यम से योग विद्या द्वारा नौ द्वारों को बन्द कर अष्टचक्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुए आत्मा को जानना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त मंत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि, वेदों में योग विद्या को विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। वेदों के सार रुप में उपनिषद् साहित्य का वर्णन आता है। अब यह प्रश्न

उत्पन्न होता है कि उपनिषद् साहित्य में योग विद्या का वर्णन किस रूप में किया गया है अत: अब उपनिषद् में योग के अस्तित्व पर विचार करते हैं–

1.2 उपनिषद् काल (उपनिषद्) में योग का अस्तित्व

प्रिय शिक्षार्थियों, वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और आरण्यकों के पश्चात् उपनिषदों का नाम आता है। उपनिषद साहित्य पर वेदों की विचारधारा का पूर्णरूपेण प्रभाव परिलक्षित होता है। उपनिषद साहित्य को ज्ञान काण्ड की संज्ञा दी गई है। इन्हें ''वेदान्त'' भी कहा जाता है। उपनिषद, गीता तथा ब्रह्मसूत्रों को मिलाकर ''प्रस्थानत्रायी'' कहा जाता है। ये तीनों शास्त्र मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि जिस प्रकार चारों ओर से रखी हुई गीली लकड़ी में अग्नि से पृथक् धुँआ निकलता है, ठीक उसी प्रकार इस महान सत्ता (आत्मा) से श्वास के रूप में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इतिहास तथा उपनिषद आदि प्रादुर्भूत हुए हैं। वेदों के अनन्तर ब्राह्मण ग्रंथों और आरण्यकों का नाम आता है। इनमें दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन पाया जाता है। इसी चिन्तन का परमोत्कर्ष आरण्यक ग्रंथों के उपनिषद खण्ड में प्राप्त होता है।

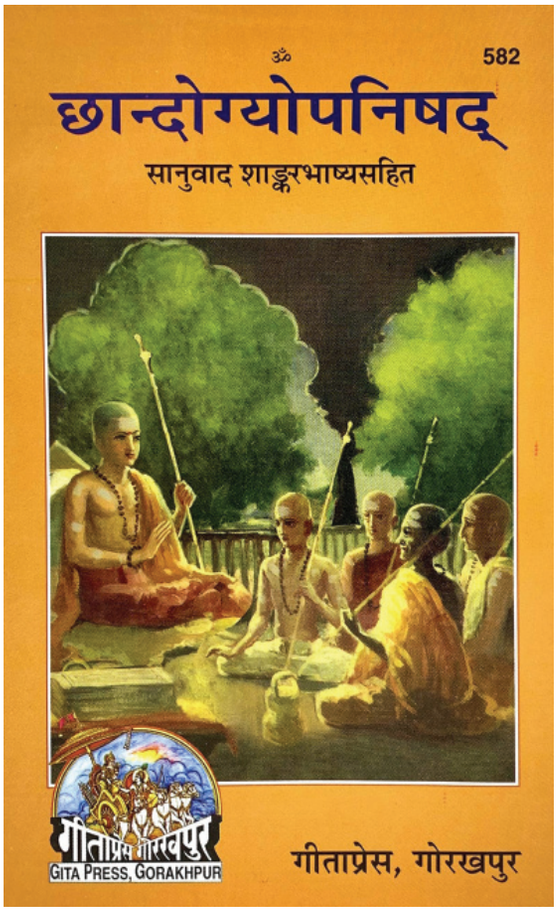

चित्र 1.2: छान्दोग्य उपनिषद

उप का अर्थ = समीप, नि का अर्थ = श्रद्धा और सद् का अर्थ = बैठना होता है। इस प्रकार उपनिषद शब्द का सामान्य अर्थ होता है श्रद्धापूर्वक समीप बैठना। अर्थात् जिसमें गुरु और शिष्य श्रद्धापूर्वक समीप बैठकर ब्रह्म विद्या का चिन्तन करते हैं, वह विद्या उपनिषद् कहलाती है। उपनिषद् शब्द की उत्पत्ति उप और निः उपसर्ग में सद् धातु से होती है। सद् धातु तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है- विवरण, गति और अवसादन। अर्थात् उपनिषद गुरु और शिष्य के मध्य ब्रह्म विद्या का संवाद है।

उपनिषदों में ब्रह्म चिन्तन के साथ-साथ आत्मा, परमात्मा का चिन्तन और योग विद्या पर सविस्तार चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम योग के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए योगशिखोपनिषद में कहा गया है-

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा,
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते॥ (योगशिखोपनिषद)

अर्थात् प्राण और अपान वायु की एकता होना, स्वरजरूपी कुण्डलिनी शक्ति का स्वरेतरुपी आत्मतत्व के साथ मिलन होना, सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर का मिलन होना तथा जीवात्मा और परमात्मा के संयोग की अवस्था ही योग कहलाती है।

इसी प्रकार कठोपनिषद् में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

यदा पञ्चावतिष्ठति ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमा गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो ही प्रभवाप्ययौ॥ (कठोपनिषद)

अर्थात् जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, अन्तर्मुखी हो जाती हैं। ये स्थिर इन्द्रियाँ और मन बुद्धि के साथ मिल जाते हैं, जिससे स्थिर होकर बुद्धि भी किसी प्रकार की क्रिया नहीं करती है, यह अवस्था परमगति कहलाती है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि की इस स्थिर धारणा को ही योग कहा जाता है।

इसी प्रकार मैत्रायण्युपनिषद में कहा गया है-

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते॥ (मैत्रायण्युपनिषद)

अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

योगाभ्यास हेतु उचित स्थान का वर्णन करते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट किया गया है-

समे शुचौ शर्करा वह्निबालुका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुः पीड़ने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

अर्थात् योगाभ्यास के लिए ऐसा स्थान हो जो समतल हो, शुद्ध हो, कंकड़-पत्थर, आग, बालू, जल और शब्द (कोलाहल) से रहित हो। साथ ही योगाभ्यास करने वाल स्थान पर पीने के लिए जल की व्यवस्था हो। इसके साथ-साथ वह स्थान मन के अनुकूल अर्थात् मन को अच्छा लगने वाला हो, वहाँ पर आँखों को पीड़ा देने वाली एवं चित्त को चंचल बनाने वाली वस्तु नहीं होनी चाहिए। ऐसे एकांत स्थान पर जहाँ तेज वायु के झोंके नहीं आते हों, ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने से साधक को शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।

छान्दोग्योपनिषद् में प्राण के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

''सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति।''

अर्थात् **सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन होते हैं।**

प्रिय शिक्षार्थियों, श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के महत्व एवं योग सिद्धि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है-

न तस्य रोगों, न जरा, न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

अर्थात् योग की अग्नि में तपे हुए शरीर में कोई रोग नहीं होता है, ना ही बुढ़ापा आता है और ना ही मृत्यु आती है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद् साहित्य में योग विद्या का सविस्तार वर्णन किया गया है।

यूनिटगत प्रश्न 1.1

सत्य/असत्य बताइये-

1. ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। ( )
2. हिरण्यगर्भ से तात्पर्य प्रकाश पुंज अर्थात् परमात्मा से लिया जाता है। ( )
3. उपनिषदों में योग की चर्चा नहीं मिलती। ( )
4. छन्दोग्योपनिषद् के अनुसार, सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन हो जाती हैं। ( )

1.3 दर्शन काल (दर्शन) में योग का अस्तित्व

दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की दृश् धातु से होती है। दर्शन का सामान्य अर्थ होता है–देखना। इस संसार में सर्वत्र दु:खों को देखकर दु:खों से छूटने और मुक्ति को प्राप्त करने के अर्थ में दर्शन साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ।

''दृश्यते हि अनेन इति दर्शनम्''।

अर्थात् सत् और असत् पदार्थों का ज्ञान ही दर्शन कहलाता है। दर्शन को अंग्रेजी भाषा में फिलॉस्फी कहा जाता है। फिलॉस का अर्थ प्रेम और सोफिया का अर्थ प्रज्ञा अथवा बुद्धि या ज्ञान से होता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा में दर्शन का अर्थ प्रेम के ज्ञान के रूप में लिया गया है।

प्रिय शिक्षार्थियों, आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन इसकी दो प्रमुख शाखाएं हैं। आस्तिक दर्शन में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त नामक छ: दर्शनों का वर्णन आता है, इन छ: दर्शनों को षडदर्शन की संज्ञा दी जाती है जबकि, नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत बौद्ध, जैन और चार्वाक नामक तीन दर्शनों का उल्लेख आता है। इन सभी दर्शनों में योग विद्या का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इनमें से योग दर्शन विशुद्ध रुप से योग विद्या से सम्बन्धित दर्शन है जिसमें महर्षि पतंजलि के द्वारा अष्टांग योग की साधना से चित्त की वृत्तियों का स्थिर करने का उपदेश किया गया है। इसके साथ-साथ सांख्य दर्शन में योग विद्या को इस प्रकार वर्णित किया गया है–

1.3.1 सांख्य दर्शन में योग का अस्तित्व

सांख्य दर्शन महर्षि कपिल के द्वारा रचित दर्शन है। सांख्य दर्शन से तात्पर्य है– संख्याओं का ज्ञान अथवा संख्याओं का विश्लेषण। सांख्य दर्शन पुरूष और प्रकृति नामक दो तत्वों को अनादि और नित्य मानता है। इस प्रकार सांख्य दर्शन द्वैतवाद की मान्यता रखता है। सांख्य शास्त्र के अनुसार पुरूष अर्थात् आत्मा चेतन, अविकारी, ज्ञानस्वरूप और संख्या में अनेक है, जबकि इसके विपरीत प्रकृति जड़, विकारी और संख्या में एक है। पुरूष और प्रकृति के अतिरिक्त सांख्य प्रकृति के 23 विकारों का वर्णन भी करता है। इस प्रकार सांख्य शास्त्र में कुल पच्चीस तत्वों का वर्णन किया गया है। परन्तु सामान्य अवस्था में पुरूष को इन तत्वों का ज्ञान नहीं होता है और वह इन तत्वों के साथ जुड़कर दु:खों और कष्टों से घिरा हुआ रहता है। पुरूष को इन तत्वों का ज्ञान होने पर, वह अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को जानकर इन तत्वों से स्वयं को पृथक कर, मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

शिक्षार्थियों, सांख्य दर्शन प्रकृति की अव्यक्त और व्यक्त रूप में, दो अवस्थाओं को मानता है। प्रकृति की अव्यक्त अवस्था को मूल प्रकृति अथवा प्रलय अवस्था कहा गया है जबकि व्यक्त अवस्था को सांख्य शास्त्र में सृष्टि कहा गया है। इसके साथ-साथ सांख्य शास्त्र में सृष्टि प्रक्रिया को सविस्तार समझाया गया है। सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल प्रकृति को त्रिगुणात्मक स्वीकार करते हैं। अर्थात् सत्व, रज और तम नामक तीन गुण सृष्टि में विद्यमान रहते हैं। इन तीन गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है जबकि इन तीन गुणों की विकृत अवस्था ही विकृति अथवा प्रलय अवस्था है।

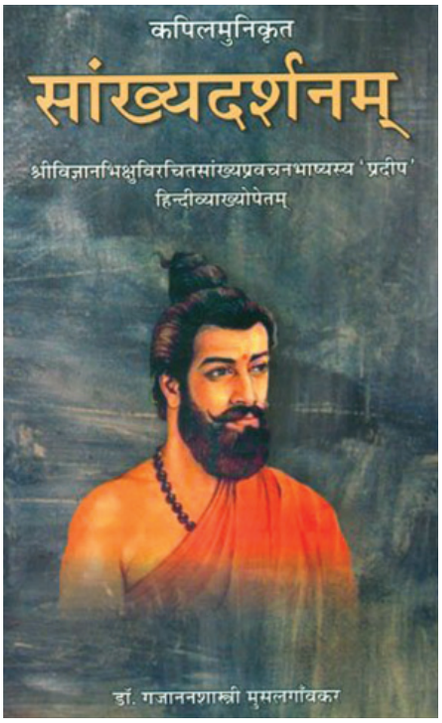

चित्र 1.3: सांख्य दर्शन

प्रलयावस्था के उपरान्त, सर्वप्रथम प्रकृति और पुरूष का संयोग होता है। इस अवस्था में सत्वगुण के प्रभाव से महतत्व अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् रजोगुण के प्रभाव से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच तन्मात्राएं और मन की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अहंकार से सोलह तत्व उत्पन्न होते हैं। आगे चलकर पंच तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द तन्मात्रा से आकाश तत्व, स्पर्श तन्मात्रा से वायु तत्व, रुप से अग्नि तत्व, रस से जल तत्व और गन्ध से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है। इन पंच महाभूतों से सम्पूर्ण दृश्य जगत की उत्पत्ति होती है।

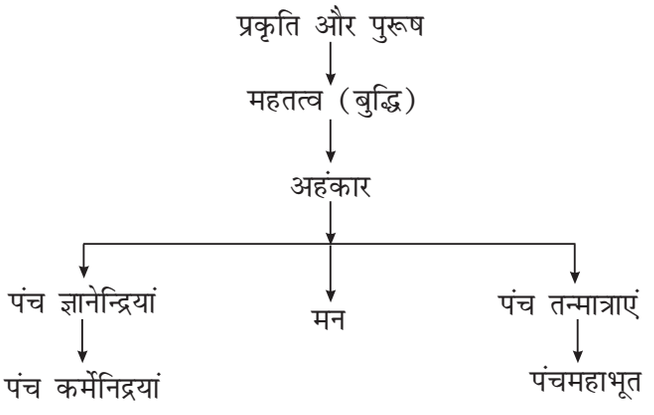

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

सांख्य दर्शन में अभ्यास और वैराग्य से, ज्ञान के उदय का उपदेश किया गया है। सांख्यकार महर्षि कपिल मुनि के अनुसार जब तक विषयों के प्रति राग बना रहता है तब तक अज्ञान की अवस्था बनी रहती है, किन्तु विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने पर ज्ञान का भी उदय हो जाता है। ज्ञान से ही मनुष्य मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है।

इस प्रकार सांख्य दर्शन में, महर्षि कपिल मुनि द्वारा, सृष्टि प्रक्रिया को सविस्तार समझाया गया है और इसके साथ-साथ सत्कार्यवाद के सिद्धान्त को वर्णित किया गया गया है। कपिल मुनि अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान प्राप्ति से मुक्ति अर्थात् कैवल्य का उपदेश करते हैं। अब योग दर्शन में वर्णित योग के स्वरूप पर विचार करते हैं-

1.3.2 योग दर्शन में योग का अस्तित्व

शिक्षार्थियों, योग दर्शन महर्षि पतंजलि के द्वारा रचित दर्शन है। योग दर्शन में विशुद्ध रूप से, योग विद्या का वर्णन, महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है। महर्षि पतंजलि ने 195 योग सूत्रों के माध्यम से योग विद्या का वर्णन किया है। योग सूत्रों में चतुर्व्यूहवाद का वर्णन किया गया है। चतुर्व्यूहवाद के अन्तर्गत हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय का वर्णन किया गया है।

योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, निम्न कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग की साधना, मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग और उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। अष्टांग योग का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि॥

(पातंजल योग सूत्र)

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये योग के आठ अंग हैं।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥ (पातंजल योग सूत्र)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर की शरणागति यह तीनों क्रियायोग है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ (पातंजल योग सूत्र)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निरोध होता है और चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था ही योग है।

इस प्रकार योग दर्शन में निम्न, मध्यम और उच्च कोटि के साधकों के लिए क्रमशः अष्टांग योग, क्रियायोग और अभ्यास-वैराग्य का उपदेश महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है।

1.3.3 वेदान्त दर्शन में योग का अस्तित्व

वेदान्त दर्शन में बादरायण मुनि के द्वारा रचित ब्रह्म सूत्रों को लिया गया है। इस दर्शन के प्रर्वतक आदि शंकराचार्य हैं। वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना बहिरंग और अन्तरंग साधनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ज्ञानयोग साधना के चार बहिरंग साधन होते हैं- विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व। नित्य अर्थात् सदैव रहने वाला और अनित्य अर्थात् नष्ट होने वाले पदार्थों का विवेचन करने वाली निश्चयात्मक बुद्धि का होना, विवेक कहलाता है। वैराग्य का अर्थ सांसारिक सुखों और विषय भोगों के प्रति अनासक्ति के भाव रखने से होता है। षट्सम्पत्ति के अन्तर्गत निम्न छः साधनों का उल्लेख वेदान्त दर्शन में किया गया है-

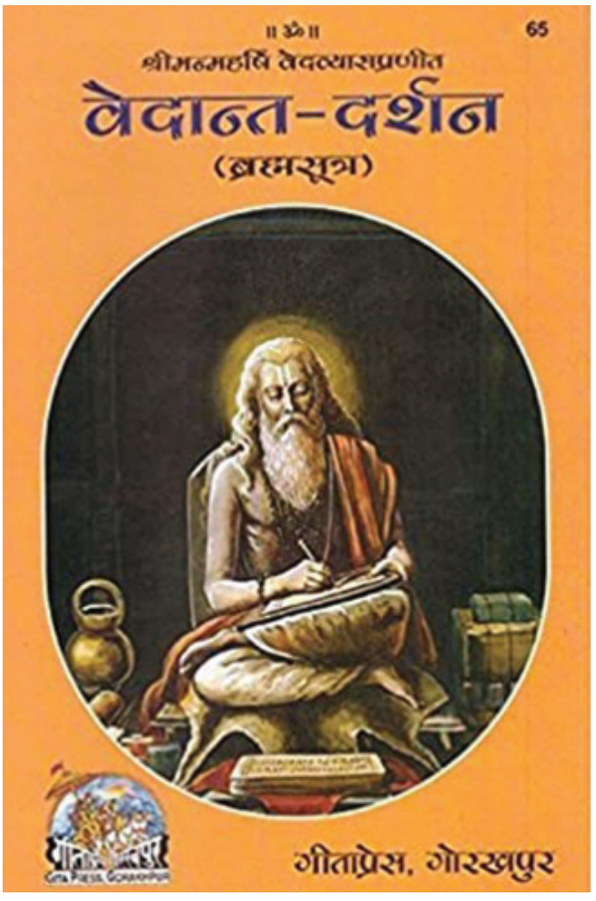

चित्र 1.4: वेदान्त दर्शन में योग का अस्तित्व

(क) **शम :** शम का अर्थ होता है- शान्त करना। इन्द्रियाँ सदैव विषयों की ओर दौड़ती रहती हैं किन्तु इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकना, शम कहलाता है।

(ख) **दम :** दम का अर्थ होता है- दमन करना। इन्द्रियों को वश में करते हुए अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास दम कहलाता है।

(ग) **उपरति :** सांसारिक विषय भोगों के प्रति वैराग्य के भावों को दृढ़ बनाना, उपरति कहलाता है अर्थात् स्वयं को सांसारिक भोगों से ऊपर उठाना, उपरति कहलाता है।

(घ) **तितिक्षा :** तितिक्षा को तपस्या के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। साधना में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों को सहन करना, तितिक्षा कहलाता है।

(ङ) **श्रद्धा : योग साधक** श्रद्धा के अभाव में योग साधना के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता है। शास्त्रों के प्रति और गुरुवाक्यों को विश्वासपूर्वक ग्रहण करना, श्रद्धा कहलाता है।

(च) **समाधान :** ज्ञान योग साधना का महत्वपूर्ण अंग, जिसमें संशय का त्याग करते हुए चित्त को निरन्तर ब्रह्म में स्थापित किया जाता है, समाधान कहलाता है।

उपरोक्त बहिरंग के साथ-साथ निम्न चार अन्तरंग साधनों का वर्णन भी वेदान्त दर्शन में किया गया है-

(क) **श्रवण :** वेद और शास्त्रों का अध्ययन करना एवं गुरू के उपदेशों को सुनना, श्रवण कहलाता है।

(ख) **मनन :** शास्त्रों का अध्ययन एवं गुरू उपदेशों से प्राप्त ज्ञान का चिन्तन करना, मनन कहलाता है।

(ग) **निदिध्यासन :** निदिध्यासन से अभिप्राय: आत्मसात करने से होता है। वेदान्त दर्शन में मानसिक स्थिरता, एकाग्रता और ध्यान को निदिध्यासन के अर्थ में लिया गया है।

(घ) **साक्षात्कार अथवा समाधि :** उपरोक्त योगांगों का अभ्यास करते हुए साधक, योग के शीर्ष सोपान ईश्वर साक्षात्कार अथवा समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है।

इस प्रकार वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना का सविस्तार वर्णन किया गया है। उपरोक्त अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि दर्शन साहित्य में योग के स्वरुप को भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से वर्णित किया गया है जिन्हें, सामान्य भाषा में योग के मार्ग कहा जाता है।

1.4 आधुनिक काल में योग का अस्तित्व

दर्शन साहित्य में योग के स्वरूप को जानने के बाद अब, आधुनिक काल में योग के स्वरूप पर विचार करते हैं-

शिक्षार्थियों, आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, स्वामी कुवल्यानन्द और स्वामी शिवानन्द आदि महान योगियों ने योग परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योग साधन के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया, जबकि स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने राजयोग और आधुनिक वेदान्त पर बल दिया। महर्षि अरविन्द, आधुनिक काल के प्रसिद्ध योगी हुए। महर्षि अरविन्द ने पाण्डिचेरी

में अरविन्द आश्रम की स्थापना की। स्वामी कुवल्यानन्द के द्वारा योगाभ्यास के प्रभावों का मापन वैज्ञानिक स्तर पर करने के लिए, प्रथम यौगिक प्रयोगशाला की स्थापना महाराष्ट्र में लोनावाला नामक स्थान पर, सन 1924 में की गयी। स्वामी कुवल्यानन्द ने इस संस्थान को ''कैवल्यधाम'' का नाम दिया। इसी प्रकार मलाया में चिकित्सा कार्य करने के बाद वापिस भारत आए और स्वामी शिवानन्द जी ने ऋषिकेश में सन 1936 में ''दिव्य जीवन संघ'' की स्थापना की।

आधुनिक काल में महर्षि महेश योगी ने, योग विद्या का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण विश्व में किया। महर्षि महेश योगी के द्वारा हिमालय पर, दो वर्षों तक मौन साधना करने के उपरान्त भावातीत ध्यान की शिक्षा दी गयी। महर्षि महेश योगी के द्वारा प्रतिपादित भावातीत ध्यान सम्पूर्ण विश्व में एक आन्दोलन के रुप में चला।

इस प्रकार वेदों और उपनिषदों से ज्ञान गंगा की अविरल धारा, विभिन्न योगियों और महापुरूषों के प्रयासों से सम्पूर्ण विश्व में बहती जा रही है। इसी क्रम में, भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आवाहन किया गया। इस आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को 177 देशों के सदस्यों के द्वारा 21 जून को ''**अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस**'' मनाने का प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रकार 21 जून 2015 को सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर प्रथम **अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस** मनाया गया।

यूनिटगत प्रश्न 1.2

रिक्त स्थान भरें-

1. दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की ..... धातु से हुई है।
2. दर्शन की दो प्रमुख शाखाएं हैं- आस्तिक दर्शन और .....
3. प्रकृति एवं पुरुष के संयोग पर सत्वगुण के प्रभाव से ..... उत्पन्न होता है।
4. महर्षि पतंजलिकृत योग दर्शन में कुल ..... सूत्र हैं।
5. शम का अर्थ है- .....।
6. महर्षि अरविन्द ..... काल के सुप्रसिद्ध योगी हुए।

1.5 योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

शिक्षार्थियों, योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप कैसा है, आइए जानें-

ईश्वर की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। ईश्वर को भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौड (GOD), शिव आदि नामों से जाना जाता है। वास्तव में ये सभी नाम ईश्वर

के कार्य विशेष अथवा विशेषणों को अभिव्यक्त करते हैं। ईश्वर के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो, ईश्वर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की ईश् धातु से हुई है। इस ईश् धातु पर वच्य प्रत्यय लगाने से ईश्वर शब्द की उत्पत्ति होती है। **ईश् धातु का अर्थ होता है- नियंत्रित करना,** अर्थात् **इस ब्रह्माण्ड अथवा संसार को नियंत्रित करने वाली सत्ता अथवा शक्ति के अर्थ के रूप में ईश्वर का वर्णन किया गया है।** कुछ स्थानों पर ईश्वर के लिए ईश अर्थात् नियंता शब्द प्रयुक्त किया जाता है। ईश्वर शब्द के अर्थ को जानने के उपरान्त, अब आपके मन में ईश्वर के पयार्यवाची शब्दों भगवान, परमात्मा, देवता आदि को जानने की जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। अत: अब हम इन शब्दों पर विचार करते हैं।

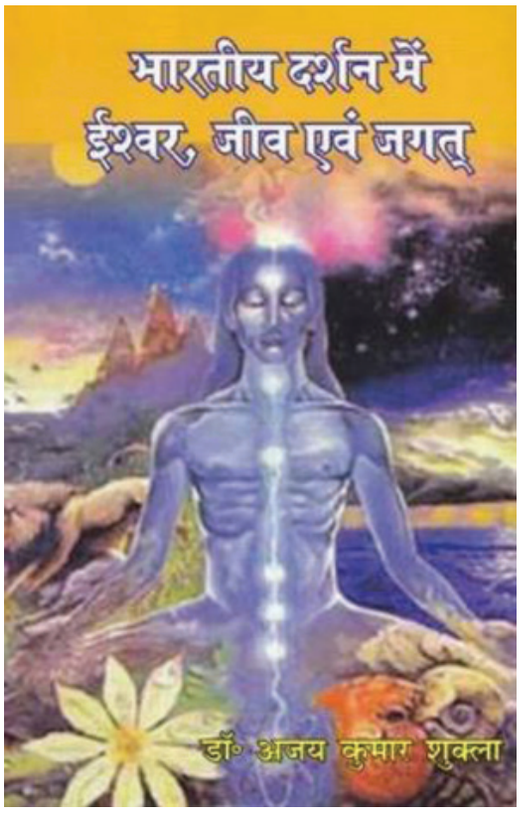

चित्र 1.5: योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

भगवान शब्द भग और वान से मिलकर बना है। भग का अर्थ ऐश्वर्य और वैभव से होता है और वान का अर्थ, धारण करने से लिया जाता है अर्थात् समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभव से युक्त परम सत्ता को भगवान की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। सामान्यत: लोक व्यवहार में भी समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभवशाली विशेष आदरणीय पुरुषों के लिए भगवान शब्द का प्रयोग किया जाता है। सभी आत्माओं में विशेष परम आत्मा, परमात्मा कहलाती है। देने वाला देव कहलाता है, चूंकि ईश्वर संसार के सभी प्राणियों को अन्न, जल, धूप एवं वायु आदि प्रदान करता है, ईश्वर के इस गुण विशेष के कारण, ईश्वर को देव अथवा देवता की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के तीन प्रमुख वाचक शब्द हैं, जो ईश्वर के तीन गुण विशेषों को अभिव्यक्त करते हैं। अत्यन्त विशाल सृष्टि की रचना अर्थात् उत्पत्ति करने के कारण, ईश्वर को ब्रह्मा की संज्ञा दी जाती है, सृष्टि का पालन अर्थात् सृष्टि को चलाने और नियमन करने के कारण ईश्वर की संज्ञा विष्णु (पालनहार) हो जाती है तथा सृष्टि का संहार अर्थात् विनाश करने के कारण ईश्वर को महेश की संज्ञा दी जाती है।

उत्पन्न करने वाले को अंग्रेजी भाषा में जेनेरेटर (Generator), चलाने अर्थात् नियमन करने वाले को आपरेटर (Operator) तथा मिटाने अर्थात् नष्ट करने वाले को डेस्ट्रायर (Destroyer) कहा जाता है, ईश्वर के इन्हीं तीन गुणों को प्रकट करने वाले, तीन शब्दों से गौड शब्द की उत्पत्ति होती है और अंग्रेज़ी भाषा में ईश्वर को गौड (GOD) शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

ईश्वर के लिए शिव शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। शिव का अर्थ कल्याण करने से होता है अर्थात् सब जीवों का कल्याण करने के कारण, ईश्वर को शिव की संज्ञा दी जाती है। शिव का अर्थ अच्छे अथवा उत्तम से भी होता है, चूंकि ईश्वर मानव को अच्छी प्रेरणा, उत्तम संकल्प एवं सन्मार्ग की दिशा प्रदान करता है अतः ईश्वर को शिव के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इस प्रकार भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश व परमेश्वर आदि शब्द ईश्वर की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं। इन शब्दों से एक ओर जहाँ ईश्वर के गुणों एवं महिमा का ज्ञान होता है तो वहीं दूसरी ओर ईश्वर की सर्वव्यापकता की अनूभूति भी होती है। यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ईश्वर जिस गुण से युक्त होता है, उसी संज्ञा को प्राप्त करता है। अब योग दर्शन में वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर विचार करते हैं-

शिक्षार्थियों, योगी साधक पुरुष का परम ध्येय, ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसमें लीन होना (समाधि) योग साधना की उच्च अवस्था है। योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, योग दर्शन ग्रन्थ के प्रथम अध्याय (पहले पाद) में ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।

(पा. यो. सू. 1/24)

अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मफलों तथा इनके भोगों के संस्कारों से रहित जीवों से भिन्न स्वभाव वाला चेतन विशेष ईश्वर है।

उपरोक्त योगसूत्र में महर्षि पतंजलि पुरुष (मनुष्य) से भिन्न ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्य का जीवन अविद्या, अस्मिता नामक पंच क्लेशों से घिरा रहता है, परन्तु वह पुरुष विशेष जो इन क्लेशों से मुक्त रहता है, ईश्वर कहलाता है। मनुष्य शुभ, अशुभ एवं मिश्रित कर्मों में लिप्त रहता है तथा इन कर्मों के परिणामस्वरूप प्राप्त सुख व दुख नामक फलों का भोग करता है। इसके साथ-साथ कर्मफलों का भोग करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न

संस्कारों अर्थात् वासनाओं से युक्त रहता है, किन्तु वह पुरुष विशेष जो जीवों के इन स्वभावों से परे अर्थात् भिन्न है, ईश्वर कहलाता है।

ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि पुनः कहते हैं

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्॥ (पा. यो. सू. 1/25)

अर्थात् ईश्वर में निरतिशय सर्वज्ञता का बीज है।

इस संसार में भिन्न भिन्न ज्ञान के स्तर के मनुष्य होते हैं, कोई अल्पज्ञानी होता है तो कोई सामान्य ज्ञान रखता है, जबकि कोई बहुत ज्ञानी होता है। मनुष्य के ज्ञानों के इस स्तर को सातिशय ज्ञान कहा जाता है, किन्तु इस सातिशय ज्ञान से परे, वह ईश्वर, निरतिशय ज्ञान से युक्त है। सरल शब्दों में ईश्वर, **अनन्त ज्ञान के भण्डार से युक्त है। ईश्वर के ज्ञान का कोई आदि और अन्त नहीं है, वह सर्वज्ञ अर्थात सब कुछ जानने वाला है। सर्वज्ञता के ज्ञान रखने वाले ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए महर्षि पतंजलि आगे लिखते हैं** –

स एश पूर्वेशामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ (पा. यो. सू. 1/26)

अर्थात् वह ईश्वर भूत भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सब गुरुओं का भी गुरु है।

पूर्वसूत्र में समझाया गया है कि, ईश्वर सर्वज्ञ है। इस सूत्र में महर्षि पतंजलि स्पष्ट करते हैं कि वह सर्वज्ञ ईश्वर सब विद्वान ज्ञानी जनों का गुरु है। इस संसार में अनेक प्रकार की विद्याओं एवं ज्ञानों को धारण करने वाले गुरु हैं किन्तु ईश्वर भूत, भविष्य और वर्तमान के सब गुरुओं का भी महान गुरु है। इस महान गुरु ईश्वर की कृपा से ही, संसार के सब गुरु ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ईश्वर के स्वरुप को समझाने की श्रृंखला ईश्वर के गुणों एवं उसकी महिमा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अब यह प्रश्न उपस्थित होना स्वभाविक ही है कि, ईश्वर को हम किस नाम से जानें? ईश्वर का सर्वोत्तम वाचक क्या हो सकता है? हम ईश्वर को किस नाम से पुकारे? इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि आगे योग सूत्र में लिखते हैं –

तस्य वाचक प्रणवः॥ (पा. यो. सू. 1/27)

अर्थात् **उस ईश्वर का बोधक शब्द (नाम) प्रणव (ओउम्) है।**

यद्यपि ईश्वर के विशेषणों (विशेषताओं) के आधार पर, ईश्वर को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है, किन्तु ईश्वर का सबसे प्रमुख वाचक अर्थात् नाम ओउम् है। **ओउम् शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की तीन धातुओं अकार, उकार एवं मकार से होती है।** अकार धातु उत्पन्न करने के अर्थ में, उकार धातु चलाने के अर्थ में एवं मकार धातु विनाश के अर्थ में प्रयुक्त होती है, अर्थात् ओ३म् शब्द अपने अन्दर ईश्वर के तीन मूल गुणों, विशेषताओं एवं कार्यों को समाहित किए होता है। ईश्वर सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, वही पालनकर्ता है तथा वह ईश्वर

ही सृष्टि का संहारकर्ता है इसलिए ईश्वर का सर्वोत्तम वाचक ओ३म् है। मनुष्यों को ईश्वर का चिन्तन मनन करते हुए उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना में लीन रहना चाहिए, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं-

तज्जपस्तदर्थभावनम्।। (पा. यो. सू. 1/28)

अर्थात् उस ईश्वर के वाचक ओ३म् शब्द का जप और ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव का चिन्तन करना चाहिए।

मनुष्य जिस विषय का चिन्तन एवं मनन करता है, वह उसी के गुणों को धारण करता हुआ उस जैसा ही बन जाता है। योग साधक का ध्येय, ईश्वर होता है। वह ईश्वर का मनन चिन्तन उसके प्रमुख वाचक ओ३म् से करता हुआ उसके गुणों को धारण करता है तथा उसके समान ही व्यवहार करता है।

आधुनिक भौतिकवादी जीवन में मनुष्य केवल, भौतिक पदार्थों एवं विषयों का ही चिन्तन मनन करता है तथा इसके परिणामस्वरूप वह मानसिक तनाव एवं अशान्ति से ग्रस्त हो जाता है जबकि महर्षि पतंजलि ईश्वर के वाचक ओ३म् का जप एवं चिन्तन करने का उपदेश करते हैं जिससे मनुष्य अपने स्वरूप को ईश्वर के साथ जोड़ लेता है तथा ईश्वर के साथ जुड़कर वह परम शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति करता है। इसके साथ-साथ ईश्वर का जप व चिन्तन करने से ईश्वर के गुणों का समावेश उस साधक पुरुष के चरित्र में होने लगता है। इसके साथ- साथ ईश्वर मनन चिन्तन के प्रभावों को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।। (पा. यो. सू. 1/29)

अर्थात् उस ईश्वर प्रणिधान से परमात्मा का साक्षात्कार, जीवात्मा का साक्षात्कार और विघ्नों का अभाव होता है।

ईश्वर का मनन चिन्तन एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव अर्थात् ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से जीवात्मा, परमात्मा के समीप पहुँचकर, परमात्मा का साक्षात्कार करती है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर जीवात्मा को आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति होती है एवं आत्मसाक्षात्कार होने पर, जीवात्मा के विघ्नों का अभाव अर्थात् विनाश होता है।

इस प्रकार योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि ईश्वर के स्वरूप को सविस्तार समझाते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 1.3

1. ईश्वर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की किस धातु से हुई है?

.....

2. भगवान शब्द का अर्थ बताइए।

.....

3. सत्य/असत्य बताइए-

(क) महर्षि पतंजलि के अनुसार ईश्वर, भूत, भविष्य और वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सब गुरुओं का भी गुरु है। ( )

(ख) ईश्वर का बोधक शब्द ओ३म् है। ( )

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि-

- योग का अस्तित्व आदिकाल से ही है।
- संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथों-वेदों, उपनिषदों, दर्शनों आदि में योग का उल्लेख मिलता है, जो योग के अस्तित्व से परिचित कराता है।
- योग विद्या के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ अर्थात् परमात्मा को स्वीकार किया गया है।
- वैदिक काल में योग विद्या को वेदों के अंतर्गत निहित किया गया है।
- उपनिषद् का सामान्य अर्थ- श्रद्धापूर्वक समीप बैठने से है। अर्थात् गुरू और शिष्य श्रद्धा पूर्वक समीप बैठकर विद्या का चिन्तन करते हैं।
- उपनिषदों में ब्रह्म् चिन्तन के साथ-साथ, आत्मा-परमात्मा का चिन्तन और योग विद्या पर सविस्तार चर्चा की गई है।
- दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'दृश्' धातु से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ है- देखना।
- दर्शन की दो प्रमुख शाखाएँ हैं- आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन।
- आस्तिक दर्शनों में छः दर्शनों का उल्लेख है, और नास्तिक दर्शन में तीन।
- सांख्य दर्शन महर्षि कपिल के द्वारा रचित दर्शन है। सांख्य दर्शन से तात्पर्य है- संख्याओं का ज्ञान अथवा संख्याओं का विश्लेषण। सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति नामक दो तत्वों को अनादि और नित्य मानता है। इस प्रकार सांख्य दर्शन द्वैतवाद की मान्यता रखता है।
- योग दर्शन महर्षि पतंजलि के द्वारा रचित दर्शन है। योग दर्शन में विशुद्ध रूप से, योग विद्या का वर्णन, महर्षि पतंजलि के द्वारा किया गया है। महर्षि पतंजलि ने 195 योग सूत्रों के माध्यम से योग विद्या का वर्णन किया है।

- योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि, निम्न कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग की साधना, मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग और उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करने का उपदेश करते हैं।
- वेदान्त दर्शन में बादरायण मुनि के द्वारा रचित ब्रह्म सूत्रों को लिया गया है। इस दर्शन के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य हैं। वेदान्त दर्शन में ज्ञानयोग साधना बहिरंग और अन्तरंग साधनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ज्ञानयोग साधना के चार बहिरंग साधन होते हैं- विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व।
- आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द, स्वामी कुवल्यानन्द और स्वामी शिवानन्द आदि महान योगियों ने योग परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योग साधन के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया गया, जबकि स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने राजयोग और आधुनिक वेदान्त पर बल दिया।
- महर्षि अरविन्द, आधुनिक काल के प्रसिद्ध योगी हुए। महर्षि अरविन्द ने पाण्डिचेरी में अरविन्द आश्रम की स्थापना की।
- स्वामी कुवल्यानन्द के द्वारा योगाभ्यास के प्रभावों का मापन वैज्ञानिक स्तर पर करने के लिए, प्रथम यौगिक प्रयोगशाला की स्थापना महाराष्ट्र में लोनावाला नामक स्थान पर, सन् 1924 में की गयी। स्वामी कुवल्यानन्द ने इस संस्थान को ''कैवल्यधाम'' का नाम दिया।
- भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आवाहन किया गया। इस आवाहन पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को 177 देशों के सदस्यों के द्वारा 21 जून को ''**अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस**'' मनाने का प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रकार 21 जून 2015 को सम्पूर्ण विश्व समुदाय के द्वारा मिलकर प्रथम **अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस** मनाया गया।
- ईश्वर की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। ईश्वर को भगवान, परमात्मा, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौड (GOD), शिव आदि नामों से जाना जाता है। वास्तव में ये सभी नाम ईश्वर के कार्य विशेष अथवा विशेषणों को अभिव्यक्त करते हैं।
- ब्रह्मा, विष्णु और महेश ईश्वर के तीन प्रमुख वाचक शब्द हैं, जो ईश्वर के तीन गुण विशेषों को अभिव्यक्त करते हैं। अत्यन्त विशाल सृष्टि की रचना अर्थात् उत्पत्ति करने के कारण, ईश्वर को ब्रह्मा की संज्ञा दी जाती है, सृष्टि का पालन अर्थात् सृष्टि को चलाने और नियमन करने के कारण ईश्वर की संज्ञा विष्णु (पालनहार) हो जाती है तथा सृष्टि का संहार अर्थात् विनाश करने के कारण ईश्वर को महेश की संज्ञा दी जाती है।
- योगी साधक पुरुष का परम ध्येय, ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसमें लीन होना (समाधि) योग साधना की उच्च अवस्था है।

- योगसूत्र में महर्षि पतंजलि पुरुष (मनुष्य) से भिन्न ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्य का जीवन अविद्या, अस्मिता नामक पंच क्लेशों से घिरा रहता है, परन्तु वह पुरुष विशेष जो इन क्लेशों से मुक्त रहता है, ईश्वर कहलाता है।
- ईश्वर का मनन चिन्तन एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव अर्थात् ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से जीवात्मा, परमात्मा के समीप पहुँचकर, परमात्मा का साक्षात्कार करती है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर जीवात्मा को आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति होती है एवं आत्मसाक्षात्कार होने पर, जीवात्मा के विघ्नों का अभाव अर्थात् विनाश होता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. वैदिक काल में यौगिक स्वरूप की विवेचना कीजिए।
2. दर्शन काल में योग के स्वरूप का उल्लेख कीजिए।
3. उपनिषद् शब्द का क्या अर्थ है? उपनिषदों में योग के अस्तित्व को समझाइए।
4. आधुनिक काल में योग परम्परा पर प्रकाश डालिए।
5. योग में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का सविस्तार वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

1.2

1. दृश्
2. नास्तिक
3. बुद्धि
4. 195

1.3

1. ईश्
2. समस्त ऐश्वर्यों एवं वैभव से युक्त परम सत्ता
3. (क) सत्य

   (ख) सत्य

टिप्पणियाँ

2

मुख्य उपनिषद् श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यौगिक जीवन

आप योग का अर्थ, परिभाषा व संक्षिप्त इतिहास पिछले यूनिट-योग: एक परिचय में पढ़ चुके हैं। अब आप समझ गए होंगे कि योग हमारे जीवन में कितना महत्वपूर्ण है और किस प्रकार सर्वांगीण विकास करता है। योग के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य से लेकर मोक्ष तक प्राप्त कर सकता है। इसके लिए विभिन्न योग साधन पद्धतियों की आवश्यकता होती है। जिनके माध्यम से मनुष्य कैवल्य की अवस्था तक पहुँच सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत ही सुन्दर ढंग से ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग की चर्चा की गई है। इस यूनिट में हम श्रीमद्भगवद्गीता के आलोक में वर्णित ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन किए गए ज्ञानयोग का उल्लेख कर सकेंगे;
- श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर कर्मयोग को समझा सकेंगे; तथा
- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्तियोग पर प्रकाश डाल सकेंगे।

2.1 श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता एक संपूर्ण योगशास्त्र है, इसको योग उपनिषद् भी कहा गया है। इसमें मनुष्य की दिनचर्या से लेकर आहार-विहार, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग का वर्णन किया गया है। यहाँ पर हम ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग को समझने का प्रयास करेंगे।

चित्र 2.1: योगेश्वर कृष्ण का योग संदेश

2.2 ज्ञान योग

ज्ञानयोग ऐसा योग है जिसमें मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर का साक्षात्कार करता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 श्लोक संख्या 2 एवं 13 के अनुसार क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) को तत्व से जानना ज्ञान है।

दृश्यमात्र संपूर्ण जगत माया का कार्य होने से क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोद्य स्वरूप सच्चिदानंदघन परमात्मा का ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर संपूर्ण मौलिक पदार्थों में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके परमपुरुष परमात्मा में ही एकीभाव से नित्य स्थित रहने का नाम उनको 'तत्व से जानना है' और यह ज्ञान है।

ज्ञान प्राप्ति के साधन को और भी विस्तार से श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 के 7वें श्लोक से 11वें श्लोक में वर्णन आता है, कि श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा भक्तिसहित गुरू की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अन्त:करण की स्थिरता और मन इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बार-बार विचार करना तथा पुत्र-स्त्री-घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना और मुक्त परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति (बिना किसी शर्त के, स्वभाविक प्रगाढ़ प्रेम, स्नेह के वशीभूत होकर) तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना। अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

टिप्पणियाँ

ज्ञानयोग की निम्न विशेषताएं श्रीमद्भगवद्गीता में मिलती हैं :

1. **श्रेष्ठ :** द्रव्यमय (आहुति देकर किये जाने वाले) यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है – *'श्रेयान्द्रव्यम यादयज्ञाज्ज्ञानयज्ञः'* (4:33) कारण कि द्रव्यमय यज्ञ में पदार्थों और क्रियाओं की मुख्यता रहती है, जबकि ज्ञानयज्ञ में विवेक-विचार की मुख्यता रहती है। विवेक-विचार में मनुष्य की जितनी स्वतंत्रता है, उतनी स्वतंत्रता पदार्थों और क्रियाओं में नहीं है।

2. **सुगम :** ज्ञानयोगी साधक परमात्व तत्व का ध्यान करते-करते संपूर्ण पापों से रहित होकर सुखपूर्वक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। – 'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श'(6:28)

3. **शीघ्रसिद्धि :** श्रद्धावान ज्ञानयोगी ज्ञान को प्राप्त होकर शीघ्र ही परम गति को प्राप्त हो जाता है – *'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाद्यिगच्छति'* (4:39) कारण कि वह इन्द्रियों को वश में किये हुए होता है।

4. **पापों का नाश :** पापी से पापी भी ज्ञानरूपी नौका से संपूर्ण पापों से तर जाता है – *'सर्वज्ञानप्लवेनैव .....' (4:36)*। ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण पापों को भस्म कर देती है – *'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूतेः* (4:37) कारण कि स्वरूप का बोध होने से शरीर – संसार से संबंधविच्छेद हो जाता है।

5. **संतुष्टि :** अपने स्वरूप का ध्यान करने वाला ज्ञानयोगी अपने आप में संतुष्ट हो जाता है – 'प्श्यन्नात्मनि तुष्यति' (6:2.)। कारण कि उसकी जड़ता अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि आदि के साथ संबंध नहीं रहता।

6. **शान्ति की प्राप्ति :** ज्ञानयोगी, परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। *'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम .....'* (4:39) कारण कि वह तत्व को जान जाता है। फिर उसके लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

7. **समता की प्राप्ति :** जो संपूर्ण प्राणियों में अपने का और अपने में संपूर्ण प्राणियों को देखता है, वह समदर्शी हो जाता है अर्थात उसे समता की प्राप्ति हो जाती है –'सर्वल समदर्शनः' (6:29)। वह सुख-दुःख में सम हो जाता है – *'समदुखसुखः* (14/24) कारण कि उसकी तत्व से अभिन्नता हो जाती है।

8. **ज्ञान की प्राप्ति :** क्षेत्र (शरीर) अलग है और क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) अलग है – ऐसा विवेक होने पर ज्ञानयोगी को स्वरूप का बोध अर्थात् परमतत्व की प्राप्ति हो जाती है – *'यान्ति ते परम'* (13/34) कारण कि उसका प्रकृति और उसके कार्य से संबंध-विच्छेद हो जाता है।

9. **प्रसन्नता (स्वच्छता) की प्राप्ति :** ज्ञानयोगी अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है –'ब्रह्म**मुतः** प्रसन्नात्मा' (118:54)। भगवान उपदेश करते है; जिसे संतों ने भी बारम्बार अनुभव किया है कि सच्चिदानंद ब्रह्म में एकीभाव से स्थित प्रसन्न मन वाला योगी न तो किसी के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला योगी मेरी परमभक्ति को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानयोग के अधिकारी : जैसे भक्ति के सभी अधिकारी हैं, ऐसे ही ज्ञान के सभी अधिकारी हैं। भगवान ने गीता में बताया है कि जिस ज्ञान को मनुष्य श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरू की सेवा करके, उनके अनुकूल बनकर, जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करके प्राप्त करता है और जिस ज्ञान को प्राप्त करके फिर कभी मोह हो ही नहीं सकता तथा जिस ज्ञान से साधक पहले संपूर्ण प्राणियों को अपने में और फिर परमात्मा में देखता है, वही ज्ञान (तीव्र जिज्ञासा होने पर) अत्यन्त पापी को भी प्राप्त हो सकता है (4:34-36)।

भगवान कहते हैं कि जगत का सबसे बड़ा पापी भी ज्ञानरूप नौका द्वारा नि:संदेह संपूर्ण पाप समुद्र से भलीभांति तर जायेगा; जैसे प्रदीप्त अग्नि लकड़ियों के ढेर को जलाकर भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण पापों को सर्वथा भस्म कर देती है (4:36-37)। जब पापी से पापी को भी ज्ञान हो सकता है तब जो श्रद्धावान है, अपनी साधना में तत्पर है और जितेन्द्रिय है, उसको ज्ञान प्राप्त हो जाय - इसमें तो कहना ही क्या है (4:39)।

कई तो ध्यानयोग के द्वारा, कई सांख्ययोग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने आप में उस परमात्मतत्व का अनुभव करते हैं (13:24) परन्तु जो इन साधनों को नहीं जानते वे मनुष्य केवल तत्वज्ञ महापुरुषों से सुनकर उनकी आज्ञा के अनुसार चलकर ही ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। (13:25)

तात्पर्य है कि मनुष्य चाहे श्रद्धावान साधक हो, चाहे पापी से पापी हो, चाहे अनजान से अनजान हो अगर वह ज्ञान चाहता है तो उसे ज्ञान हो सकता है।

ज्ञानयोग की व्यापकता : हमारे देखने, सुनने और समझने में जो कुछ दृश्य आता है, वह सब अदृश्यता में परिवर्तित हो रहा है। इन्द्रियों और अन्त:करण के जितने विषय हैं, वे सब के सब पहले नहीं थे और फिर आगे नहीं रहेंगे तथा अभी वर्तमान में भी प्रतिक्षण उनका ह्रास चला जा रहा है। किन्तु विषय तथा उसके अभाव को जानने वाला तत्व सदा ज्यों का त्यों ही रहता है। उस तत्व का कभी अभाव पूर्वकाल में हुआ नहीं, न अभी वर्तमान में अभाव है, न आगे अभाव होगा और हो सकता भी नहीं। उसी तत्व से मैं-मेरा, तू-तेरा, यह-इसका और वह-उसका ये चारों प्रकाशित होते हैं। वह तत्व (प्रकाश) इन सबमें ज्यों का त्यों परिपूर्ण है। जैसे प्रज्वलित अग्नि काठ को भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सब कर्मों को, पापों को भस्म कर देती है (4:37)। अर्थात् उस ज्ञानरूपी अग्नि में, मैं-मेरा, तू-तेरा, यह-इसका और वह-उसका-ये सभी लीन हो जाते हैं।

जिनका बाह्य पदार्थों का संबंधजन्य सुख मिट गया है, जिसको केवल परमात्मतत्व में ही सुख मिलता है, जो परमात्मतत्व में ही रमता जाता है, ऐसा ब्रह्मभूत साधक निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी द्विविधा मिट गयी है और जो संपूर्ण प्राणियों के हित में रहते हैं, वे निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। जो काम क्रोध से रहित हो चुके हैं, जिनका मन अपने अधीन है और जो तत्व को जान गये हैं (अर्थात् जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो चुका है) - ऐसे साधकों को जीते-जी और मरने के बाद शान्त ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञानी महात्माओं के लिए शान्त परब्रह्म परमात्मा सभी ओर परिपूर्ण हैं। (5:24-26)

यूनिटगत प्रश्न 2.1

1. ज्ञानयोग क्या है?

.....

.....

2. ज्ञानयोग की किन्हीं दो विशेषताओं का नाम लिखिए।

.....

.....

3. श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13 के 7वें श्लोक से 11वें श्लोक में वर्णित किन्हीं दो साधनों के नाम बताइए।

.....

.....

2.3 भक्तियोग

भक्तियोग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्यधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थों से मोह त्याग कर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के 'भज् सेवायाम धातु में 'क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा, पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है।

भक्तियोग की सबसे बड़ी विलक्षणता है कि जब भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है, अपने आपको भगवान को दे देता है, तो फिर करना-करवाना सब भगवान के द्वारा ही होता है। उस स्थिति में भक्त केवल निमित्तमात्र बनता है। अत: भक्तियोग के प्रकरण में भगवान ने अपने प्रिय भक्त अर्जुन से कहा कि यहाँ सेना में जितने भी योद्धा लोग खड़े हैं, वे सब मेरे द्वारा पहले से ही मारे हुए हैं। इनके मारने में तू निमित्तमात्र बन जा-निमित्तमात्र भव। (11:33)

भक्तियोग के अधिकारी : सभी प्राणी चाहे कैसा भी दुराचारी हो बिना किसी अपवाद के भगवान की भक्ति कर सकता है। कारण कि भगवान का अंश होने से मात्र प्राणियों का भगवान के साथ अखंड, अटूट और नित्य संबंध है। प्राय: प्राणी मात्र से गलती यह हुई कि उन लोगों ने जो अनित्य है उनसे तो पूरा आसक्ति का संबंध बना लिया और जो नित्य तत्व हैं (ईश्वर) जो खास अपने हैं, उनको अपना मानना छोड़ दिया।

भक्त के प्रकार : श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्त के भेद के परिप्रेक्ष्य में आप समझ सकते हैं

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ गीता (7/16)

अर्थात् हे भरतवंशी अर्जुन। चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते हैं यानि उपासना करते हैं। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थाथी तथा ज्ञानी।

1. **आर्त भक्त :** शिक्षार्थियों आप द्रोपदी के चीर हरण की कथा का स्मरण कीजिए। द्रोपदी ने दुःशासन द्वारा चीर हरण के दौरान आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए प्रकट हुए। तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते हैं जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते हैं तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते हैं और उसकी शरण में जाते हैं।

चित्र 2.2: द्रोपदी-आर्त भक्त

2. **जिज्ञासु भक्त :** जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि ईश्वर के विषय में जिज्ञासा रखने वाले- अर्थात् आत्मा एवं ब्रह्मम को जानने की इच्छा रखने वाले भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते हैं।

चित्र 2.3: मीराबाई-भक्तियोग

3. **अर्थार्थी भक्त :** समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते है ऐसे भक्त जो किसी सांसारिक वस्तु , मकान, जमीन, धन, स्त्री, वैभव, मान-सम्मान, परीक्षाओं में सफलता आदि के लिए अपने आराध्य को स्मरण करते हैं। ऐसे भक्त अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं।

4. **ज्ञानी भक्त :** ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त है जो आत्म-कल्याण, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को पूजते हैं।

उपरोक्त चार प्रकार के भक्तो में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ हैं।

इस श्लोक में भगवान कहते हैं कि, पवित्र कर्म करने वाले **अर्थार्थी,** आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी – ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं। अर्थार्थी भगवान से ही अपनी धन की इच्छा पूरी कराना चाहता है। आर्त भगवान से ही अपना दु:ख मिटाना चाहता है। जिज्ञासु भगवान से ही अपनी जिज्ञासा शान्त कराना चाहता है। किन्तु जब भक्त एवं भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं चाहता, तब वह ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त होता है। इन चार भक्तों में मुझमें निरंतर लगा हुआ अनन्य भक्तिवाला ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञानी भक्त को मैं अत्यंत प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यंत प्रिय है। (7:17) ये चारों भक्त बड़े उदार हैं परन्तु ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है –भक्त ऐसा मेरा मत है। कारण कि वह मुझसे अभिन्न है और जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई गति नहीं है, वह मुझमें ही दृढ़ स्थित है। (7:18)

तत्वज्ञानी में तो सूक्ष्म अहं रहता है, पर भक्त में अहं का सर्वथा नाश हो जाता है, इसलिए भगवान कहते हैं – *'ज्ञानी त्यात्मंव में मतम'* (7:18)। गीता में 'महात्मा' शब्द केवल भक्त के लिए ही आया है। इसी तरह 'उदार' 'युक्ततम' 'सर्ववित्' आदि शब्द भी भक्त के लिए ही आये हैं।

गीता में भक्तियोग की महत्ता

1. **श्रेष्ठ :** भगवान में तल्लीन अन्त:करण वाला श्रद्धावान भक्त संपूर्ण योगियों में श्रेष्ठ है – *'स मे युक्ततमो मत:'* (6:47)। सांख्ययोगी और भक्तियोग में भक्तियोगी श्रेष्ठ है (12:2)। कारण कि विह नित्य निरंतर भगवान में ही लगा रहता है।

2. **सुगम :** भक्त का अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि भगवान स्वीकार कर लेते हैं किन्तु अगर किसी के पास पत्र, पुष्पादि न हो तो वह जो कुछ करता है उसे भगवान के अर्पण करने से वह संपूर्ण बंधनों से मुक्त होकर भगवान को प्राप्त हो जाता है – *'पत्रं पुष्पं फलं तोयं .....'* 9:26 से 28)। कारण कि भगवान भावग्राही हैं अत: भक्त के भाव को ग्रहण कर लेते हैं।

3. **शीघ्रसिद्धि :** ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान बहुत जल्दी कर देते हैं – *तेवामहं समुद्धर्ता .....* (12:7)। कारण कि वह केवल भगवान के ही परायण रहता है, अत: उसका उद्धार करने की जिम्मेवारी भगवान पर आ जाती है।

4. **पापों का नाश :** अपने शरणागत भक्तों को शीघ्र ही भगवान संपूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं *'अहं तवा सर्वपापेभ्लो मोक्षयिष्यामि'* (18:66)।

5. **संतुष्टि :** भगवान में मन लगाने पर भक्त संतुष्ट हो जाता है (1.:9)। कारण कि भगवान में ज्यों-ज्यों मन लगता है उसे निरंतर संतोष होता है कि मेरे समय का सबसे अच्छा प्रयोग हो रहा है। सिद्ध हो जाने पर वह संतोष स्वत: ही रहने लगता है – *संतुष्ट सततं योगी* (12:14)। कारण कि उसको भगवान की प्राप्ति हो गयी होती है।

6. **शान्ति की प्राप्ति :** भक्त परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है –*'शान्तिं निर्वाणपरमाम'* (6:15)

   'शश्वच्छान्तिं निगच्छति' (9:31)। कारण कि उसके आश्रम में केवल भगवान ही रहते हैं।

7. **समता की प्राप्ति :** अपने भक्त को भगवान वह समता देते हैं, जिससे वह भगवान को प्राप्त हो जाता है– *'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते'* (1.:1.)। कारण कि वे केवल भगवान की इच्छा एवं आज्ञा पालन में ही लगे रहते हैं, भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं चाहते।

8. **ज्ञान की प्राप्ति :** भगवान स्वयं अपने भक्त के अज्ञान का नाश करते हैं – *'तेषामेवानुकम्पार्थ ..... ज्ञानदीपेन भास्वता'* (1.:11)। कारण कि चूंकि भक्त भगवान में ही हमेशा लगा रहता है, भगवान के सिवाय कुछ चाहता ही नहीं; अत: भगवान अपनी ओर से ही उसके अज्ञान का नाश करके भगवतत्व का ज्ञान करा देते हैं।

9. **प्रसन्नता की प्राप्ति** – भक्त का अन्त:करण प्रसन्न स्वच्छ एवं प्रशांत हो जाता है (6:14)। कारण कि वह भगवान का ध्यान करता रहता है।

भक्तियोग संपन्न करने हेतु भक्त बनना पड़ता है जिसके लक्षण गीता में इस प्रकार वर्णित है।

जो पुरुष ..... द्वेषभाव से रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है; तथा जो योगी निरंतर संतुष्ट है, मन इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है- वह मुझमें अर्पण किए हुए मन, बुद्धि वाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है (12:13,14)

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष , अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है - वह भक्त मुझको प्रिय है। (12:15)

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर, भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है - वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। (12:16)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों का त्यागी है (अर्थात् राग-द्वेषरहित है) वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है। (12:17)

जो शत्रु मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है, जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और जिस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है- वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है। (12:18, 19)

गीता में ज्ञानयोग से पराभक्ति (प्रेम) की प्राप्ति (18:54) और कर्मयोग से ज्ञान की प्राप्ति (4:38) बतायी गई है; किन्तु भक्ति से भगवान के दर्शन, भगवत्तत्व का ज्ञान और भगवत्तत्व में प्रवेश- ये तीनों हो जाते हैं (11:54)। यह विशेषता भक्तियोग में ही है, दूसरे योग में नहीं। अत: भक्तियोग सबसे श्रेष्ठ एवं उत्तम मार्ग है और कलिकाल के लिए तो यह विशेष उपयोगी है।

यूनिटगत प्रश्न 2.2

निम्नलिखित कथनों के सामने सही या गलत लिखिए :

1. जिज्ञासु भगवान से अपनी धन की इच्छा पूरी कराना चाहता है। ( )
2. भक्तियोग में भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है। ( )
3. ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान शीघ्र नहीं करते। ( )
4. भक्त परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। ( )

2.4 कर्मयोग

कर्मयोग अर्थात् कर्म के माध्यम से योग (जीवात्मा का परमात्मा से मिलन) को फलीभूत करने को कहते है। कर्म शब्द 'कृ' धातु से निकलता है, 'कृ' धातु का अर्थ है करना। अत: कर्मयोग में कर्म शब्द का अभिप्राय 'कार्य' ही है।

जो व्यक्ति भगवान के प्रति कर्तव्य भावना से अधिक प्रेरित होते हैं वे कर्मयोग के मार्ग से भगवान तक पहुँचना चाहते हैं – इसी पद्धति को कर्मयोग का मार्ग कहा गया है। भगवतप्राप्ति के विभिन्न मार्ग जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, मंत्रयोग, नादयोग आदि बिल्कुल पृथक्–पृथक् विभाग नहीं हैं। प्रधानता के आधार पर ये विभाग किये गये हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जिसमें कर्म के अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान आदि की शक्ति ही न हो, उसी प्रकार ऐसा व्यक्ति भी नहीं देखा जाता जिसमें केवल भक्ति या केवल ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ न हो। ये विभाग मनुष्य की प्रधान प्रवृत्ति के अनुसार किए गए हैं। अन्ततोगत्वा, सभी मार्ग एक ही लक्ष्य पर जाकर एक हो जाते हैं।

चित्र 2.4: गोरक्षत हठयोग

कर्मयोग का विवेचन प्रधानत: दो ही प्रश्नों के उत्तर में परिसमाप्त हो जाता है।

1. पहला; किस प्रकार का कर्म करना चाहिए?
2. दूसरा; उसे करने की यथार्थ विधि क्या है?

श्रीमद्भगवद्गीता जो समस्त शास्त्रों का सार है पहले प्रश्न के उत्तर में कहती है –

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। (16:24)

अर्थात्

कौन सा कर्म करना चाहिए और कौन सा नहीं करना चाहिए इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र ही प्रमाण है। इस विषय में शास्त्र की आज्ञा जानकर तुम्हें उसी के अनुसार कर्म करने चाहिए।

नियतं कुरू कर्म त्वं (गीता 3:8) अर्थात् तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर–के द्वारा भी भगवान ने स्पष्टत: शास्त्र अनुमोदित कर्म ही करने की आज्ञा सभों को दी है।

हमलोग इस जन्म से पहले असंख्य बार इस संसार में जन्म ले चुके हैं। उन पूर्वजन्मों में भी मनुष्य योनि कभी तिर्यग्योनि और कभी कीटपतंग आदि की योनि प्राप्त हुई होगी। उन जन्मों में हम जो कुछ कर्म कर आये हैं उन्हीं के संस्कार इस जन्म में वासनारूप से हमारे चित्त में मौजूद हैं और बहुधा हमें अनुचित कर्म करने को प्रेरित करते हैं। अध्यात्ममार्ग में आगे बढ़ने के लिए (जिसके बिना मनुष्य का उद्धार हो ही नहीं सकता), यह आवश्यक है कि हम सारी इच्छाओं और आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हो जायें। इच्छा और आसक्ति से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है –शास्त्र विहित कर्म करना। ऐसा करने से हम अपनी दूषित इच्छाओं और आसक्तियों से मुक्त हो जाते हैं और सदाचार एवं धर्म में स्थित होकर अपना एवं विश्व का मंगल कर सकते हैं।

गीता के नवें अध्याय के श्लोक संख्या 21 में भगवान कहते हैं – सकाम कर्म को करने वाले उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामनावाले पुरुष बार–बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।

केवल स्वर्ग ही नहीं ब्रह्मलोक तक की भी प्राप्ति मनुष्य कामना सहित कर्म करते हुए पा ले तो भी उसे जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं मिलती। भगवान ने गीता के 8:16 में निर्णय दिया है कि ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती (जिसको प्राप्त होकर पीछे संसार में आना पड़े) है, परंतु मुझको (भगवान को) प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता। अत: केवल भगवत प्राप्ति एवं प्रीति के निमित्त कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

हमारा दूसरा प्रश्न कि कर्म करने की यथार्थ/सही विधि क्या है, के उत्तर में गीता को भगवान का उपदेश इस प्रकार से मनुष्य के परम कल्याण हेतु बता दिया गया है।

1. अनासक्त होकर कर्त्तव्य कर्म करने का आदेश। (3:19)
2. कर्म के सम्पादन में फलाकांक्षा का त्याग। (2:47)
3. युद्धस्तर पर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा (8:7)
4. कर्तापन के अभिमान को त्यागकर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा। (3:27)
5. धृति/धैर्य और उत्साह से युक्त होकर कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा। (18:26)

6. समस्त कर्तव्यकर्मों को परमात्मा में अर्पित कर कर्म बंधन से मुक्त हो जायें। (3:41)
7. लोक संग्रह (लोक शिक्षा एवं कल्याण) के लिये कर्तव्य कर्म करें। (3:25)
8. कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। (3:8)
9. केवल ईश्वर के लिए संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को करना। (11:55)

सारांश में जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है वह न सिद्धि को प्राप्त होता है न परम गति को ओर न सुख को ही। (16:23) भगवान का वादा है कि मेरे परायण हुआ कर्मयोगी संपूर्ण कर्तव्य कर्मों को सदा करता हुआ मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है।

तीन प्रकार के कर्म गीता में भगवान ने बताए हैं :

1. जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ कर्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग द्वेष के किया गया हो वह सात्विक कहा जाता है। (18:23)
2. परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोग को चाहने वाले अहंकारी पुरुषों द्वारा किया जाता है वह कर्म राजस कहा गया है। (18:24)
3. जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है वह कर्म तामस कहा जाता है। (18:25)

तीन प्रकार के कर्मों के कर्ता के लक्षण भगवान ने गीता में बताए हैं –

1. जो कर्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने से हर्ष शोकादि विकारों से रहित है – वह सात्विक कहा जाता है। (18:26)
2. जो कर्ता आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष शोक से लिप्त है– वह राजस कहा जाता है। (18:27)
3. जो कर्ता आयुक्त, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त और दूसरों की जीविका का नाश करने वाला तथा शोक करने वाला, आलसी और दीर्घसूत्री (देर से करने वाला) है– वह तामस कर्ता कहा जाता है। (18:28)

गीता में कर्मयोग की महत्ता

1. **श्रेष्ठ :** कर्मयोग ज्ञान से श्रेष्ठ है (5:2) कारण कि कर्मयोग में संपूर्ण कर्म कर्तव्य परंपरा सुरक्षित रखने के लिए अर्थात् दूसरों के लिए ही किये जाते हैं। अत: अपने सुख-आराम, आदर, महिमा, विद्या-बुद्धि का अभिमान, भोग और संग्रह की इच्छा आदि का त्याग सुगमता

से हो जाता है, जबकि ज्ञानयोग में विवेक विचार के द्वारा अपने सुख आराम का त्याग करने में कठिनता पड़ती है। कर्मयोग ध्यानयोग से भी श्रेष्ठ है। (12:12)

2. **सुगम :** कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता है – *'सुखं बन्धात्प्रभुच्यते'* (5:3) कारण कि उसमें राग द्वेष नहीं होते, प्रत्युत समता रहती है। ऐसे तो संपूर्ण मनुष्य कर्म करते ही हैं, पर राग द्वेष होने से, सिद्धि असिद्धि में सुखी दुखी होने से वे बंधन से मुक्त नहीं हो पाते।

3. **शीघ्रसिद्धि :** समता युक्त कर्मयोगी बहुत जल्दी परमात्मतत्व को प्राप्त हो जाता है – *'योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति'* (5:6)। कारण कि उसमें कर्म और कर्मफल की आसक्ति नहीं होती और संसार का आश्रय नहीं रहता। (4:2.)

4. **पापों का नाश :** जो केवल यज्ञ के लिए अर्थात् कर्तव्य परंपरा को सुरक्षित रखने के लिए ही कर्म करता है उसके संपूर्ण कर्म, पाप विलीन हो जाते हैं। (4:23)

5. **संतुष्टि :** कर्मयोगी अपने आपमें संतुष्ट हो जाता है (2:55)(3:17)। कारण कि उसमें संपूर्ण कामनाओं का सर्वथा त्याग होता है। अत: उसकी संतुष्टि पराधीन नहीं होती।

6. **शान्ति की प्राप्ति :** कर्मयोगी शान्ति को प्राप्त हो जाता है (2:71)(5:12)। कारण कि उसमें कामना, ममता आदि नहीं रहते अर्थात् उसका संसार से संबंध नहीं रहता।

7. **समता की प्राप्ति :** कर्मयोगी सिद्धि और असिद्धि में सम हो जाता है – *'सम: सिद्धावसिद्धौ* च' (4:22)। कारण कि उसको कर्म की सिद्धि असिद्धि, पूर्ति – आपूर्ति में हर्ष शोक, राग-देष नहीं होते।

8. **ज्ञान की प्राप्ति :** कर्मयोग से सिद्ध हुए मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान (बोध) अपने आप हो जाता है (4:38)। कारण कि उसमें संसार का आकर्षण, जड़ता नहीं रहती। जड़ता न रहने से स्वत: सिद्ध स्वरूप रह जाता है।

9. **प्रसन्नता (स्वच्छता) की प्राप्ति :** कर्मयोगी, अन्त:करण की प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है –*'प्रसादमधिगच्छति'* (2:64)। कारण कि राग द्वेष-पूर्वक विषयों का सेवन करने से ही अन्त:करण में अशान्ति होती है परन्तु कर्मयोगी राग द्वेष रहित होकर साधना करता है जिससे उसका अन्त:करण स्वच्छ, निर्मल हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 2.3

निम्नलिखित कथनों के सामने सही या गलत लिखिए।

1. कर्म योग में कर्म शब्द का अभिप्राय कार्य से है। ( )
2. मनुष्य को अनासक्त होकर कर्तव्य पालन करना चाहिए। ( )

3. मनुष्य को फल की इच्छा करते हुए कर्म करना चाहिए। ( )

4. कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता हे। ( )

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आप समझ चुके हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत ही सुन्दर ढंग से ज्ञान योग, कर्म योग तथा भक्तियोग का वर्णन किया गया है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता एक सम्पूर्ण योग शास्त्र है। जिसे योग उपनिषद् भी कहा गया है। इसमें मनुष्य की दिनचर्या से लेकर आहार विहार, ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग को स्पष्ट रूप से समझाया गया है, जो मनुष्य को योगमय जीवन जीने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है और उत्कृष्ट मार्ग दर्शन देता है।

ज्ञान योग ऐसा योग है, जिसके माध्यम से मनुष्य ईश्वर से साक्षात्कार करता है और भक्ति योग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। जबकि कर्म योग कर्म के माध्यम से जीवात्मा का परमात्मा से मिलन कराता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ज्ञान योग का उल्लेख कीजिए।
2. श्रीमद्भगवद्गीता में मुख्य रूप से प्रकाशित ज्ञान योग, कर्म योग एवं भक्ति योग को विस्तार पूर्वक समझाइए।
3. भक्ति योग क्या है? श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्ति योग पर प्रकाश डालिए।
4. श्रीमद्भगमवद्गीता के अनुसार कर्म योग का उल्लेख कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. ज्ञान योग ऐसा योग है जिसमें मनुष्य तत्व ज्ञान को ग्रहण कर ईश्वर से साक्षात्कार करता है।
2. ज्ञान योग की दो विशेषताएँ –
   (क) श्रेष्ठ
   (ख) संतुष्टि

3. दो साधन :

   क) श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव

   ख) दम्भाचरण का अभाव

2.2

1. जिज्ञासु भगवान से अपनी धन की इच्छा पूरा कराना चाहता है। (गलत)
2. भक्तियोग में भक्त भगवान के प्रति सर्वथा समर्पित हो जाता है। (सही)
3. ईश्वर में लगे हुए चित्त वाले भक्त का उद्धार भगवान शीघ्र नहीं करते। (गलत)
4. भक्त परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। (सहीऋ

2.3

1. कर्म योग में कर्म शब्द का अभिप्राय कार्य से है। (सही)
2. मनुष्य को अनासक्त होकर कर्तव्य पालन करना चाहिए। (सही)
3. मनुष्य को फल की इच्छा करते हुए कर्म करना चाहिए। (गलत)
4. कर्मयोगी सुखपूर्वक बंधन से मुक्त हो जाता हे। (सही)

3

पातंजल योग दर्शन

प्रिय शिक्षार्थियों, योग के स्वरूप को व्यवस्थित ढंग से समझने के लिए यह परम आवश्यक है कि, योग के ऐतिहासिक और दार्शनिक विकास क्रम को सही रूप में समझा जाये। पिछले यूनिट में आप, योग परिचय, उद्भव एवं इतिहास, योग के मुख्य पंथ और ग्रंथ आदि के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। आप जान चुके हैं कि, योग प्राचीन काल से मानव की संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। योग के इतिहास से यह स्पष्ट हो चुका है कि सभी प्राचीन ग्रंथों (वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, भगवद् कथाओं, श्रीमद्भगवद्गीता आदि) में योग का उल्लेख मिलता है। आज योग पर, योग दर्शन, घेरण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता, वशिष्ठ संहिता आदि मुख्य ग्रंथ सुप्रसिद्ध हैं, जिनके माध्यम से योग के सही स्वरूप को विस्तार से समझा जा सकता है। इन सभी ग्रंथों में पातंजल योग सूत्र, एक सुप्रसिद्ध योग ग्रंथ है, जिसमें सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से योग का वर्णन मिलता है। इस यूनिट में हम पातंजल योग सूत्र पर चर्चा करेंगे और योग की विचारधारा को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए, इसके ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पक्षों को समझेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भारतीय परम्परा में योग के स्वरूप को समझा सकेंगे;
- योग के महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय ग्रंथ का परिचय करा सकेंगे;
- योग सूत्र के ऐतिहासिक महत्व एवं स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे;
- योग सूत्र के अनुसार योग की परिभाषा पर प्रकाश डाल सकेंगे।

3.1 भारतीय परम्परा में योग का स्वरूप

भारतीय परम्परा में योग का स्वरूप समझने के लिए हमें, भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के विभिन्न आयामों पर विचार करना आवश्यक है। आइये सबसे पहले ऐतिहासिक संदर्भों में योग के स्वरूप को समझे।

3.1.1 ऐतिहासिक संदर्भों में योग

भारतीय परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन परम्परा है, जो हमारे पूवर्जों की अनमोल धरोहर है। सिन्धु घाटी की सभ्यता विभिन्न दृष्टिकोण के माध्यम से विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता रही है। 1921–1922 में हुई खुदाई के दौरान प्राप्त योग सम्बंधी सामग्री, ध्यान मुद्रा में स्थित मूर्तियां तथा कई अन्य आसनों से सम्बंधित अवशेष इस बात का स्पष्ट संकेत करते हैं कि उस समय लोगों को, योग के विभिन्न पहलुओं की जानकारी थी।

यदि योग के आदि प्रवर्तक की चर्चा की जाये तो महाभारत के अनुसार सांख्य के आदि वक्ता कपिल और योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि हिरण्यगर्भ एक ऋषि थे। वैसे हिरण्यगर्भ का अर्थ परमात्मा भी है। जिन्होंने योग का प्रथम उपदेश किया और बाद में अन्य आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों से योग प्रणाली का विस्तार दिया। पतंजलि महर्षि ने भी इसी क्रम में अपने योग सूत्रों को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से उस समय उपलब्ध योग प्रणालियों के आधार पर रचना की। इसी कारण महर्षि पतंजलि को योग सूत्र का सम्पादक या संकलन कर्ता कहा जाता है।

चित्र 3.1: हिरण्यगर्भ

उपरोक्त आधार पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि, हिरण्यगर्भ ही एक मात्र ऐसे पहले ऋषि हुए जिन्होंने सर्वप्रथम योग की आधारशिला रखी। और पातंजल योग सूत्र के बाद अन्य कोई योग का ऐसा ग्रंथ प्राप्त नहीं होता, जिसके द्वारा योग का इतना व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त हो सके। इस प्रकार वेद, उपनिषद, महाभारत आदि ग्रंथों और सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त तथ्यों के आधार पर योग की ऐतिहासिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

3.1.2 दार्शनिक संदर्भों में योग

प्रिय शिक्षार्थियों, ऐतिहासिक संदर्भों में योग को जानने के पश्चात्, इसके दार्शनिक पक्ष पर विचार करें। भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं ने, इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सबसे पहले हम, वैदिक विचारधारा पर नजर डालें, तो योग का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर मिलता है। इस प्रकार सांकेतिक रूप से योग का स्वरूप, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वेदों में देखने को मिलता है। हमारे सभी दर्शन वेदों में अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं। योग के साक्ष्य वेदों में मिलने के कारण, हम यह कह सकते हैं कि, योग भी वेद सम्मत है।

यदि हम अन्य दर्शनों पर दृष्टि डालें, तो वहाँ भी योग, विस्तार से देखने को मिलता है। बौद्ध जैन आदि अवैदिक कहे जाने वाले दर्शनों में भी योग के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

आप समझ सकते हैं कि, जिस दर्शन में साधना है, वहाँ साधना के केन्द्र में योग है। और योग, प्रत्येक दर्शन की उपासना पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है।

यूनिटगत प्रश्न 3.1

सत्य/असत्य बताईये-

(क) योग के प्रथम वक्ता हिरण्यगर्भ माने जाते हैं। ( )

(ख) सांख्य के आदि वक्ता कपिल हैं। ( )

(ग) बौद्ध दर्शन वैदिक है। ( )

(घ) सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यता है। ( )

3.2 योग सूत्र के प्रणेता का परिचय

योग पर बहुत से ग्रंथ लिखे गये जिनमें, सार रूप में बहुत सी जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। इन ग्रंथों में योग परक विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों को सार रूप में प्रस्तुत करने का हर संभव प्रयास किया गया है। योग सूत्र इसी प्रकार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सुव्यवस्थित ग्रंथ है।

इसका परिचय प्राप्त करने के लिए आईये, सर्वप्रथम योग सूत्र के संकलनकर्ता महर्षि पतंजलि के विषय में जानें –

विद्वानों के अनुसार पतंजलि नाम के आचार्य का विवरण मुख्य रूप से तीन संदर्भों में प्राप्त होता है–

1. योग सूत्र के रचयिता के संदर्भ में
2. पाणिनी व्याकरण के महाभाष्यकार के संदर्भ में
3. आयुर्वेद के किसी संदेहास्पद ग्रंथ के रचयिता के संदर्भ में

इस विषय में एक बड़ा सुन्दर एवं प्रसिद्ध श्लोक मिलता है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचामलं शरीरस्यच वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलि प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

जिसका अर्थ है कि मैं ऐसे पतंजलि मुनि को करबद्ध होकर प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने योग के द्वारा चित्त की शुद्धि, व्याकरण द्वारा वचन शुद्धि और आयुर्वेद द्वारा शरीर की शुद्धि का उपाय बताया। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि, इन तीनों कार्यों का श्रेय पतंजलि मुनि को जाता है।

यह मान्यता प्राचीन काल से ही प्रचलन में है और भर्तृहरि, भोजराज, समुद्रगुप्त आदि महान विभूतियों ने इस श्लोक को अनेक बार दोहराया है।

पतंजलि के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

एक प्रचलित मान्यता में पतंजलि को शेषनाग का अवतार बताया जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये कश्मीर में रहने वाले नागू जाति के ब्राह्मणों के बीच पैदा हुए थे। अद्भुत शास्त्र ज्ञान एवं प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण इनको एक हजार जीभ वाली शेषनाग अवतार की काल्पनिक उपाधि मिल गई होगी।

कहीं पर ऐसा विवरण भी है कि पतंजलि अपने शिष्यों को पर्दे के पीछे से पढ़ाते थे और पर्दा उठाकर न देखने के कड़े निर्देश थे।

एक दिन किसी ने जिज्ञासा वश पर्दा उठाकर देख लिया, तो उन्होंने अपनी एक हजार जिह्वाओं से विष फेंककर सब कुछ नष्ट कर दिया। भाग्यवश कोई एक आदि छात्र बचकर भाग आया, जिसके बाद उनके उपदेशों का संग्रह हुआ।

कहीं इस प्रकार की दंतकथा भी मिलती है, कि एक बार प्रात:काल एक ब्राह्मण नदी में खड़े होकर सूर्य को अर्ध्य दे रहे थे तभी उनकी अंजलि में एक बालक आ गिरा, जिसके कारण इनका नाम पतंजलि पड़ा।

चित्र 3.2: महर्षि पतंजलि

3.3 योग सूत्र

प्रिय शिक्षार्थियों, आप यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि पतंजलि, योग सूत्र के मूल लेखक नहीं अपितु संकलनकर्ता माने जाते हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित योग की विभिन्न पद्धतियों का संग्रह किया और सूत्र के रूप में अपने ग्रंथ में, संग्रहित किया। योग सूत्र योग के विभिन्न बड़े-बड़े सिद्धांतों और विषयों पर लिख गया संक्षिप्त रूप है। इसमें बड़े-बड़े सिद्धांतों तथा दार्शनिक विचारों को बड़े ही सरल, सुव्यवस्थित एवं प्रमाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। योग सूत्र को चार पादों में विभाजित किया गया है-

योग सूत्र (कुल सूत्र-195)

समाधि पाद	साधन पाद	विभूति पाद	कैवल्य पाद
(51सूत्र)	(55सूत्र)	(55सूत्र)	(34सूत्र)

1. समाधि पाद

समाधि पाद योग सूत्र का प्रथम पाद है, जिसमें कुल 51 सूत्र हैं। इसमें समाधि से सम्बंधित सभी दार्शनिक सिद्धांतों और विषयों का व्यवस्थित वर्णन मिलता है, साथ ही समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के लिए यौगिक पद्धतियों का वर्णन मिलता है।

इस पाद में सबसे पहले, योग की परिभाषा बताई गई है। यहाँ पर भाष्यों के अंतर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है कि योग समाधि है। समाधि के दो भाग बताए गये हैं, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के, साधनों के विषय में विस्तार से बताया गया है। जिसमें सर्वप्रथम अभ्यास तथा वैराग्य की चर्चा की है।

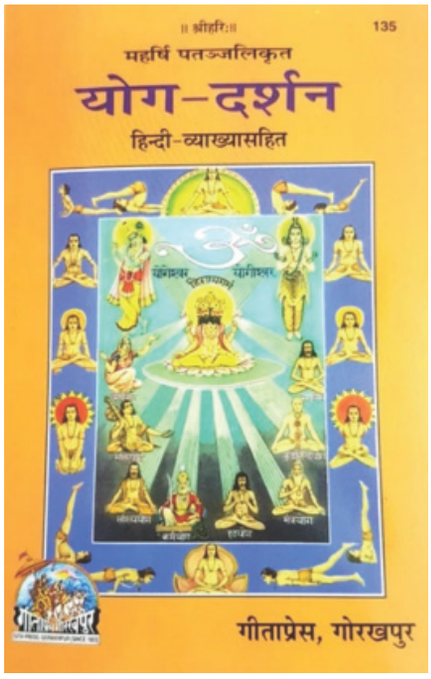

चित्र 3.3: पतंजलि योग दर्शन

विद्वानों के अनुसार यह समझाया गया है कि इस पाद के अन्तर्गत बताए गये अभ्यास सामान्य योगाभ्यासी के लिए नहीं हैं, अपितु उच्च कोटि के साधकों के लिए हैं, जिनका चित्त पहले से ही स्थिर हो चुका है। उन्हीं साधकों को ध्यान में रखते हुए, यहाँ पर अभ्यासों की चर्चा की है।

ईश्वर प्रणिधान और ईश्वर के स्वरूप की चर्चा भी इसी पाद में की गई है। इस प्रकार विभिन्न विषयों की विस्तार से चर्चा करने के साथ-साथ, योग के दार्शनिक स्वरूप को बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। किन्तु समाधि के भेद प्रभेद, चित्त निरोध आदि के उपाय आदि का वर्णन इसी पाद में मिलता है।

2. साधन पाद

साधन पाद में योग प्राप्ति के विभिन्न साधनों का वर्णन किया गया है। जैसा कि प्रथम पाद में स्पष्ट किया गया है कि समाधि पाद के अंतर्गत बताए गये अभ्यास मध्यम और साधारण साधकों के लिए उपयुक्त नहीं है। न ही वे उन अभ्यासों को कर पाने में सक्षम हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर, इस पाद के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया गया है कि, मध्यम अधिकारी के लिए क्रियायोग ही सर्वोत्तम साधन है। इस क्रिया योग में, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का उल्लेख किया

गया है। पंच क्लेशों का विस्तृत वर्णन भी इसी पाद में मिलता है। साथ ही साधारण साधकों के लिए अष्टांग योग का, सुन्दर वर्णन इसी पाद में समझाया गया है, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही उनसे प्राप्त सिद्धियों का भी वर्णन किया गया है।

इस पाद में इसके पश्चात्, विभिन्न दार्शनिक विषयों का वर्णन किया गया है। इसमें द्रष्टा और 'दृश्य' प्रमुख हैं। यहाँ पर पुरूष को द्रष्टा और प्रकृति को दृश्य कहा गया है। इन दोनों में विवेकज्ञान का प्राप्त होना ही, योग की प्राप्ति है। जबकि इन दोनों की मिली हुई अवस्था के कारण ही अविद्या की स्थिति बनी रहती है।

चतुर्व्यूहवाद का भी स्पष्ट विवेचन, इसी पाद में किया गया है। हेय-दुख का वर्णन, हेय-हेतु-दुख के कारण मोक्ष प्राप्ति का उपाय सम्मिलित किया गया है। और कर्म फल का सिद्धांत भी इसी पाद के अन्तर्गत रखा गया है।

3. विभूति पाद

धारणा, ध्यान, समाधि के वर्णन से इस पाद का प्रारम्भ किया गया है। इसमें बड़े ही रहस्यास्पद एवं रोचक विषयों का समावेश किया गया है। यहाँ दार्शनिक विषयों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। इसमें धर्म-धर्मी आदि का स्वरूप, चित्त के परिणाम आदि की विवेचना मिलती है। धारण-ध्यान, समाधि को यहाँ, सम्मिलित रूप से संयम बताया गया है।

विभूतिपाद का प्रमुख विषय संयम जनित विभूतियां हैं। इसी कारण इसका नाम विभूति पाद रखा गया है। विभूति का अर्थ यहाँ पर सिद्धियों से है।

उदाहरण के लिए- चन्द्रमा में संयम करने से तारों का ज्ञान, ध्रुव तारे में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान, सूर्य में संयम करने से भुवनों का ज्ञान, कंठ कूप में संयम करने भूख-प्यास की निवृत्ति आदि विभिन्न सिद्धियाँ तथा विभूतियाँ, संयम के परिणाम से प्रकट होनी बताई गई है। उपरोक्त सब विषयों के समावेश के कारण यह पाद, बहुत ही रोचक ढंग से योग दर्शन की प्रस्तुति प्रदान करता है और अपने नाम के अनुसार सार्थकता दर्शाता है। यहाँ पर एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है, कि इन सब विभूतियों का वर्णन करने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि ये सभी सिद्धियाँ और विभूतियाँ योग मार्ग में बाधक हैं। इनका साधन नहीं करना चाहिए अन्यथा योग के लक्ष्य को पाना संभव नहीं है। ये सारी विभूतियाँ तो योग मार्ग में हमारी सही स्थिति का आंकलन कराती हैं, जिससे योग पथ पर संदेह के बिना आगे बढ़ा जा सके।

4. कैवल्य पाद

योग सूत्र में कैवल्य पाद चौथा एवं अन्तिम पाद है, जिसमें कुल 34 सूत्र हैं। जैसे कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह पाद योग के लक्ष्य, कैवल्य की स्थिति को बताने वाला है। इस पाद में आप यह भी देखेंगे कि इसमें योग के दार्शनिक स्वरूप की भी चर्चा विस्तार से मिलती है।

इस पाद के प्रारम्भ में पाँच प्रकार से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि सिद्धियां निम्नांकित पाँच प्रकार से प्राप्त होती हैं–

(अ) जन्म से

(ब) औषधि से

(स) मंत्र से

(द) तप से

(ड) समाधि से

इसमें समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि को शुद्ध माना गया है, जिसमें स्पष्ट किया गया है कि समाधि में वासना जन्य संस्कार नहीं होते, इसलिए समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि भी पवित्र संस्कार वाली होती है इस पाद में निर्माण चित्त, चतुर्विध कर्म, वासना आदि पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। जीवन मुक्त की मनोवृत्ति का समुचित वर्णन करते हुऐ (अन्त में) कैवल्य का स्वरूप बताकर, योग सूत्र का समापन किया गया है। अन्य पादों को देखते हुए, यह पाद सबसे छोटा है। परन्तु यह सबसे महत्वपूर्ण पाद है, इसके बिना योग सूत्र की पूर्णता नहीं हो सकती। अत: इस पाद की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है।

यूनिटगत प्रश्न 3.2

1. सत्य/असत्य का चयन कीजिए–

   (क) योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। ( )

   (ख) योग सूत्र में कुल चार पाद हैं। ( )

   (ग) कैवल्य का वर्णन योग सूत्र के प्रथम पाद में किया गया है। ( )

   (घ) योग सूत्र के प्रथम पाद में 51 सूत्र, द्वितीय में 55, तृतीय में 55 और चतुर्थ में 34 सूत्र हैं। ( )

   (ङ) क्रिया योग के अंतर्गत तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का समावेश है। ( )

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

   (क) योग सूत्र में कुल ..... पाद हैं।

   (ख) क्रिया योग ..... के सर्वोत्तम साधन हैं।

   (ग) पंच क्लेशों की विस्तृत चर्चा ..... पाद में मिलती है।

   (घ) समाधि पाद के अंतर्गत बताए गये अभ्यास ..... के अधिकारी के लिए है।

3.4 योग सूत्र के अनुसार योग की परिभाषा

प्रिय शिक्षार्थियों, अभी तक आप योग सूत्र के ऐतिहासिक पक्ष एवं बाहरी स्वरूप को जान चुके हैं। योग सूत्र के अनुसार, योग की परिभाषा जानने से पहले हम विभिन्न मतों में दी गई योग की परिभाषाओं पर विचार करेंगे ताकि योग सूत्र में दी गई परिभाषा पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाल सकें।

3.4.1 विभिन्न मतों में योग की परिभाषा

जैसा कि आप अपने प्रथम यूनिट में, योग की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन कर चुके हैं। आप समझ चुके हैं कि विभिन्न ग्रंथों में योग को अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया गया है, जो उनके सिद्धांतों के अनुरूप, योग की स्थिति का वर्णन करती हैं।

श्रीमद्भगवतद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण, अपने योग संदेश में जब योग का वर्णन करते हैं तो मानव को योगमय होने, कर्म करने और जीवन जीने पर प्रकाश डालते हैं। इसमें हम योग की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं में से, सबसे महत्वपूर्ण दो प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगे-

1. **'योगः कर्मसु कौशलम्'** अर्थात कुशलता पूर्वक कर्म करना योग है।

   कहने का तात्पर्य यह है कि, आसक्ति को त्याग कर, मनुष्य को कुशलता पूर्वक, कर्म करने चाहिए। आसक्ति रहित, निष्काम भाव के कर्म इसी श्रेणी में आते हैं।

2. **'समत्वं योग उच्यते'** अर्थात सर्वत्र स्थितियों में सम बने रहना है। अर्थात् लाभ-हानि, सुख-दुख, सम्मान-अपमान, यश-अपयश आदि जीवन की सभी स्थितियों में मनुष्य का समभाव में बने रहना योग कहलाता है।

ये दोनों परिभाषाएँ योग के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हैं और योग की अभिव्यक्ति श्रीमद्भगवद् गीता के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं।

आइये अब अन्य परिभाषाओं पर विचार करें-

पाणिनी अष्टाध्यायी में योग शब्द तीन अलग-अलग रूपों में व्यक्त किया गया है-

1. युज-समाधों अर्थात् योग समाधि है।
2. युजिर्-योगे अर्थात् योग जोड़ना है।
3. युज-संयमने अर्थात् योग संयम है।

लगभग सभी शास्त्रों में योग का प्रयोग उपर्युक्त इन्हीं तीन अर्थों में किया गया है।

सात्वत संहिता में शाण्डिल्य के अनुसार, **आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानना, योग है।** महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने योग को परिभाषित करते हुए बताया है कि, ***-संयोग योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनो'*** अर्थात् जीवात्मा, परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम योग है।

सिद्ध-सिद्धांत पद्धति में, ***आत्मा-परमात्मा के मिलन को योग बताया गया है।***

तंत्र के अनुसार जीव और शिव का एक रूप हो जाना योग है। विभिन्न ग्रंथों की ये परिभाषाएँ लगभग एक जैसी और एक ही मत की ओर झुकी हुई प्रतीत होती हैं। जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार योग को इस प्रकार भी परिभाषित किया गया है।

श्रीराम शर्मा के अनुसार- ***'स्वयं को जानना योग है'*** वही श्री अरविंद जी योग की परिभाषा देते हैं कि, ***'सम्पूर्ण जीवन योग है।'*** और अरविंद आश्रम की श्री माँ *योग को आध्यात्मिक मनोविज्ञान के रूप में* परिभाषित करती हैं।

इस प्रकार विभिन्न मतों में योग की परिभाषाओं को देखने पर यह पता चलता है कि योग इन विभिन्न मतों में, एक साधन के रूप में विद्यमान है। योग जीवनशैली, योग साधना, योग दर्शन के बिना विभिन्न दर्शन, मत और साधना विज्ञान अपूर्ण है।

योग सूत्र में योग की परिभाषा

आइये अब, योग सूत्र में दी गई योग पर आधारित परिभाषा को जानें। योग सूत्र में समाधि पाद के अन्तर्गत, दूसरे सूत्र में योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः॥ (पातांजल योग सूत्र-1/2)

अर्थात् *चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।* इस प्रकार यह स्पष्ट होता है, कि योग उस विशेष अवस्था का नाम है, जिसमें चित्त में चल रही सभी वृत्तियाँ रूक जाती हैं। व्यास भाष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि, योग समाधि है। और समाधि तक पहुँचने के लिए विभिन्न अभ्यास किए जाते हैं। आप पहले ही यह जान चुके हैं कि युज धातु को तीन अर्थों में प्रयोग किया गया है जो योग की परिभाषा के अनुसार बिल्कुल उपयुक्त हैं।

यहाँ आप विचार कर रहे होंगे कि यह चित्त क्या है? इस परिभाषा को ठीक से समझने के लिए हमें चित्त और वृत्ति को समझना परम आवश्यक है। आइये चित्त, वृत्तियों और इसके सम्बंध को व्यावहारिक रूप से जानें-

चित्त स्मृतियों, कल्पनाओं, संस्कारों आदि का भण्डार गृह है। आपने देखा होगा कि कुछ बच्चे स्वभाव से बडे चंचल होते हैं और हर समय कुछ न कुछ करते रहना उनके स्वभाव में शामिल होता है। यह चंचलता उनके चंचल चित्त के कारण ही होती है। उनके चित्त में जिस प्रकार की वृत्ति यानि दृश्य कल्पनाएँ, स्मृतियाँ, वस्तुएँ आदि आती रहती हैं, उसी प्रकार के कार्य करने को अग्रसर होते हैं। लेकिन एक योगी का चित्त बिल्कुल शान्त होता है। उसमें किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं होती, यही स्थिति योग कहलाती है। इसमें बहुत से स्तर आते हैं। इन स्तरों को योग में विभिन्न उपलब्धियों के द्वारा समझा जा सकता है। योग की वह अंतिम उपलब्धि, जिसमें चित्त बिल्कुल शान्त हो, चित्त की समाधिमय स्थिति कहलाती है।

योग विद्वानों ने चित्त की कल्पना एक सरोवर से की है। सरोवर का शान्त जल, जिसमें कोई लहरें नहीं उठती, यही समाधि है जोकि एक योगी की स्थिति है।

चित्र 3.4: सरोवर की तरह योगी का चित्त

इसके विपरीत एक सामान्य जन का चित्त सरोवर के उस अशान्त जल की तरह है जैसे सरोवर के जल में कोई पत्थर पड़ते ही, लहरें उठने लगती हैं।

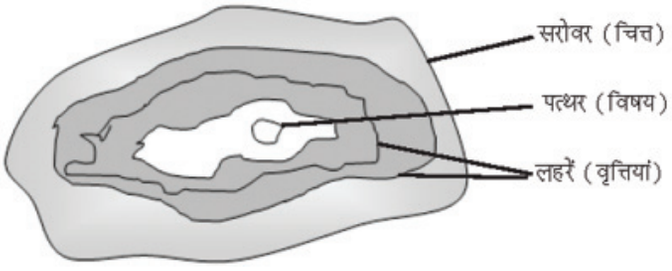

चित्र 3.5: सामान्य जन का चित्त

प्रिय शिक्षार्थियों, यहाँ यह समझना परम आवश्यक है कि पातंजल योग में, योग को समाधि कहा गया है। अन्य ग्रंथों में योग की परिभाषा, उन ग्रन्थों के अनुसार अलग अलग समझाई गई है मगर सभी का लक्ष्य एक ही है-समाधि।

संक्षिप्त सारांश में हम कह सकते हैं, कि पातंजल योग सूत्र में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध योग कहा गया है।

यूनिटगत प्रश्न 3.3

रिक्त स्थान भरिए-

(क) योग कर्मसु .....।

(ख) समत्वं ..... उच्यते।

(ग) शाण्डिल्य के अनुसार *''आत्मा और ..... का मिलन''* योग है।

(घ) श्री अरविन्द जी के अनुसार ..... योग है।

(ङ) समाधिपाद में योग की परिभाषा, ''योगश्चित्त वृत्ति .....'' दी गई है।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- योग हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है, जो प्राचीन काल से, ही हमारी विभिन्न परम्पराओं से जुड़ा है।
- योग साधना का लक्ष्य, कैवल्य प्राप्ति है।
- वैदिक ग्रंथ, उपनिषद, पुराण और दर्शन आदि में योग का वर्णन मिलता है जिससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि योग वैदिक काल से ही सृष्टि में उपलब्ध है।
- सिन्धु घाटी मोहन–जोदड़ो आदि ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई में प्राप्त अवशेष, योग की प्रमाणिकता को सिद्ध करते हैं।
- हिरण्यगर्भ नामक ऋषि निश्चित रूप से योग के प्रवर्तक माने जाते हैं, लेकिन महर्षि पतंजलि का योगदान, भारतीय योग दर्शन के क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि है।
- महर्षि पतंजलि ने योग को व्यावहारिक, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से पातंजल योग सूत्र में प्रस्तुत किया है।
- पातंजल योग सूत्र में कुल चार पाद हैं जिसमें 195 सूत्र हैं।
- महर्षि पतंजलि ने, योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। और व्यास जी ने योग समाधि कहकर, योग शब्द का अर्थ, समाधि ही किया है।
- चित्त की वृत्ति का निरोध करना ही योग है। चित्त का तात्पर्य अंत: करण से है। बाह्यकरण ज्ञानेन्द्रियाँ, जब विषयों को ग्रहण करती हैं, मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है।
- आत्मा साक्षी भाव से देखती है, तब बुद्धि और अहंकार विषय का निश्चय कर, उसमें कर्तव्य भाव लाते हैं। इस सम्पूर्ण क्रिया के दौरान चित्त में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह वृत्ति कहलाता है। चित्त दर्पण के समान है। विषय उसमें आकर प्रतिबिम्बित होता है।
- इस प्रकार चित्त विषयाकार हो जाता है। इस चित्त को विषयाकार होने से रोकना ही वास्तव में योग है।

यूनिटांत प्रश्न

1. भारतीय परम्परा में, योग के स्वरूप का, विस्तार में वर्णन कीजिए।
2. महर्षि पतंजलि के पांतजल योग सूत्र का परिचय देते हुए, इसके ऐतिहासिक महत्व और स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

3. चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। समझाइये।

4. विभिन्न मतों में, योग की परिभाषाओं को स्पष्ट कीजिए।

5. महर्षि पतंजलि का परिचय देते हुए, योग सूत्र के चारों पादों पर विस्तार प्रकाश डालिए।

6. निम्न पर टिप्पणी कीजिए–

   (i) ऐतिहासिक संदर्भों में योग

   (ii) समाधि पाद

   (iii) साधन पाद

   (iv) विभूति पाद

   (v) कैवल्य पाद

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

(क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3.2

1. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य
   (घ) सत्य (ङ) सत्य
2. (क) चार (ख) माध्यम साधकों के लिए
   (ग) साधन (घ) उच्चकोटि

3.3

(क) कौशलम् (ख) योग (ग) परमात्मा

(घ) सम्पूर्ण जीवन (ग) निरोध:

4

हठयोग एवं प्रमुख ग्रंथ

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछले यूनिट में आपने, अष्टांग योग के विषय में अध्ययन किया, जिसमें योग के आठ अंगों की चर्चा की गई – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। आध्यात्मिक दृष्टि से योग का तात्पर्य 'समाधि' ही है। समाधि तक पहुँचने के लिए योग के विभिन्न पथ या परम्पराएं हैं जैसे – ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, राज योग, मंत्रयोग, लय योग, हठयोग आदि।

हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ, गुरू गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वामी स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है। इस यूनिट में हम हठयोग पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- हठयोग का सामान्य परिचय दे सकेंगे;
- हठयोग का अर्थ एवं मुख्य परिभाषाएँ बता सकेंगे;
- मानव शरीर में चक्र, कुण्डलिनी एवं नाड़ियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- घरेण्ड सहिंता के अनुसार हठयोग के सप्तांगों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- हठयोग अभ्यास के लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

4.1 हठयोग

'हठ' शब्द की उत्पति दो बीज मंत्र 'हं' तथा 'ठ' के योग से हुई है। सृष्टि में दो विपरीत धारायें या शक्तियाँ एक साथ कार्य करती हैं – ये हैं धनात्मक एवं ऋणात्मक। प्राण शक्ति का स्रोत पिंगला नाड़ी है, जो शारीरिक क्रियाओं से संबंधित है! बीज मंत्र 'हं', पिगंला नाड़ी में प्रवाहित सूर्य प्रवाह का परिचायक है। मानसिक शक्ति का स्रोत, इड़ा नाड़ी है जो, बीज मंत्र 'ठं' इड़ा नाड़ी में बहने वाले चन्द्र प्रवाह की ओर संकेत करता हैं। इन दोनों प्रवाहों के मध्य संतुलन लाने की विद्या को ही हठयोग कहते हैं। संतुलन की स्थिति में, प्राण का प्रवाह, आत्म शरीर में स्थित महत्वपूर्ण सुषुम्ना नाड़ी में प्रारंभ हो जाता है।

हठयोग का प्रवर्तक, भगवान शिव को माना जाता है। तंत्र शास्त्रों के अनुसार, भगवान शिव ने सर्वप्रथम पार्वती को तंत्र का उपदेश दिया। इन्हीं तन्त्र आगमों से ही हठयोग की उत्पत्ति हुई। हठयोग विद्या की उत्पत्ति के समय के संबंध में, विद्वानों में बड़ा मतभेद है किन्तु सामान्यतया इसे सातवीं सदी के बाद का माना जाता है। इस विद्या को, परिष्कृत रूप में, समाज के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय गुरु मत्स्येन्द्र नाथ तथा गुरु–गोरखनाथ को जाता है।

चित्र 4.1: हठयोग

हठयोग के महान आचार्यों में गुरु गोरखनाथ के अतिरिक्त स्वामी स्वात्माराम, महर्षि घेरण्ड तथा श्रीनिवास भट आदि का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है!

हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हैं – गोरक्षसंहिता, शिव संहिता, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा हठरत्नावाली आदि। हठयोग के ग्रंथों में योग के अंगों के विषय में मतभेद हैं। राजयोग का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ, पतंजलि योग सूत्र, योग के आठ अंग मानता है। गुरुगोरखनाथ अष्टरांग योग से यम, नियम को हटाकर केवल छः योगांग मानते हैं। स्वामी स्वात्माराम योग के चार अंग मानते हैं और घेरंड संहिता क`लेखक महर्षि घेरंड सप्तांग की ही चर्चा करते हैं। किन्तु सामान्यतः सभी एक बात पर एकमत हैं कि हठयोग का शारीरिक पक्ष है तथा राजयोग मानसिक पक्ष है। स्वामी स्वात्माराम अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ में हठयोग को राजयोग का साधन मानते हैं –

''प्रणम्य श्री गुरूनाथं स्वात्मारामेण योगिना।
केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते''॥

अर्थात् श्रीनाथ गुरु को प्रणाम करके, योगी स्वात्माराम केवल, राजयोग की लिए हठविद्या का उपदेश करते हैं।

हठयोग की परम्परा के अनुसार मनुष्य के अंदर दो शक्तियाँ प्राणशक्ति और मन शक्ति साथ-साथ कार्य करती है। किन्तु अधिकांश व्यक्तियों में ये शक्तियाँ सामान्यतः सुषुप्त एवं निष्क्रिय रहती हैं। हमारी शक्ति का अधिकांश भाग उपयोग ही नहीं हो पाता है। विज्ञान भी इस बात को मानता है कि मनुष्य का मस्तिष्क अपार शक्ति का केन्द्र है किन्तु उस संपूर्ण शक्ति का दस-पन्द्रह प्रतिशत ही मनुष्य उपयोग कर पाता है। योग विद्या मनुष्य की इस सम्पूर्ण शक्ति का सर्वाधिक उपयोग कर, उसे परम पुरुषार्थ मोक्ष तक पहुँचाने की ही कला है। योग मनुष्य की एकाग्रता शक्ति विकसित कर उसे मोक्ष तक पहुँचा देती है। योग में एकाग्रता शक्ति को विकसित करने का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

4.1.1 हठयोग का अर्थ एवं परिभाषा

यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'ह' और 'ठ' से मिलकर बना है। योग शिखोपनिषद् में हठयोग की बहुत सुन्दर ढंग से व्याख्या की गई है-

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणोन्दुस्च्यते।
सूर्य चन्द्रमसौरेक्यं हठ इत्यभिधीयते॥

(योग शिखोपनिषद्)

'ह' से तात्पर्य हकार अर्थात् सूर्य स्वर तथा 'ठ' से तात्पर्य ठकार अर्थात् चन्द्र स्वर।

सूर्य स्वर व चन्द्र स्वर का एकीकरण हठयोग है।

इन दो दिव्य विग्रहों के लिए, संस्कृत में कई नामों का उल्लेख मिलता है यथा –

हठ = 'ह' + 'ठ'	
ह	ठ
पिंगला	इड़ा नाड़ी
सूर्य स्वर	चन्द्र स्वर
शिव	शक्ति
ब्रह्म	जीव

जब इड़ा और पिंगला नाड़ी एक समान चलने लगें, तो सुषुम्ना का जागरण होता है और जब सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है, जब यह कुण्डलिनी छः चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर परमशिव से मिलती है तो आध्यात्मिक अर्थों में यह हठयोग कहलाता है।

परिभाषायें

विभिन्न ग्रंथों में हठयोग की चर्चा मिलती है और हठयोग को परिभाषित किया गया है। मुख्य परिभाषाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है :

सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार

हकार:कथित:सूर्य ठकारचन्द्र उच्यते।
सूर्य चन्द्रमसोर्योगात् हठयोग निगधते॥

अर्थात हकार सूर्य स्वर और ठकार से चन्द्र स्वर चलते हैं। इन सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्राणायाम आदि के विशेष अभ्यास से प्राण की गति को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार

अपाने जुहहति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणपानगती रूद्धवा प्राणायामपरायणाः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 4/20)

अर्थात् प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलाकर सम कर लेना ही हठयोग है।

शिवसंहिता के अनुसार

प्राणपानौ नाद बिन्दु जीवात्मा, परमात्मनौ।
मिलित्वा घटते यस्मसत्तस्माद् वै घट उच्यते॥

(शिव संहिता 3/63)

अर्थात् जिसमें प्राण और अपान, नाद और बिंदु, जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाता है। उसी को घट अवस्था या हठयोग कहते हैं। जब प्राणायाम और बंध का अभ्यास कर अपान को ऊपर खींचकर प्राण में मिलाया जाता है तो यह हठयोग साधना कहलाती है।

योग ग्रंथों में शरीर में विद्यमान पाँच प्राणों की चर्चा की गई है – उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान। ये पाँच प्राण हैं। ये शरीर में अलग-अलग स्थानों के कार्यों एवं ऊर्जाओं का नियंत्रण व नियमन करते हैं। उदान मुख में, प्राण हृदय में, समान नाभि, अपान गुह्य प्रदेश एवं व्यान संपूर्ण शरीर के क्रिया कलापों व ऊर्जा का नियंत्रण नियमन करता है। हठयोग में इसी प्राण को प्राणायाम के माध्यम से मिलाकर मन को नियंत्रित किया जाता है।

प्राण तथा अपान का, समान में मिल जाना ही, हठयोग है।

नाद ब्रह्मांड में व्याप्त और विलग ब्रह्म का ही रूप है। बह्मा सृष्टि का आरंभ नाद से ही माना जाता है। नाद वह ऊर्जा है जो सभी तत्वों को उत्पन्न करने वाली है। ऊर्जा न कभी जन्मती है और न नष्ट होती है। इसी नाद का ज्ञान हो जाना ही हठयोग की साधना है।

परिभाषाओं में जीवात्मा और परमात्मा के एक होने की प्रक्रिया को हठयोग कहा गया है। वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं परन्तु अविद्या, अज्ञान के कारण वह अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। अज्ञानवश जीवात्मा शरीर, इन्द्रियों को अपना स्वरूप समझ लेता है एवं दु:ख भोगता है। हठयोग के माध्यम से जब अज्ञान हटता है तो उनके एक होने का आभास हो जाता है।

यूनिटगत प्रश्न 4.1

1. सत्य/असत्य बताईये –

   (i) हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। ( )

   (ii) योग के ग्रंथों में पाँच प्राण – प्राण, अपान, व्यान, समान एवं उदान की चर्चा मिलती है। ( )

   (iii) हठयोग, हठ का योग है। ( )

   (iv) जीवात्मा परमात्मा के एक होने की प्रक्रिया को हठयोग कहा गया है। ( )

   (v) यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'हं' और 'ठं' से मिलकर बना है। ( )

4.2 चक्र

हठयोग में एकाग्रता का केन्द्र बिन्दु 'चक्र' होते है। तन्त्र और हठयोग परम्परा में चक्रों की संख्या सात मानी गयी है। चक्र का शाब्दिक अर्थ गोलाकार होता है। हठयोग और तंत्र परम्परा में चक्रों को ऊर्जा का केन्द्र माना जाता है, जिसके माध्यम से अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानव शरीर में प्रवाहित होती है, ये चक्र हमारे शरीर में वे विशेष स्थान हैं, जहाँ से संपूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है। प्रत्येक चक्र एक स्विच की भांति होते हैं, जो मस्तिष्क के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को जागृत करते हैं। *सामान्यतया*, हमारे ये चक्र सुषुप्त तथा निष्क्रिय रहते हैं। योग का अभ्यास कर इन चक्रों में प्राण का प्रवाह बढ़ाकर, इन्हें जागृत किया जाता है, जिससे इन केन्द्रों पर बाधित ऊर्जा मुक्त होती है और साधक चेतना के उच्च स्तरों की ओर अग्रसर होता है। ये चेतना के निम्न स्तर से सर्वोच्च स्तर तक साधक को पहुँचाकर उसकी समस्त सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर देते हैं। इन सातों चक्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

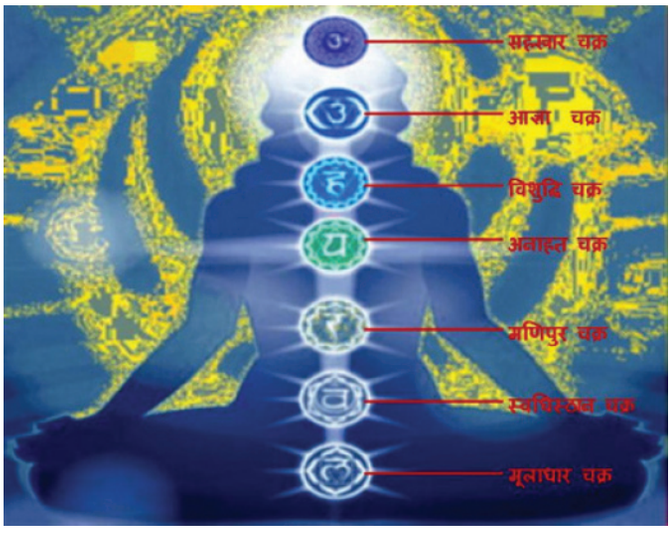

चित्र 4.2: चक्र आसन

4.2.1 मूलाधार चक्र

मूलाधार चक्र : सबसे नीचे का चक्र होने के कारण इसे आधार चक्र भी कहा जाता है। पुरुष शरीर में इसका स्थान जननेन्द्रिय और गुदा द्वार के बीच में है तथा स्त्री शरीर में गर्भाशय ग्रीवा में होता है। यह पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इसकी पंचतन्मात्रा गंध है। इसका चिन्ह गहरे लाल रंग का चतुर्दलीय कमल है, जिसकी पंखुड़ी पर वं, शं, षं तथा सं लिखा हुआ है इसके केन्द्र में पृथ्वी तत्व का यंत्र पीला वर्ग है और इसका बीज मंत्र 'लं' है।

मूलाधार चक्र को मूल केन्द्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्राथमिक महत्व की शक्ति जिसे कुंडलिनी शक्ति कहते है, निवास करती है। यह कुंडलिनी यहाँ सुषुप्त रूप में है जो इसके केन्द्र के अंदर स्थित शिवलिंग के चारों **ओर साढ़े लपेटा** लिए हुए है। संपूर्ण ब्रह्माण्डीय एवं मानवीय

शक्तियों का यह केन्द्र है। इस शक्ति का प्रकटीकरण काम शक्ति, संवेदना एवं आत्मिक शक्तियों के रूप में होता है। सामान्य व्यक्ति इस शक्ति को काम शक्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसी कारण सामान्य व्यक्ति अपनी शक्ति का क्षय कर पतनोन्मुखी रहता है। योग का अभ्यास कर इस शक्ति को जगाकर साधक अपनी चेतना को उर्ध्वगामी बनाकर परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। **हठयोग की विभिन्न क्रियाओं एवं एकाग्रता का अभ्यास कर, साधक अपनी असीम शक्ति को जागृत कर उसे ऊपर के चक्रों से ले जाते हुए अन्ततः सहस्त्रार में प्रवेश कर, पवित्र चेतना शिव से संयोग कर लेता है, यही योग है। शिव एवं शक्ति के संयोग को ही योग कहा जाता है।** यही हठयोग का अंतिम लक्ष्य भी है।

4.2.2 स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र : मूलाधार चक्र से लगभग दो अंगुल ऊपर मेरूदण्ड में जननेन्द्रिय के ठीक पीछे स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति है। स्वाधिष्ठान, स्व और अधिष्ठान के संयोग से बना है जिसका शब्दिक अर्थ है, स्वयं का निवास स्थान। इस चक्र का चिन्ह तेज लाल रंग का षट्दलीय पद्म है। दलों पर मंत्र – बं, भं, मं, यं, रं, लं लिखा हुआ है। इसका बीज मंत्र 'वं' है। यह जल तत्व का प्रतिनिधि चक्र है। जिसकी तन्मात्रा रस है।

प्रिय शिक्षार्थियों, स्वाधिष्ठान चक्र का प्रमुख संबंध, उत्सर्जक एवं प्रजनन अंगों से है। वस्तुतः यह इन्द्रिय सुखोपभोग की अभिलाषा का प्रतीक है अर्थात इस स्तर में आरूढ़ व्यक्ति इन्द्रिय सुखोपभोग की लालसा में ही प्रयासरत रहता है। इस स्तर का व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन, मद्य सेवन तथा मैथुन में ही संलग्न रहता है, इस कारण उसकी शक्ति अतीनिद्रय स्तर की सुखानुभूति से वंचित रह जाती है। यह चक्र अचेतन मन का स्थान है। इस केन्द्र का शुद्धिकरण कर मनुष्य पाशविक प्रवृत्ति से ऊपर उठ कर उर्ध्वगामी हो जाता है।

4.2.3 मणिपुर चक्र

मणिपुर का शब्दिक अर्थ मणियों का नगर होता है। मणि का एक अर्थ अतीव प्रकाश भी होता है, जो व्यक्ति की उर्जा एवं आभा का प्रतीक है। यह अग्नि तत्व का केन्द्र है जिसकी तन्मात्रा रूप है। मणिपुर चक्र का वर्ण दस दलों वाले पद्म के रूप में होता है, जिसका रंग पीला है। इन दलों पर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं अंकित हैं। बीज मंत्र 'र' है।

मणिपुर चक्र की स्थिति, नाभि के पीछे, रीढ़ में होती है, जिसका संबंध पाचन तथा भोजन के अवशोषण से होता है। इसके अतिरिक्त यह अग्नाशय, पित्ताशय तथा पाचक द्रव, अम्ल, रस आदि के श्राव का नियन्त्रण करता है। मणिपुर चक्र, किडनी के ऊपर स्थित एड्रिनल ग्रंथि का भी नियंत्रण करता है। जो लोग आलस्य, सुस्ती, निराशा, अवसाद, अपचन और मधुमेह से पीड़ित है, उन्हें मणिपुर चक्र पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यहाँ प्राण एवं अपान का मिलन होता है, जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक ताप की उत्पत्ति होती है जो जीवन रक्षा के लिए अनिवार्य है।

4.2.4 अनाहत चक्र

अनाहत का शाब्दिक अर्थ आहत रहित या आघात रहित होता है। भौतिक जगत की समस्त ध्वनियाँ, दो वस्तुओं के टकराव से होती हैं। परन्तु हठयोग की मान्यतानुसार भौतिक जगत के परे की ध्वनि आहत रहित होती है। इसे ही अनाहत ध्वनि कहते हैं। हृदय केन्द्र वह स्थान है, जहाँ से ये ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। हठयोगी इस आंतरिक ध्वनि की तरंगों को ग्रहण करता है। यह वक्ष के केन्द्र में पीछे मेरूदण्ड में स्थित होता है।

अनाहत चक्र बारह दल वाले नीले कमल के रूप में दर्शाया जाता है। दलों पर अंकित वर्ण हैं – कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञ, टं, ठं। यह चक्र वायु तत्व का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी तन्मात्रा स्पर्श है। इसका बीज मंत्र 'यं' है।

भौतिक स्तर पर अनाहत चक्र का सम्बंध हृदय व फेफड़ों से है। साथ ही इसका रुधिर एवं श्वसन संस्थान से भी इसका सम्बंध पाया जाता है। इस प्रकार शिक्षार्थियों, हृदय रोग, रक्तचाप की समस्या, क्षय रोग (टी.बी.) और अस्थमा आदि रोग, इस चक्र से सम्बंधित हैं। अनाहत चक्र पर मन को एकाग्र करने से, उक्त रोगों से निजात मिलती है। यह नि:स्वार्थ प्रेम, करुणा, मातृत्व तथा क्षमाशीलता विकसित करता है।

4.2.5 विशुद्धि चक्र

विशुद्धि का शाब्दिक अर्थ है विशेष रूप से शुद्ध। चूंकि इस चक्र पर शुद्धिकरण (मन एवं शरीर) की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है, इसलिए ही इसे विशुद्धि चक्र कहा जाता है। यह चक्र गर्दन के पीछे कण्ठ कूप के पीछे, मेरूदण्ड में स्थिति होता है। इसका सांकेतिक चिन्ह सोलह पंखुड़ियों वाला कमल दल है, जिसका रंग जामुनी मिश्रित धुएं का रंग है। इन दलों पर – अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः स्वर अंकित हैं। इसका बीज मंत्र 'हं' है। यह आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करता है तथा इसकी तन्मात्रा शब्द है।

विशुद्ध चक्र विवेक एवं सही समझ जागृत करने का स्थान है। यह कंठ नलिका, लैरिन्क्स, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रंथियों का नियमन करता है। शरीर के इन अंगों में उत्पन्न रोगों को, इस चक्र पर एकाग्रता करने से ठीक किया जा सकता है। ग्रीवा का यह केन्द्र वह स्थान है, जहाँ दिव्य रस अमृत का पान किया जा सकता है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास द्वारा इस रस की ग्रंथि को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

4.2.6 आज्ञाचक्र

आज्ञा का शाब्दिक अर्थ आदेश होता है। चेतना की गहन अवस्था में इस चक्र से आदेश दिया जाता है, जो शरीर के समस्त अंगों तक पहुँचता है, इसी कारण इसे आज्ञाचक्र कहते हैं। मध्य मस्तिष्क में, भूमध्य के पीछे मेरूदण्ड के शीर्ष पर, इस चक्र की स्थिति है। इस चक्र को तीसरा नेत्र, ज्ञान, चक्षु, त्रिकुटी, त्रिवेणी, भूमध्य, गुरूनेत्र या शिव चक्र कहते हैं। यह चक्र कमल की

दो पंखुडियों के रूप में दर्शाया जाता है। ये दो पंखुडियाँ सूर्य तथा चन्द्र, पिंगला तथा इड़ा का प्रतीक हैं। इसका रंग हल्का भूरा या सफेद है। दलों पर हं, क्षं लिखा होता है, जो प्राणशक्ति के ऋणात्मक एवं धनात्मक प्रवाह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसका बीज मंत्र ऊँ है। इस चक्र का तत्व मन है। जब आज्ञा चक्र जागृत होता है, तब मन स्थिर एवं शक्तिशाली हो जाता है, तथा प्राणों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है। यह चक्र अतीमानसिक शक्तियों जैसे – अतीन्द्रिय दृष्टि, अतीन्द्रिय श्रवण तथा दूर संवेदन के जागरण के लिए उत्तरदायी होता है।

4.2.7 सहस्त्रार

सहस्त्रार का शाब्दिक अर्थ एक हजार होता है। इसका प्रतीक एक हजार दल वाले प्रकशित कमल के रूप में है। यह सिर के शीर्ष भाग, जहाँ छोटे बच्चे की कोमल अस्थि होती है, पर अवस्थित होता है। वस्तुत: यह चक्र नहीं, बल्कि उच्च चेतना का निवास स्थान है। कमल के केन्द्र पर, एक उज्जवल शिवलिंग है। जो पवित्र चेतना का प्रतीक है। यह अनादि-अंनत एवं असीम चेतना का स्थान होता है। यह वही स्थल है जहाँ शिव-शक्ति का योग, चेतना का शक्ति से संयोग तथा व्यक्तिगत आत्मा का असीम आत्मा से मिलन होता है। यही हठयोग का परम लक्ष्य है। प्रकृति का पुरुष से मिलन ही योग है। इसे ही कुण्डलिनी जागरण कहते हैं।

4.3 कुण्डलिनी

कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति कुण्डल शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ सांप होता है। हठयोग एवं मंत्र दर्शन की मान्यता है, कि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र पर साढ़े तीन लपेटा लिए हुए सोई है। उसकी सही सुषुप्ति स्थिति ही जीवात्मा का बंधन है। शक्ति सुषुम्ना के मार्ग को अवरूद्ध करते हुए, वहीं सोई हुई है। हठयोग के अंगों – यथा षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा तथा ध्यान-समाधि आदि का अभ्यास कर कुंडलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है। यह शक्ति मूलाधार से होते हुए सभी चक्रों का बेधन कर अतंत: सहस्रार पर आकर विराम लेती है। इस शक्ति का सहस्रार पर आकर शिव में लीन हो जाना ही, कुण्डलिनी जागरण कहलाता है। जागृति के उपरान्त कुण्डलिनी सब चक्रों से होती हुई सहस्रार पर पहुँचती है तथा उसी स्रोत में उसका विलीनिकरण हो जाता है, जहाँ से उसकी उत्पत्ति हुई है।

4.4 नाड़ी

नाड़ी का शाब्दिक अर्थ है- धारा या प्रवाह। आधुनिक समय में नाड़ी शब्द का अर्थ 'नस या तंत्रिका' शब्द से लिया गया है। किन्तु, हठयोग के अनुसार नाड़ी और नसें एक नहीं हैं, क्योंकि नाड़ी की रचना सूक्ष्म तत्वों से होती है। नसों और तंत्रिकाओं की स्थिति भौतिक शरीर में होती है। किन्तु नाड़ियाँ अतीन्द्रिय शरीर में होती है। ये वे सूक्ष्म नलिकायें हैं जो हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित होती हैं। इन्हीं के माध्यम से प्राण शक्ति एक जगह से दूसरे जगह पर जाती है। हठयोग ग्रंथों के अनुसार, हमारे सूक्ष्म शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ पायी जाती हैं। शिव संहिता के अनुसार, हमारे शरीर में साढ़े तीन लाख नाडियाँ हैं। किन्तु अधिकतर हठयोग ग्रंथ बहत्तर हजार नाड़ियों

पर एकमत हैं। इन नाड़ियों में 14 नाड़ियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से भी 3 नाड़ियाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये तीन नाड़ियाँ हैं- **इड़ा**, **पिंगला एवं सुषुम्ना**। इन तीनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है- सुषुम्ना नाड़ी। सभी बहत्तर हज़ार नाड़ियाँ इसी सुषुम्ना नाड़ी की 34 नाड़ियाँ हैं। शिक्षार्थियों, आइये इन तीन प्रमुख नाड़ियों का संक्षिप्त परिचय समझें-

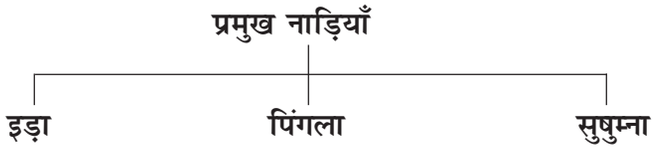

4.4.1 इड़ा नाड़ी

इड़ा नाड़ी मूलाधार चक्र के बायी ओर से निकलकर, प्रत्येक चक्र में से वक्राकार बहती हुई, अन्त में आज्ञा चक्र के बायी ओर समाप्त होती है। इड़ा का रंग नीला माना गया है। यह ऋणात्मक होती हैं, जिसे चंद्र नाड़ी भी कहते हैं। यह हमारी मानसिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। यह नाड़ी शीतलता प्रदान करती है, जिसके कारण इसे, परानुकंपी तंत्रिका का नियन्त्रक माना जाता है। जब व्यक्ति की इड़ा नाड़ी चल रही होती है, तो **मानसिक शक्तियों की प्रधानता होती** है। **मन अंतर्मुखी होता है। इस अवधि में चितंन, मनन तथा एकाग्रता का कार्य करने में सरलता होती है।** इड़ा नाड़ी का प्रवाह अधिकतर निद्रावस्था में होता है।

यदि भोजन के समय इड़ा नाड़ी का प्रवाह होता है तो पाचन क्रिया ठीक नहीं होती है तथा अपचन हो जाता है।

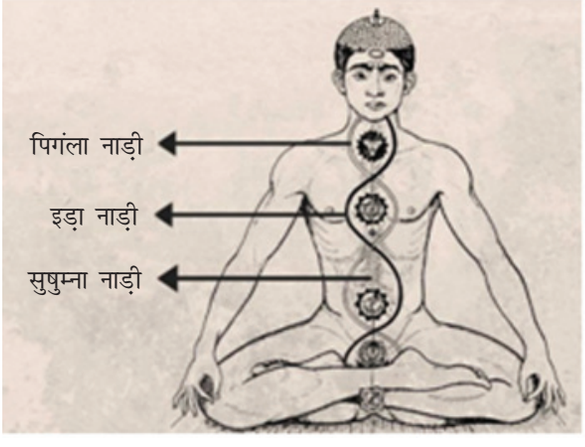

चित्र 4.3: इड़ा और पिगंला नाड़ी

4.4.2 पिगंला नाड़ी

पिंगला नाड़ी : मूलाधार चक्र के दांयी ओर से निकलकर, प्रत्येक चक्र में इड़ा नाड़ी की विपरीत दिशा में वक्राकार बहने वाली पिंगला नाड़ी, अंततः आज्ञाचक्र के दांयी ओर समाप्त होती है। **इसका**

रंग लाल होता है। यह धनात्मक होती है जिसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। यह नाड़ी प्राणशक्ति एवं उर्जा शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। यह सक्रिय बहिर्मुखी एवं पुरूष जातीय है। दांये नथुने के प्रवाहकाल में प्राणशक्ति अधिक क्रियाशील होती है, इससे शारीरिक कार्य, पाचन आदि में सहायता मिलती है। इसका प्रवाह गर्म होता है इसी कारण, इसके प्रवाह काल में मन बहिर्मुखी रहता है एवं शरीर में अधिक ताप उत्पन्न होता है।

यदि रात्रि में पिंगला का प्रवाह अधिक होता है तो व्यक्ति को कठिनाई से नींद आती है।

4.4.3 सुषुम्ना नाड़ी

सुषुम्ना नाड़ी : सुषुम्ना नाड़ी मेरूदण्ड के केन्द्र में, इड़ा तथा पिंगला के मध्य में स्थित होती है। सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह, मेरूदण्ड में मूलाधार से सहास्रार तक होता है। इस सुप्त नाड़ी का रंग चांदी सा है। यह आध्यात्मिक मार्ग है, जो सामान्यतया सुप्त ही रहता है। जब इड़ा तथा पिंगला नाड़ी को षट्कर्मों तथा अन्य हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शुद्ध कर दिया जाता है तो, प्राण का प्रवाह संतुलित हो जाता है। जब इड़ा एवं पिंगला नाडियाँ, शुद्ध तथा संतुलित हो जाती हैं तथा मन में नियंत्रण आ जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण प्रवाहित होने लगता है। ध्यान में सफलता के लिए, सुषुम्ना का प्रवाहित होना आवश्यक है। जब सुषुम्ना प्रवाहित होती है तब कुण्डलिनी जागृत होकर, चक्रों से ऊपर चढ़ती हुई, सहस्रार की ओर उन्मुख होती है।

यूनिटगत प्रश्न 4.2

A. सुमेल कीजिए–

1.	मूलाधार चक्र	(क)	अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व
2.	स्वाधिष्ठान चक्र	(ख)	वायु तत्व का प्रतिनिधित्व
3.	मणिपुर चक्र	(ग)	पृथ्वी तत्व का प्रतिनिधित्व
4.	अनाहत चक्र	(घ)	आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व
5.	विशुद्धि चक्र	(ङ)	जल तत्व का प्रतिनिधित्व

B. रिक्त स्थान भरिए –

1. कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति ..... शब्द से हुई हैं।
2. नाड़ी शब्द का अर्थ है .....।
3. नाड़ियों में तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाड़ियाँ हैं – इड़ा, पिंगला और .....।

4.5 हठयोग के अंग

महर्षि पतजंलि का राजयोग, योग के आठ अंगों को मानता है। ये अंग हैं : **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान तथा समाधि**। किन्तु हठयोग ग्रंथ, यम तथा नियम को छोड़कर आगे बढ़ते हैं। गोरख संहिता 6 अंगों को ही प्रमुखता देती है। हठयोगप्रदीपिका योग के चार अंग-आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा तथा नादानुसंधान को ही महत्व देती है। घेरंड संहिता, सप्तांग योग की चर्चा करती है। यह ग्रंथ हठयोग का एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो हठयोग की विस्तृत विवेचना करता है। इसलिए हम यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। ये सात अंग इस प्रकार है –

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥
प्राणायाल्लाधवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥

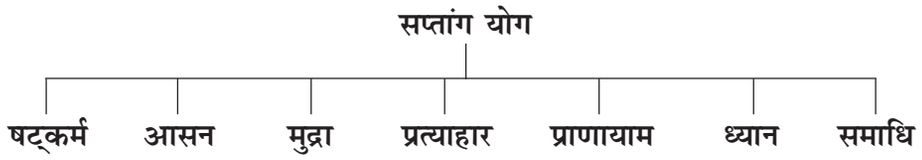

षट्कर्मों से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक हल्कापन, ध्यान से आत्म-साक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

4.5.1 षट्कर्म

स्थूल शरीर को शुद्ध करने के लिए, षट्कर्म का अभ्यास आवश्यक है। शरीर के विषाक्त तत्व या अशुद्धियों को दूर किये बिना उच्च योगाभ्यास में सफलता मिलना कठिन है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोगियों द्वारा, इन 6 वैज्ञानिक व यौगिक क्रियाओं का विकास किया गया है। इन्हीं 6 यौगिक क्रियाओं को ही षट्कर्म कहते हैं। ये षट्कर्म हैं – **धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाति।**

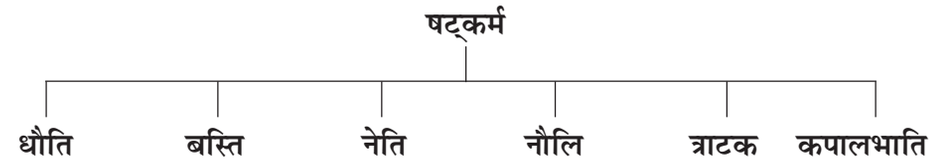

धौति : धौति का शाब्दिक अर्थ है- धोना या सफाई करना। इस क्रिया के द्वारा योगी जन अपने शरीर के अंगों की सफाई करते हैं इसीलिए इसे धौतिकर्म कहते हैं। धौति को भी चार अंगों में विभक्त किया गया है – **अर्न्तधौति, दन्तधौति, हृद्धौति** और **मूलशोधन**।

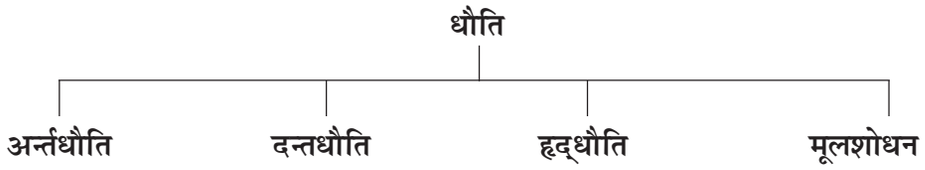

1. **अर्न्तधौति :** अन्तधौति को भी चार उपभागों में विभक्त किया गया है – ये हैं – **वातसार**, **वारिसार**, **वह्निसार** और **बहिष्कृत**।

(क) वातसार अर्न्तधौति

- दोनों होठों को कौवे की चोंच के समान कर, मुँह द्वारा धीरे-धीरे वायु को पियें या अन्दर लें।
- पूरी तरह से वायु भर जाने पर, पेट में उस वायु को चलायें और फिर उस वायु को, बाहर निकाल दें।

(ख) वारिसार अर्न्तधौति : वारिसार में वारि का अर्थ जल तथा सार का अर्थ तत्व होता है अर्थात् जल तत्व से शरीर के अंग को धोना वारिसार धौति है। इसे ही आज की भाषा में शंख प्रक्षालन कहते हैं।

- इस क्रिया में मुख से धीरे-2 जल पीते हुए गले तक भर लेना है।
- इसके बाद शंखप्रक्षालन के पाँच आसनों ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन तथा उदराकर्षण का अभ्यास कर जल को गुदामार्ग से बाहर निकाल देना होता है।
- इसका अभ्यास गुरू के मार्गदर्शन में करना चाहिए।

(ग) वह्निसार अर्न्तधौति : वह्निसार में वह्नि का अर्थ अग्नि होता है। इस प्रकार, जिस क्रिया द्वारा जठराग्नि को तीव्र करके पाचन शक्ति को बढ़ाया जाता है उसे बह्निसार या अग्निसार कहते हैं।

- इस क्रिया में मुख से श्वास बाहर निकालकर बाहर रोक कर, नाभि को मेरूदण्ड की ओर अन्दर -बाहर किया जाता है।
- जब तक श्वास को बाहर आसानी से रोक सकते हैं तब तक इस क्रिया को करना चाहिए।
- किसी भी प्रकार की असुविधा होने के पूर्व पेट के परिचालन को रोककर श्वास अन्दर लेते हैं।
- यह अग्निसार क्रिया है। इसका अभ्यास योग्य गुरु के मार्गदर्शन में करना चाहिए।

(घ) बहिष्कृति अर्न्तधौति

- कौवे की चोंच के समान होठों को करके उनके द्वारा वायु-पान करते हुए उदर को भर लें।
- उस वायु को आधे धण्टे तक अन्दर उदर में रोकर परिचालित करते हुए गुदामार्ग से बाहर निकाल दें।
- यह बहिष्कृत धौति है, इसका अभ्यास भी योग्य गुरु मार्गदर्शन में करना चाहिए।

2. **दन्तधौति :** दन्तधौति के भी पाँच भेद हैं - दन्तमल, जिह्वा मूल, कर्णरंध्र और कपालरंध्र। दोनों कानों की सफाई करने को इन्हें दो प्रकार माना गया है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

(क) दंतमूल धौति : कत्थे के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दांतों की जड़ों को मांजना चाहिए।

(ख) जिह्वाशोधन धौति : तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को कण्ड में डाल जिह्वा को स्वच्छ करन चाहिए।

(ग) कर्णरन्ध्र धौति : दोनों कानों के छिद्रों को साफ करने के कारण दन्तधौति में इसे तीसरा और चौथा प्रकार माना गया है। तर्जनी और अनामिका द्वारा योगीजन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं।

(घ) कपालरन्ध्र धौति : अपने दांये हाथ की अंगुलियों को समेटकर, एक कप की आकृति बनाकर, उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर, अपने कपालरन्ध्र यानी सिर के ऊपरी भाग पर हल्की-2 थपकी देनी चाहिए।

3. **हृद्धौति :** शिक्षार्थियों, हृद्धौति के भी तीन उपभेद हैं - **दण्ड धौति, वमन धौति** और **वसन धौति अर्थात् वस्त्र धौति**। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

(क) दण्ड धौति : केले के मृदु भाग के डण्डे, हल्दी के डण्डे या बेंत को भोजन नली में घुसाकर धीरे-2 उसे बाहर निकालना चाहिए। आजकल रबड़ की दण्डधौति भी आने लगी है, उसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु दण्ड धौति का अभ्यास योग्य मार्गदर्शन में ही करें।

(ख) वमन धौति : भोजन के बाद में कंठ तक पीकर और फिर क्षण भर बाद ऊपर की ओर देखते हुए वमन द्वारा जल को बाहर निकाल देने को वमन धौति कहते हैं। यह बाघीक्रिया के नाम से भी जानी जाती है। शिक्षार्थियों, खाली पेट भी, कंठ तक जल पीकर वमन किया जाता है।

(ग) **वसन धौति :** इसका एक दूसरा नाम वस्त्र धौति भी है, महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी पट्टी लेकर, धीरे–2 उसे बाहर निकाल लें। इसका अभ्यास भी योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

4. **मूल शोधन :** इस क्रिया में गुदा द्वार की सफाई होती है। उकड़ू बैठकर हल्दी की नरम जड़ अथवा मध्यमा अंगुली को गुदाद्वार में डालना चाहिए। दो–तीन मिनट तक उसे अन्दर छोड़कर धीरे–2 उसे बाहर निकाल लें। इसका अभ्यास भी योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

वस्ति : वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है – जल वस्ति, स्थल वस्ति।

- **जल वस्ति :** जल में नाभिपर्यन्त बैठकर उत्कट आसन लगायें और गुदा देश का आकुंचन–प्रसारण करें, यह जल वस्ति है।
- **स्थल वस्ति :** अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन –प्रसारण करें। यह स्थल वस्ति है।

नेति क्रिया : नेति कर्म दो प्रकार का होता है – जल नेति, और सूत्र नेति।

- **जल नेति :** टोंटी दार लोटे की टोंटी को, एक नाक में डालकर दूसरी तरफ झुककर, दूसरी नाक से पानी को बाहर निकलने दें। इसी प्रकार, दूसरी नाक से भी करें। यह जल नेति हैं।
- **सूत्र नेति :** आजकल रबड़ की कैथेटर आती है उसे एक नासिका मार्ग से डालकर धीरे–2 मुंह से बाहर निकाल लिया जाता है। इसी प्रकार दूसरे नाक से भी डालना चाहिए। यह सूत्र नेति है।

नौलि : उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेग पूर्वक घुमाना चाहिए। यह नौलि कर्म है। इसका अभ्यास योग्य मार्गदर्शन में करना चाहिए।

त्राटक : आँखों की पलकों को रोक कर, जब तक आँसू न गिरने लगें, तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगाकर देखते रहने की क्रिया त्राटक कहलाती है। योग्य मार्गदर्शन में ही इसका अभ्यास करें।

कपाल भाति : श्वास को नासिका से सहज रूप में लेकर नासिका द्वारा एक हल्के झटके से बाहर निकाल देने को कपाल भाति कहते हैं।

4.5.2 आसन

हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु बैठने की विशेष स्थिति से है। हठयोग परम्परानुसार, चौरासी लाख आसन माने जाते हैं। इनमें चौरासी आसनों को प्रमुख माना जाता है। किन्तु, घेरण्ड ऋषि ने अपनी पुस्तक में 32 आसनों की चर्चा की है। विस्तृत व्याख्या के लिए उनकी पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं।

4.5.3 मुद्रा

चित्त के किसी विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। योगशास्त्र में अनेक मुद्राओं का वर्णन किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने 25 मुद्राओं का उल्लेख किया है, जिनका वर्णन उनकी पुस्तक में है। किन्तु इनका अभ्यास योग्य मार्ग दर्शन में करें।

4.5.4 प्रत्याहार

इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर, अपने करण में विलीन करना, मन को एकाग्र करना प्रत्याहार कहलाता हैं।

4.5.5 प्राणायाम

प्राण का नियमन एवं नियन्त्रण करना प्राणायाम कहलाता है। ऋषियों का मत था कि प्राणायाम के अभ्यास द्वारा साधक अपनी जीवनी शक्ति पर नियन्त्रण कर लेता है, जिससे उसे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। ऋषियों ने अनेक प्रकार के प्राणायामों की खोज की थी। किन्तु उनमें से आठ प्राणायामों की चर्चा की है, जिनका विस्तृत विवरण उनकी पुस्तक में मिलता है।

4.5.6 ध्यान

किसी आलम्बन पर मन लगाकर लगातार, अधिक समय तक टिके रहना, ध्यान कहलाता है। ध्यान के अभ्यास से मन शांत, एकाग्रता की सर्वोत्कृष्ट स्थिति मानी जाती है। चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए ध्यान का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण है।

4.5.7 समाधि

समाधि, चित्त के एकाग्रता की सर्वोत्कृष्ट स्थिति मानी जाती है। यह स्वयं अपने आप के स्वरूप में स्थिति है। जब चित्त की समस्त वृत्तियाँ अपने कारण चित्त की समस्त वृत्तियाँ अपने कारण चित्त में विलीन हो जाती है और द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तो वह समाधि की अवस्था होती है।

4.6 हठयोग अभ्यास के लाभ

हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। एक ओर जहाँ यह, उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शांति देता है। वहीं दूसरी ओर बौद्धिक उन्नति तथा भावनात्मक संतुलन के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी देता है। शिक्षार्थियों इनका संक्षिप्त विवरण जानें–

1. **उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य :** यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

   - प्रत्येक उम्र का व्यक्ति इसका अभ्यास कर सकता है।
   - स्वस्थ्य लोगों को भविष्य में होने वोले रोगों से बचाता है तथा जो किसी कारणवश रोगी या कमजोर हैं, योग के अभ्यास से उन्हें रोग मुक्त करने में मदद करता है।
   - षट्कर्म के अभ्यास से शरीर के विषाक्त तत्वों को बाहर निकालने में मदद मिलती है।
   - अन्य यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है।

2. **मानसिक शांति :** यौगिक क्रियाओं के नियमित अभ्यास से व्यक्ति सुख-दुख, राग-द्वेष, अच्छा-खराब के द्वन्द्वों से तो ऊपर उठ ही जाता है। साथ ही कामना, आसक्ति, भय लोभ, काम, क्रोध जैसे मानसिक विकारों पर विजय दिलाकर साधक को मुक्ति दिलाता है। मन शांति तथा मन की एकाग्रता, भौतिक उन्नति के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं जितना आध्यात्मिक उन्नति के लिए। योग के अभ्यास से साधक को ये सब सहज ही मिल जाते हैं।

3. **भावनात्मक संतुलन :** सामान्य मनुष्य ईर्ष्या, घृणा, शारीरिक प्रेम, वासना, अपमान तथा सम्मान की आग में निरन्तर जलता रहता है। योग के अभ्यास से साधक में, बुद्धि तथा विवेक जागृत होता है। वह संसार की असारता को समझने लगता है और आवश्यकता से अधिक वह संसार में उलझता नहीं है। इसलिए उसमें भावों का संतुलन बना रहता है।

4. **आत्मिक उन्नति :** इस संसार में योग ही एकमात्र ऐसा विज्ञान है। जो मनुष्य को बहुत कम समय में ही सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि तक पहुँचा देता है। अन्य सारी विधाएं केवल सांसारिक ज्ञान कराती हैं, जबकि योग मनुष्य को संसार पर विजय प्राप्त कर सर्वोच्च सुख प्रदान करता है।

4.7 अन्य यौगिक पथ एवं परम्पराएँ

योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि मानव दिव्य जीवन जिये और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियाँ चढ़ता चला जाए, जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके। योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएँ हैं –

1. हठयोग 2. अष्टांग योग 3. कर्मयोग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग आदि।

हठयोग के विषय में आप पढ़ चुके हैं। अब आप कुछ अन्य परम्पराओं के विषय में भी जानेंगे।

1. अष्टांग योग

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए महर्षि पतंजलि ने योग के आठ अंगों का प्रतिपादन किया है, जो अष्टांग योग के नाम से लोकप्रिय है। इन्हीं आठ अंगों को राजयोग भी कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने निम्न आठ अंग बताये हैं –

1. यम (आत्म संयम)
2. नियम (आत्म शोधन)
3. आसन (शारीरिक मुद्राएं)
4. प्राणायाम (श्वास – प्रश्वास का नियमन)
5. प्रत्याहार (इंद्रियों को उनके विषय से रोकना अर्थात् अन्तर्मुख व आत्मोन्मुख करना)
6. धारणा (चित्त की एकाग्रता)
7. ध्यान (तल्लीनता)
8. समाधि (पूर्ण लक्ष्य मात्र में तन्मय हो जाना)

अष्टांग योग के विषय पर हम आपके साथ पिछले यूनिट में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं।

2. कर्म योग

मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान जीवन है। कर्म के बिना जीवन शून्य अथवा निरर्थक कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस बात का बारम्बार उपदेश मिलता है कि, हमें निरंतर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभाव से ही सत्-असत् से मिश्रित होता हैं प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुण-दोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी शास्त्र हमें सतत सत् कर्म करते रहने का ही आदेश देते हैं।

अच्छे और बुरे दोनों कर्मों का अपना अलग-अलग फल होता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा होगा और बुरे कर्मों का फल बुरा। परन्तु अच्छे और बुरे दोनों ही आत्मा के लिए बंधन रूप हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों, तो हमारी आत्मा किसी प्रकार के बंधन में नहीं फंसती। इस प्रकार आसक्ति को त्याग कर, हानि-लाभ तथा यश-अपयश में समान भाव रखते हुए, ईश्वर को समर्पित होकर किए जाने वाले कर्म ही 'कर्मयोग' कहलाते हैं। कामना रहित कर्त्तव्य, कर्म के लिए कर्मयोग के स्थान पर, लोक में निष्काम – कर्मयोग अधिक प्रचलित है। यह आत्म साक्षात्कार में विशेष सहायक माना गया है।

3. भक्ति योग

भक्ति योग का अभिप्राय यह है कि सभी रूपों, सभी नामों और सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु का या अपने परम इष्ट का दर्शन करना। श्रद्धा और विश्वास भक्ति के दो प्रमुख तत्व हैं। ईश्वर में श्रद्धा, विश्वास होने के बाद ही उनका साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर से निष्काम भाव से

ही प्रेम करने को 'विशुद्ध भक्ति' कहते हैं। मोह का अभाव हो जाने पर सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगते, उस समय भगवान की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है जिससे भक्त ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है। यही भक्ति योग की पराकाष्ठा है। योग की समस्त धाराओं में भक्ति योग श्रेष्ठतम है।

4. ज्ञान योग

मन, इन्द्रियों तथा शरीर से होने वाली समस्त क्रियाओं में कर्ता भाव के अभिमान से शून्य होकर, आत्मज्ञान से युक्त होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एक ही भाव से स्थित होने का नाम ज्ञान योग हैं इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म संन्यास योग भी कहते हैं। इस योग में योगी अपनी आत्मा का अवलोकन करते हुए परम सन्तुष्ट रहता है।

ज्ञान योग तथा कर्मयोग साधन – शैली में भिन्न होते हुए भी परमात्मा की प्राप्ति में एक ही हैं। दोनों ही परम कल्याण कारक हैं।

ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान रूपी अहंकार नष्ट हो जाता है। अज्ञान से कामना–इच्छा और कामना से कर्म उत्पन्न होते हैं। ज्ञान योग साधना के द्वारा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर, कर्म स्वतः समाप्त हो जाते हैं। संपूर्ण कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है।

यूनिटगत प्रश्न 4.3

1. सत्य/असत्य बताईये –

   (क) घरेण्ड सहिंता में सप्तांग योग की चर्चा की गई है। ( )

   (ख) स्थूल शरीर की शुद्धि के लिए, षट्कर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। ( )

   (ग) धौति शब्द का शाब्दिक अर्थ है – धोना ( )

   (घ) हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु, बैठने की विशेष स्थिति है। ( )

2. सुमेल कीजिए –

(क)	अष्टांग योग	(अ)	हठयोग
(ख)	कर्मयोग	(ब)	ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं पूर्ण समर्पण
(ग)	भक्तियोग	(स)	आसक्ति रहित कर्म
(घ)	सप्तांग योग	(द)	महर्षि पतंजलि

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- समाधि तक पहुँचने के लिए योग के विभिन्न पथ या परम्पराएँ हैं जैसे – ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, राज योग, मंत्रयोग, लय योग, हठयोग आदि।
- हठयोग के आदि प्रणेता भगवान शिव माने जाते हैं। उन्हीं की परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ, गुरू गोरक्षनाथ, मीननाथ, भर्तृहरि आदि से लेकर स्वामी स्वात्माराम एवं गोपीचंद पर्यन्तनाथों ने इस परंपरा को जीवित रखा है।
- यौगिक साहित्य के अनुसार हठ दो शब्दों 'ह' और 'ठ' से मिलकर बना है।
- जब इड़ा और पिंगला नाड़ी एक समान चलने लगें, तो सुषुम्ना का जागरण होता है और जब सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है, जब यह कुण्डलिनी छः चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर परमशिव से मिलती हैं तो आध्यात्मिक अर्थों में यह हठयोग कहलाता है।
- अर्थात् प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलाकर सम कर लेना ही हठयोग है।
- चक्र का शाब्दिक अर्थ गोलाकार होता है। हठयोग और तंत्र परम्परा में चक्रों को उर्जा का केन्द्र माना जाता है, जिसके माध्यम से अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानव शरीर में प्रवाहित होती है, ये चक्र हमारे शरीर में वे विशेष स्थान हैं, जहाँ से संपूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है।
- कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति कुण्डल शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ सांप होता है।
- हठयोग ग्रंथों के अनुसार, हमारे सूक्ष्म शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ पायी जाती हैं। शिव संहिता के अनुसार, हमारे शरीर में साढ़े तीन लाख नाडियाँ हैं।
- इन नाड़ियों में 14 नाड़ियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से भी 3 नाड़ियाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये तीन नाड़ियाँ हैं- **इड़ा**, **पिंगला एवं सुषुम्ना**।
- महर्षि पतजंलि का राजयोग, योग के आठ अंगों को मानता है। ये अंग हैं : **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि**।
- हठयोगप्रदीपिका योग के चार अंग–आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा तथा नादानुसंधान को ही महत्व देती है।
- घेरंड संहिता, सप्तांग योग की चर्चा करती है।

- षट्कर्मों से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक हल्कापन, ध्यान से आत्म-साक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।
- **हठयोग में आसन का अर्थ, मन को स्थिर करने हेतु बैठने की विशेष स्थिति से है।** हठयोग परम्परानुसार, चौरासी लाख आसन माने जाते हैं। इनमें चौरासी आसनों को प्रमुख माना जाता है। किन्तु, घेरण्ड ऋषि ने अपनी पुस्तक में 32 आसनों की चर्चा की है। विस्तृत व्याख्या के लिए उनकी पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं।
- हठयौगिक क्रियाओं के अभ्यास से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। एक ओर जहाँ यह, उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक शांति देता है। वहीं दूसरी ओर बौद्धिक उन्नति तथा भावनात्मक संतुलन के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी देता है।
- योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि मानव दिव्य जीवन जिये और आध्यात्मिक शिखर की सीढ़ियाँ चढ़ता चला जाए, जिससे जीवन के वास्तविक आनंद की प्राप्ति की जा सके। योग साधना के रहस्य को समझने के लिए निम्न प्रमुख परम्पराएँ हैं –

  1. हठयोग 2. अष्टांग योग 3. कर्मयोग 4. भक्ति योग 5. ज्ञान योग आदि।

यूनिटांत प्रश्न

1. हठयोग का अर्थ बताते हुए, इसका सामान्य परिचय दीजिए।
2. हठयोग से आप क्या समझते हैं? विस्तार से विवेचना कीजिए।
3. मानव शरीर में चक्र, कुण्डलिनी एवं नाड़ियों का वर्णन कीजिए।
4. घेरण्डसंहिता के अनुसार, हठयोग के सप्तांगों पर प्रकाश डालिए।
5. हठयोग का मानव जीवन में विशेष महत्व है। विवेचना कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.2

A

1. (ग) 2. (ङ) 3. (क) 4. (ख) 5. (घ)

B

1. कुण्डल 2. धारा या 3. सुषुम्ना

4.3

1. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य
2. (क) द (ख) स (ग) ब (घ) अ

5

योग एवं स्वास्थ्य

शिक्षार्थियों, योग और जीवन विषय के अंतर्गत वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक, योग के स्वरूप एवं उसके अस्तित्व को समझा। मुख्य उपनिषद् श्रीमदभगवदगीता के अनुसार जीवन कैसा हो जाना। साथ ही आपने जाना कि भारतीय परम्परा में योग का स्परूप एक जीवनशैली है जिसके अन्तर्गत मनुष्य दिव्य जीवन जीता हुआ धर्म, अर्थ काम और अंत में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और वास्तव में मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य भी कदाचित् यही है कि वह योगमयी जीवन जीते हुए, परमात्मा को प्राप्त करे। योग का व्यक्ति के स्वास्थ्य के साथ परस्पर सम्बंध है। यदि मनुष्य को योगमयी जीवनशैली की शिक्षा प्राप्त है, तो वह निसंदेह शारीरिक मानसिक सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ एवं सुखी रह सकता है। इस यूनिट में हम स्वास्थ्य, प्रभावित करने वाले कारक, स्वस्थ वृत्त, साफ सफाई स्वच्छता आदि पर चर्चा करेंगे और जानेंगे कि किस प्रकार योग के माध्यम से समग्र स्वास्थ्य प्राप्त कर सकेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप :

- स्वास्थ्य का अर्थ बता सकेंगे और अवधारणा सहित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे;
- साफ, सफाई एवं स्वच्छता पर प्रकाश डाल सकेंगे तथा स्वच्छता काक स्वास्थ्य के साथ परस्पर सम्बंध को समझा सकेंगे;
- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को सूचीबद्ध कर, संक्षिप्त में उल्लेख कर सकेंगे;

- स्वस्थवृत्त, दिनचर्या एवं रात्रिचर्या आदि को समझा सकेंगे और जीवन में अपनाने में सक्षम होंगे;
- ऋतुचर्या का वर्णन कर सकेंगे और जीवन में अनुप्रयुक्त कर सकेंगे।

5.1 स्वास्थ्य की अवधारणा

शिक्षार्थियों, स्वास्थ्य का सामान्य अर्थ है- स्वयं में स्थित होने की स्थिति अर्थात वह व्यक्ति, जो प्रसन्नचित्त है रोगों से मुक्त है, शारीरिक रूप से सुदृढ़ है और अपने सभी कार्यों को उचित ढंग से सम्पदित कर रह है, स्वस्थ है और उसकी इस स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं।

स्वास्थ्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। आपने यह कहावत अवश्य सुनी होगी- 'पहला सुख निरोगी काया'। यह कहावत भले ही पुरानी हो गई है, किन्तु स्वास्थ्य आज भी हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। यदि हम स्वस्थ हैं, तो जीवन में स्वत: ही प्रसन्नता बनी रहती है तथा हमारे जीवन के दैनिक व विशेष कार्यों में कठिनाई का आभास नहीं होता।

स्वास्थ्य हम सभी के लिए अनिवार्य है। क्या आप जानते है, कि आप स्वस्थ है? आइये निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर इसका पता लगाएँ-

- आप स्वयं को प्रसन्न महसूस कर रहे हैं।
- शरीर के सभी अंग उचित ढंग से बिना किसी दर्द के कार्य कर रहे है।
- शरीर पूर्णत: सामान्य है।
- मन मानसिक तनाव व चिंता से रहित है।
- शरीर में स्फूर्ति एवं ऊर्जा है
- किसी कार्य का निर्देश पाते ही तुरंत उस कार्य का करने के लिए तैयार हो जाते है।
- अपने कर्तव्यों का उचित पालन कर रहे हैं आदि।

यदि उपरोक्त बिंदुओं पर अपका उत्तर हाँ है, तो आप निश्चित ही स्वस्थ हैं।

क्या आप जानते हैं कि स्वस्थ होना क्यों आवश्यक है? इसे हम निम्नांकित बिंदुओं से समझ सकते हैं :

- सुखमय जीवन जीने के लिए स्वस्थ होना आवश्यक है।
- स्वस्थ होने पर ही शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमताओं का सर्वाधिक उपयोग किया जा सकता है।
- स्वस्थ व्यकित एक स्वस्थ समाज और स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

टिप्पणियाँ

- अपने आसपास स्वस्थ वातावरण तैयार सकत है, जहाँ अमन-चैन व शान्ति के साथ परिवार तथ अन्य लोग रह सकते हैं।

उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर आप स्वास्थ्य की महत्वता को भलीभांति समझ गये होंगे।

5.1.1 स्वास्थ्य की परिभाषा

समय-समय पर वैज्ञानिकों अपने-अपने मतों के अनुसार स्वास्थ्य को परिभाषित किया है। यहाँ पर हम चिकित्सा की प्राचीन पद्धति-आयुर्वेद में आचार्य सुश्रुत के अनुसार दी गई परिभाषा पर विचार करेंगे और वर्तमान में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा दी गई सर्वमान्य परिभाषा को समझेंगे, तो आइये पहले प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में आचार्य सुश्रुत की परिभाषा पर विचार करें-

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलः क्रिया।
प्रसन्नात्येद्रियमना स्वस्थ इत्यमीधियते॥

अर्थात् व्यक्ति की वह स्थिति, जिसमें उसके सभी दोष धातु, अग्नि, मल क्रिया आदि सम हों और इन्द्रिय, मन व आत्मा प्रसन्न हो, स्वास्थ्य कहलाती है। व्यक्ति के सभी दोष सम, इन्द्रियाँ, मन व आत्मा प्रसन्न हो तो- ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ माना गया है।

आइये इस परिभाषा का संक्षिप्त में विवेचन करें-

1. समदोष : शरीर की सभी क्रियाओं को संचालित करने वले तीन दोष (वात, पित्त तथा कफ) की सम अवस्था।
2. समाग्नि : मानव शरीर में पाँच भूताग्नि- (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश), सात धातुएँ- रक्त, मांस मेष, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) और जठराग्नि अर्थात् 13 अग्निओं की समन अवस्था।
3. समधातु : सात धातुएँ, जो शरीर को पुष्ठ एवं बलवान बनाती हैं।
4. सम मलक्रिया : शरीर से मल, मूत्र, पसीना का सतत नियमित निर्माण तथा निष्कासन।
5. इन्द्रियों की प्रसन्नता : मानव शरीर की पाँच कर्मेन्द्रियां और पाँच ज्ञानेद्रियां सभी अपने कार्य को प्रसन्नतापूर्वक करें।
6. मन : मन में प्रसन्नता की भाव हो।
7. आत्मा : आत्मा भी प्रसन्न हो, संतोष का भाव हो।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा : आयुर्वेद हमारा प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। इसमें दी गई परिभाषा पर हमने विचार-विमर्श किया। अब वर्तमान में सर्वमान्य स्वास्थ्य की परिभाषा पर चर्चा करते हैं जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दिया गया है।

According to WHO, "Health is a state of complete physical, mental and social well being, not merely the absence of disease or infirmity."

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य सिर्फ रोग, दर्बलता की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वस्थता की स्थिति है।

शिक्षार्थियों, यहाँ एक बात ध्यान से समझना अति आवश्यक है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गई इस परिभाषा की विभिन्न विद्वानों द्वारा बहुत आलोचना की गई और कहा कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ नहीं है। किन्तु आलोचना के बाद भी सबसे अधिक मान्यता इसी परिभाषा की है। हालांकि इसमें आध्यात्मिक पक्ष को और जोड़े जाने की आवश्यकता है। यदि इसी प्रकार परिभाषित किया जाय कि स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति नहीं बल्कि पूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सुख की स्थिति है तो यह निसंदेह बेहतर होगा।

5.1.2 स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन

शिक्षार्थियों, आप यह कैसे जानेंगे कि कोई व्यक्ति स्वस्थ है? अथवा नहीं। सामान्य तौर पर एक चिकित्सक व्यक्ति के लक्षणों के आधार पर यह पता लगा लेते हैं कि वह स्वस्थ है या फिर अस्वस्थ। एक सामान्य व्यक्ति या हम कैसे पता लगाए कि हम या अन्य व्यक्ति स्वस्थ है? आइये स्वस्थ पुरूष के मुख्य लक्षणों को जानें :

1. मुख पर प्रसन्नता हो और मन बेचैन न हो।
2. आत्म विश्वास हो, सहनशील, धैर्यवान, साहसी तथा जीवन के प्रति उत्साही हो।
3. स्मरण शक्ति अच्छी हो।
4. अपनी क्षमताओं का ज्ञान हो।
5. शरीर के सभी अंग व समस्त प्रणाली ठीक से काम कर रहे हों।
6. मन व ज्ञानेन्द्रियां सशक्त हो।
7. व्यवहार सौम्य एवं सभ्य हो, क्रोधयुक्त न हो।
8. दिनचर्या संयमित, नियमित और नियंत्रित हो।

उपयुक्त लक्षणों के आधार पर यह कह सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति स्वथ्य है।

स्वथ्य व्यक्ति के लक्षणों पर अलग-अलग विद्वानों ने प्रकाश डाला है। यहाँ पर हम कुछ विद्वानों के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों को समझने का प्रयास करेंगे-

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार स्वस्थ पुरूष के लक्षण : आचार्य श्रीराम शर्मा ने स्वस्थ पुरूष के निम्नांकित लक्षण बताएँ हैं :

1. मन प्रसन्न हो।
2. मुख मण्डल पर तेज और आशा की झलक हो।
3. आँख की ज्योति व श्रवण शक्ति ठीक हो।
4. मन कार्यों में रूचि रखें।
5. कार्य करने में किसी प्रकार की तकलीफ न हो।
6. पेट संबंधी किसी प्रकार के विकार न हों।

आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार स्वस्थ पुरूष के लक्षण : शिक्षार्थियों अचार्य वाग्भट्ट ने स्वस्थ पुरूष के निम्नांकित लक्षणों का वर्णन किया है :

1. स्वस्थ पुरूष नित्य हितकारी आहार और विहार करे वाला होता है।
2. वह देख-भाला और सोच-समझकर कर्य करने वाला होता है।
3. सबको समान भाव से देखने वाला होता है।
4. सत्य वृत्त वाला होता है।
5. बलवान होकर भी क्षमा करने वाला होता है।
6. बुद्धिमानों की संगति करने वाला होता है।
7. विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि) में आसक्त अर्थात् फंसने वाला नहीं होता।

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों को आपने पढ़ा और आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों को जाना।

आचार्य चतुरसेन के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण : आपने स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों का अध्ययन किया, साथ ही दो विद्वानों- आचार्य श्रीराम शर्मा एवं आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार भी अलग-अलग स्वस्थ व्यक्तियों के लक्षणों को जाना। अब हम आचार्य चतुरसेन के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण जानेंगे :

1. क्षुधा : जिसकी क्षुधा अर्थात भूख ठीक हो, भोजन में रूचि हो, मिर्च मसाले से रहित, फल-फूल वाला भोजन प्रिय हो।
2. प्यास : जिसकी प्यास ठीक हो अर्थात् प्यास लगती हो और वह निर्मल जल तथा फलों के रस से तृप्त हो जाय।
3. दांत : दांत स्वच्छ हो, जीवन पर्यन्त बने रहें।

4. आँख : साफ, पानीदार व निर्मल हो।

5. त्वचा : त्वचा अर्थात् चमड़ी चिकनी व नर्म हो। अंगुली से दबाने पर तत्काल गड्ढ़ा भर जाय।

6. नाखून : नाखून उज्ज्वल, गुलाबी रंग के हो। दाग व लकीरों वाले न हो।

7. बाल : बाल स्वाभाविक रंगवाले, पूरे भरावदार हो। गंजे न हो।

8. ज्ञानेन्द्रियां : ज्ञानेन्द्रियां स्वभाविक और सचेतन हो।

9. नींद : नींद भरपूर आती हो, थकान मिटाने वाली हो।

10. मन : मन सदा स्वाभाविक आनन्द में मग्न रहने वाला हो।

11. मूत्र स्वच्छ, उज्ज्वल, सुनहरी रंग युक्त, गंधरहित हो।

12. पसीना : पसीना गंधरहित हो।

5.1.3 स्वास्थ्य रक्षा के छः नियम

स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों का अध्ययन करने के पश्चात अब आप अपने स्वस्थ होने और लक्षणों के विषय में अवश्य सोच रहे होंगे। यहाँ हम यह स्पष्ट कर दे कि एक स्वस्थ व्यक्ति का यह पहला कर्तव्य है कि वह अपने आपको स्वस्थ बनाए रखे। स्वास्थ्य रक्षा के लिए छः ऐसे मुख्य नियम हैं जिनका पालन करने से स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है–

1. शरीर के पोषण हेतु संतुलित आहार;

2. उचित मात्रा में शुद्ध वायु और प्रकाश;

3. समय-समय पर नियमानुसार मल, मूत्र और पसीने का शरीर से निष्कासन;

4. सर्दी व गर्मी से शरीर की रक्षा;

5. उचित व्यायाम, परिश्रम और विश्राम;

6. विषाक्त द्रव्यों और कीटाणुओं से बचाव, साफ सफाई, स्वच्छता।

यूनिटगत प्रश्न 5.1

सही/गलत बताईए –

1. मुख पर प्रसन्नता और मन में बेचैनी स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है। ( )

2. आचार्य चतुरसेन के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति का एक लक्षण ये भी है कि उसका मन सदा स्वभाविक आनन्द में मग्न रहने वाला हो। ( )

3. स्वास्थ्य रक्षा के छः नियमों में से एक नियम यह भी है कि व्यक्ति के शरीर से शुद्ध वायु और प्रकाश का निष्कासन हो। ( )

5.2 स्वस्थवृत्त, दिनचर्या एवं रात्रिचर्या

शिक्षार्थियों, स्वस्थ रहने के लिए 'स्वस्थवृत्त' को समझना अति आवश्यक है सबसे पहले यह जानते हैं कि स्वस्थवृत्त से क्या तात्पर्य है?

स्वस्थवृत्त दो शब्दों से मिलकर बना है- स्वस्थ + वृत्त ''स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक कर्म करना या नियम पालन करना स्वस्थ वृत्त कहलाता है। स्वस्थ का अर्थ है-निरोगी जीवन और वृत्त का अथ है- कर्म। अर्थात निरोगी जीवन जीने के लिए, जो कर्म किये जाते हैं या नियमों का पालन किया जाता है उसे स्वस्थवृत्त कहते है। सुखमय जीवन जीने के लिए स्वस्थवृत्त को अपनाना आवश्यक है। अब आप समझ गये होंगे कि स्वस्थवृत्त हम सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हम सभी स्वस्थवृत्त का पालन करें तो निश्चित ही स्वस्थ व सुखमय जीवन जी सकते हैं। ये निम्नांकित तीन प्रमुख नियम और जीवन के उपस्तम्भ भी हैं : (i) आहार (ii) निद्रा (iii) बह्मचर्य।

आईये, अब स्वस्थवृत्त की परिभाषा जानें-

5.2.1 स्वस्थवृत्त की परिभाषा

स्वस्थवृत्त वह विज्ञान है जिसके द्वारा मनुष्य का शारीरिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य उन्नत रहता है और स्वस्थ मनुष्य का स्वास्थ्य स्थिर बना रहता है।

"It may be defined as the science of preserving and improving health."

''स्वास्थ्य रक्षण एवं सुधार संबंधी विज्ञान- स्वस्थवृत्त विज्ञान कहलाती है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में स्वस्थवृत्त को हाइजीन (Hygiene) महा गया है। हाइजीन वह विज्ञान है जिसमें मानव स्वास्थ्य को उन्नत रखने और स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य को स्थिर बनाने का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार स्वस्थवृत्त के दो प्रायोजन हैं-

(i) स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना

(ii) रोगी के रोगों को दूर करना।

स्वस्थवृत्त की आवश्यकता एवं महत्व : शरीर में सदैव जैव-भौतिक व जैव-रसायनिक क्रियाएँ निरन्तर क्रियाशील रहती हैं। इन क्रियाओं में परस्पर संबंध बनाए रखना स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य

है। शिक्षार्थियों जब हानिकारक जीवाणु व विजातीय द्रव्य शरीर में प्रवेश कर जाते है तो वे हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार अनिष्ट प्रभावों से रक्षा करने के लिए, हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रमादी हो जाती है। जिससे हम स्वस्थ बने रहते हैं। इन अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से निकलने के लिए हमारे आहार-विहार और आचार-विचार कैसे हों यह ज्ञान स्वस्थवृत्त से लिया जा सकता है।

5.2.2 दिनचर्या

शिक्षार्थियों, आपने स्वस्थवृत्त, इसकी आवश्यकता एवं महत्व को स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में जाना। स्वस्थवृत्त आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसके दो प्रायोजन हैं :

(i) स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना

(ii) रोगी के रोगों को दूर करना

दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या स्वस्थवृत्त का ही एक अंग है- आइये अब दिनचर्या को समझने का प्रयास करें। दिनचर्या क्या है?

दिनचर्या शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- दिन + चर्या। दिन का अर्थ है- दिवस और चर्या का अर्थ है- चरण अथवा आचरण। अर्थात् प्रतिदिन किये जाने वाले आचरणों को दिनचर्या कहा जाता है। अब आप समझ गये होंगे कि दिनचर्या एक आदर्श समय सारणी है जो प्रकृति की क्रमबद्धता को अपनाती है तथा उसी का अनुसरण करने का निर्देश प्रदान करती है। दिनचर्या के अन्तर्गत हितकर आहार-विहार व आचार विचारों को रखा गया है।

संस्कृति में दैनिक कार्यक्रम को दिनचर्या कहते हैं। आयुर्वेद के अनुसार दिनचर्या शरीर और मन का अनुशासन है, इससे रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। शरीर में समयानुसार विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है, जिससे शरीर शुद्धि होती है।

दिनचयर्चा की परिभाषा

नित्य किये जाने कर्मों की एक क्रमबद्ध शृंखला दिनचर्या कहलाती है।

किसी व्यक्ति के द्वारा प्रतिदिन नियमित रूप से किये जाने वाले आचरण जिनसे वह समग्र स्वास्थ्य प्राप्त करता है दिनचर्या कहलाते हैं।

प्रात:काल जागरण से लेकर सोने के पूर्व तक के सभी आवश्यक आचरण अथवा कर्म दिनचर्या के अंतर्गत आते हैं।

दिनचर्या का महत्व

1. **समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति :** दिनचर्या के नियम पालन से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। व्यक्ति निश्चित भाव से रहता है क्योंकि उसका प्रत्येक कार्य समयानुसार निश्चित है।

2. सम्भावित रोगों से पूर्व सुरक्षा; दिनचर्या के पालन से सम्भावित रोगों को होने से पहले रोका जा सकता है क्योंकि नियम पालन में जीवनी शक्ति प्रबल है।

3. दिनचर्या द्वारा व्यक्तित्व परिष्कृत दिनचर्या के पालन से मन, शरीर, इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित होता है जिससे व्यक्तित्व परिष्कृत होता है।

4. प्राचीन परम्परा का संरक्षण : प्राचीन चिकित्सा पद्धति- आयुर्वेद में स्वस्थवृत के अंतर्गत दिनचर्या का वर्णन आता है। यह ऋषिमुनियों द्वारा पालन करने वाली प्राचीन परम्परा है। इसके नियम पालन से जहाँ हमें समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। वहीं हमारी वर्षों पुरानी संस्कृति का भी संरक्षण होता है।

दिनचर्या : रोगों से दूर रहने, असमय बुढ़ापे से बचने, स्वस्थ और तरोताजा रहने के लिए किसी व्यक्ति की दिनचचर्या में प्रतिदिन कौन-कौन से कर्म अथवा नियम शामिल है। आइये जाने :

- **प्रातःकाल जागरण :** स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन ब्रह्म मुहुर्त सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व में जागने का समय बताया गया है। अतः ब्रह्म मुहुर्त में जागना चाहिए। इस समय में वातावरण स्वच्छ, शान्त, सात्विक और मधुर सुगन्धित वायु वाला होता है। ऐसे समय जागने से मन प्रसन्नता से भर जाता है। शरीर को नई ताजगी स्फूर्ति और ऊर्जा प्राप्त होती है।
  - बह्म मुहुर्त में जागकर बिस्तर पर बैठे।
  - ईश्वर अथवा अपने ईष्ट देव का ध्यान करें।
  - मन ही मन प्रार्थना करें कि अब तक के जीवन के लिए हे ईश्वर आपका धन्यवाद आगे के लिए शुभ मार्ग प्रशस्त करें ताकि सबका मंगल हो और हमारा भी जीवन सार्थक हो, ऐसा संकल्प लें।
- **भू नमन :** बिस्तर से धरती पर पैर रखने से पूर्व धरती माता को नमन करें, जो हमारा माता की तरह पालन करती हैं।
- **मुख धावन :** सभी ऋतुओं में स्वच्छ जल से मुख धोएँ। इससे नींद खुल जाती है और ताजगी आ जाती है।
- **ऊषापान :** प्रतिदिन प्रातः शौच से पूर्व जल पीने को ऊषापान कहते हैं। मुख धोने के पश्चात् कम से कम एक गिलास जल पीएँ। धीरे-धीरे इसे बढ़ाकर चार गिलास किया जा सकता है। ऊषापान के लिए
  - खालीपेट उकड़ बैठकर ऊषापान करना चाहिए।
  - गर्मियों के दिनों में रात्रि को तांबे के पात्र में भरकर रखे गये जल का पान करना चाहिए।
  - अन्य ऋतुओं में गुनगुने गर्म जल का सेवन उपर्युक्त माना जाता है।
  - ऊषापान सदैव बिना कुल्ला किये करना चाहिए।

- ऊषापान के हम सभी के लिए बहुत लाभदायक है। इससे कब्ज नहीं रहती; शौच खुलकर आती है। उत्साह में वृद्धि होती है; काम विकार व वीर्य संबंधी रोग दूर होते हैं; उदर रोग ठीक हो जाते हैं; सिर दर्द व नेत्र विकार दूर हो जाते हैं।

- **शौच :** ऊषापान के पश्चात शौच जाना चाहिए। सदैव सूर्योदय से पूर्व मलत्याग (शौच) करना। दीर्घायु प्रदान करता है। शौच में बैठने के लिए भारतीय विधि सर्वोत्तम है।

  शौच के पश्चात हाथ, पैर, मुँह धोना चाहिए। इससे सारा आलस भाग जाता है। थकावट दूर होती है।

  मुख में पानी भरकर कुल-कुल करते हुए नेत्रों में स्वच्छ जल के छींटे मारकर नेंत्रों को धोना चाहिए। इससे नेत्रों व आसपास की मांसपेशियां स्वस्थ व मजबूत होती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

  इस प्रकार आचमन से मुखशुद्धि की हो जाती है। हालांकि निम्न स्थितियों में हमेशा आचमान करना चाहिए-

  - भोजन करने के पूर्व तथा भोजन के पश्चात्।
  - सोकर उठने के पश्चात्।
  - छींकने के पश्चात्।
  - देव पूजन के पूर्व।

- **दन्त धावन :** दांतों को साफ-स्वच्छ रखने के लिए सदैव प्रातः और सोने से पूर्व सफाई करनी चाहिए। इसके लिए दातून, मंजन, पेस्ट आदि व्यवहार में ला सकते हैं।

  यदि दंत धावन में नीम की एक पेन/पेंसिल के बराबर लम्बी व मोटी स्वस्थ, ताजा दातून प्रतिदिन की जाय तो दांत गपूड़े व मुख को आसानी से स्वस्थ रखा जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने अपने मुख स्वास्थ्य (Oral Health) में यह कहा है कि यदि नियमित रूप से नीम की दातुन की जाती रहे तो अन्य रोगों के साथ-साथ मुख गुहा के कैंसर जैसे महा विनाशकारी रोग की संभावना खत्म हो जाती है।

  दंत धावन में मुख की दुर्गंध दूर होती है, दांत व मसूड़े स्वस्थ होते है। कफ का नाश होता है और मुख व जिह्वा संबंधी रोग नहीं होते।

  दंत धावन के दौरान ही जिह्वा को भी दातून से, उल्टे पेस्ट ब्रुश से या अपने हाथ की दो-तीन अंगुलियों से साफ कर लेना चाहिए।

  समय-समय पर या सप्ताह में कम से कम एक बार रात्रि को सोने से पूर्व दंत धावन के लिए पिसा नमक हल्दी व सरसो के तेल का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए आधा चम्मच

पिसा नमक, चम्मच का दसवां भाग हल्दी और दो-तीन बूंद सरसो के तेल का मिश्रण बनाकर धीरे-धीरे अपने दांतों और मसूड़ों में लगाते हुए मालिश करें। यदि संभव हो तो बिना कुल्ला किए सो जाएँ सुबह नियमानुसार कुल्ला करें तो इसका लाभ दस गुना बढ़ जाता है। दांत और मसूड़े मजबूत चमकदार, स्वस्थ बने रहते हैं। पायरिया रोग भी हो तो खत्म हो जाता है।

नोट : जिनका रक्तचाप उच्च (High Blood Pressure) रहता है वे तुरन्त गुनगुने पानी से कुल्ला कर लें।

- **अभ्यंग (मालिश) :** प्रतिदिन शरीर की मालिश करना बहुत आवश्यक है। प्रतिदिन तेल मालिश करने से :
  - शरीर स्वस्थ, सुन्दर व दृढ़ होता है।
  - त्वचा सुन्दर व चमकदार होने लगती है।
  - असामयिक बुढ़ापा दूर होता है।
  - आलस्य दूर होता है, निद्रा ठीक आती है।
- **यौगिक अभ्यास (व्यायाम एवं योग) :** वह अभीष्ट कर्म या अभ्यास जो शरीर को स्वस्थ, सुन्दर और निरोगी बनाता है, बल-वृद्धि कर दृढ़ता और स्थिरता प्रदान करता है, शारीरिक व्यायाम एवं योग कहलाता है।

  यदि प्रतिदिन कम से कम 30 मिनट का यौगिक अभ्यास किया जाए तो जहाँ फेफड़े, हृदय, मस्तिष्क आदि पूर्ण स्वस्थ व ऊर्जावान बने रहते हैं, वहीं दूसरी ओर जीवनशैली संबंधी होने वाले रोग मोटापा, मधुमेह, कोलेस्ट्रॉल श्वास, दमा, रक्तचाप, तनाव, एलर्जी आदि समाप्त हो जाती है और रोगी ठीक हो जाते हैं।
  - व्यक्ति को नियमित रूप से यौगिक अभ्यास करना चाहिए।
  - रोग की अवस्था मन की अवस्था, खाना खाने के पश्चात, अभ्यास बिल्कूल न करें। अथवा योग अनुदेशक के निर्देशक में ही करना चाहिए।
- **स्नान :** प्रतिदिन स्नान करना बहुत आवश्यक है। स्नान से शरीर शुद्धि हो जाती है, रोमकूप खुल जाते हैं, आलस्य व निद्रा रोग दूर भाग जाते हैं। चित्त शांत एवं मन प्रसन्न हो जाता है। स्वाध्याय में रूचि बढ़ती है। भूख में वृद्धि होती है।

  क्या आप प्रतिदिन स्नान करते हैं? यदि हाँ, तो आपको उपर्युक्त लक्षणों का अनुभव भी होता होगा।

  लेकिन एक बड़ा प्रश्न भी है, क्या कभी आपके मन में स्नान न करने की इच्छा भी उत्पन्न हुई है। जी हाँ शिक्षार्थियों ऐसे समय में जब आप किसी रोग से ग्रसित हो, विशेष चिंता

में हो परेशान हो, मन उग्र व अशांत हो, तो स्नान की इच्छा नहीं होती और स्नान करना भी नहीं चाहिए। अन्यथा रोग बढ़ने की संभावना रहती है।

स्नान कैसे हो? यह जानना भी आवश्यक है। स्नान जल, वायु व प्रकाश से किया जाता है। शरीर के समस्त अंगों को जल के द्वारा धोकर शुद्ध करना जलीय स्नान कहलाता है। इसमें सर्वथम जल सिर पर डालने हेतु सिर नवाकर दो-तीन लोटा जल सिर पर डालना प्रारम्भ करना चाहिए। ऐसा करने से मस्तिष्क की गर्मी पैरों के माध्यम से निकल जाती है। तत्पश्चात् पूरे शरीर पर जल डालते हुए शोधन करना चाहिए।

वायु/पवन स्नान में पूरे शरीर को वायु का सेवन कराना चाहिए।

- **धूप स्नान :** धूप स्नान के लिए धूप में नंगे बदन बैठकर या लेटकर धूप लेनी चाहिए।

  प्रात:काल सूर्योदय के बाद की धूप स्नान के लिए सर्वोतम मानी जाती है। लेकिन बहुत तेज या जलती हुई धूप में स्नान नहीं करना चाहिए अन्यथा त्वचा झुलस जाती है।

  वैसे जलीय स्नान प्रतिदिन नियमित रूप से करना चाहिए।

- **वस्त्र धारण :** स्नान के पश्चात् सदैव साफ-स्वच्छ, सुन्दर और ऋतु के अनुकूल और आरामदायक वस्त्र धारण करने चाहिए। अच्छे वस्त्र पहनने से सुन्दरता एवं प्रसन्नता में वृद्धि होती है, आकर्षण व्यक्तित्व में बढ़ोतरी होती है।

  सामान्यत: गर्मियों में सफेद व हल्के रंग के और सर्दियों में गहरे रंग के तथा ऊनी वस्त्र धारण करने चाहिए।

- **केश प्रसाधन :** स्नान व वस्त्र धारण करने के बाद बालों में कंघा कर, बाल संवारने चाहिए। बाल हमारी सुन्दरता में वृद्धि करते हैं और व्यक्तित्व को प्रभावी बनाते हैं। आवश्यकतानुसार सरसों का तेल भी उपयोग में लाना चाहिए।

- **इत्र व सुगंध का प्रयोग :** मनुष्य को समय व ऋतु अनुसार सुगन्धित पुण्यों और प्राकृतिक इत्र का प्रयोग करना चाहिए। आप अपने वस्त्रों पर इत्र का प्रयोग कर सकते हैं और अपने घर व कार्य स्थलों पर पुण्य गुच्छ रख सकते हैं। इनकी सुगन्ध से मन प्रसन्न रहता है। परिणामस्वरूप आयु में वृद्धि होती है तथा एक विशेष आकर्षण उत्पन्न होता है।

- **आभूषण, मणि, माला आदि धारण करना :** स्त्रियां सोने व चांदी के तरह-तरह के आभूषण पहनती है। मणि, मालाएँ पहनती है। कुछ पुरूष भी कुछ आभूषण जैसे चेन, अंगूठी कलाई में घड़ी माला आदि पहनने के शौकीन होते हैं। इनके पहनने से सुन्दरता बढ़ जाती है, चेहरे पर चमक आ जाती है, आकर्षण बढ़ जाता है। इन सबके परिणामस्वरूप मनुष्य की जीवन शक्ति में वृद्धि होती है और आयु बढ़ जाती है।

- **अंजन कर्म :** अंगुली या शलाका से नेत्रों में औषधि (काजल) लगाने को अंजन कर्म कहते हैं। अंजन से नेत्र प्रक्षालन अर्थात् आँखों में दिनभर की भरी धूल, मिट्टी गन्दगी सब बाहर

निकल जाती है और स्वच्छ, निर्मल व चमकदार दिखते हैं। जिससे सुन्दरता स्वत: ही बढ़ जाती है।

थके होने पर, भोजन के तुरंत बाद, उल्टी होने पर, रात्रि जागरण के पश्चात ज्वर व सांस रोग में अंजन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

- **भोजन :** स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने, शरीर के विकास और वृद्धि के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। भोजन सदैव सही मात्रा में, उचित समय पर ऋतु अनुसार लेना चाहिए। दिनचर्या के अंतर्गत प्रात: 9.00 बजे तक नाश्ता (जलपान) दोपहर 1.00 बजे तक भोजन सायं 4.00 बजे तक पुन: जलपान और रात्रि 8.00 बजे तक रात्रि भोजन ले लेना चाहिए।

  आयुर्वेद में भोजन के संबंध में कहा गया है कि (i) पौष्टिक, सात्विक, संतुलित तथा प्रकृति के अनुकूल भोजन करना चाहिए। (ii) भोजन सदैव भूख लगने और पहले से किये गये भोजन के पचने के बाद ही करना चाहिए। (iii) हल्का एवं सुपाच्य भोजन सदैव आधे पेट खाना चाहिए। इसका 1/4 भाग पानी और शेष 1/4 भाग वायु के लिए खाली रखना चाहिए।

  शिक्षार्थियों, उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यदि भोजन किया जाता है तो शरीर पुष्ट होता है, उसमें वृद्धि होती है, रंग में निखार आता है, साथ ही शरीर में तीनों दोष व धातुएँ भी संतुलित बने रहते हैं और आरोग्यता प्राप्त होती है।

  भोजन संबंधी सामान्य नियम और विस्तृत जानकारी आप अपने विषय सं. 2 के यौगिक आहार यूनिट में पहले ही पढ़ चुके हैं।

- **पान सेवन :** भोजन के पश्चात् मुख में भुनी सौंफ व मिश्री डाल सकते हैं। यह पाचन के लिए भी उत्तम मानी जाती है और मुँह में ताजगी लाती है। यदाकदा आप सादा पान, मीठा पान का सेवन भी कर सकते हैं। पान के सेवन से मुख में निर्मलता, सुगंधि आती है और चेहरे पर कांति व सुन्दरता छाने लगती है। गले की व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

  लेकिन ध्यान रहे पान सेवन की रोजना आदत न डालें।

5.2.3 रात्रिचर्या

शिक्षार्थियों, सूर्य अस्त होने के उपरांत और रात्रि होने से पूर्व के समय को ही संध्याकाल कहते हैं। जो भी आवश्यक क्रियाएँ इस काल से प्रारम्भ होती हैं वे सभी रात्रिचर्या के अंतर्गत ही आती हैं। इसमें मुख्यता संध्योपासना, रात्रि भोजन, भोजन पश्चात् टलना, रात्रि शयन आदि आदि सम्मिलि हैं। आइये अब रात्रिचर्या के अंतर्गत आने वाले कर्मों अथवा नियमों को जानने का प्रयास करें–

- **संध्योपासना :** सूर्य अस्त होने के उपरांत, शरीर शुद्धि (गर्मी में स्नान और अन्य ऋतुओं में मुँह, हाथ पैर आदि धोकर) व जल आचमन कर अपने ईष्ट देव की पूजा अर्चना करनी चाहिए और फिर प्राणायाम एवं ध्यान करना चाहिए। नियमित और दीर्घकाल तक संध्योपासना से मनुष्य यश, बुद्धि, कीर्ति और संयम को प्राप्त करता है। सायंकाल में निद्रा, भोजन, मैथुन

पठन–पाठन तथा मार्ग गमन को वर्जित माना गया है। इसकी आयुर्वेद में भी विस्तार से वर्णन मिलता है।

- **रात्रि भोजन :** शिक्षाथियों, अधिकांशत: लोग दिन में दो बार भोजन करते हैं और दो बार जलपान करते हैं, किन्तु कुछ लोग जो कड़ी मेहनत करते हैं, पसीना बहाते हैं, वे तीन बार भोजन करते हैं। खेत खलियानों में काम करने वाला किसान और कड़ी मेहनत वाला मजदूर ये दोनों वर्ग के लोग कार्य के दौरान, चूंकि बहुत अधिक कैलोरी ऊर्जा व्यय कर दे हैं अत: यह स्वाभाविक ही है कि उन्हें इसकी आपूर्ति के लिए तीन बार भोजन की आवश्यकता होगी।

  सामान्यत: रात्रि के प्रथम पहर में अर्थात् सोने से कम से कम दो घण्टे पूर्व अपना हल्का और सुपाच्य भोजन कर लेना चाहिए। यदि आप अपने निर्धारित समय से लेट है तो रात्रि भोजन न ले बल्कि एक गिलास दूध, जौ का दलिया, सूप, फल आदि लेकर शयन करें।

- **टहलना, मुख व दांतों की सफाई :** शयन करने से पूर्व कुछ नियमों को जानना अति महत्वपूर्ण है। आइये इन्हें जानें :

  (i) शयन के समय में और रात्रि भोजन के समय में दो से तीन घण्टे का अन्तर रखें।

  (ii) रात्रि भोजन के पश्चात् कुछ देर अवश्य टहलें, इससे भोजन पाचन आसानी से हो जाता है।

  (iii) शयन कक्ष में जाने से पूर्व एक बार अपने मुख व दांतों की सफाई अवश्य कर ले ताकि दांतों में फंसे भोजन के सूक्ष्म कण, मुख में दुर्गन्ध उत्पन्न न करें और दांत भी स्वच्छ व स्वस्थ रह सकें।

- **शांति शयन :** इसके पश्चात् शयन करने के लिए शांत भाव से, सभी विचारों से मुक्त होकर, शयन शय्या पर बैठकर कोमलता से आँखे बंद करें और अपने जीवन के लिए ईश्वर को धन्यवाद दें। पूरे दिन में जो कुछ कार्य किया उस गलत और सही का चिंतन करें।

  यदि कुछ गलत व्यवहार या कर्म का आप अनुभव करते हैं, तो प्रण लें कि आगे भविष्य में इस प्रकार का व्यवहार अथवा कुत्य नहीं करेंगे और ईश्वर से सदमार्ग पर चलने की प्रार्थना करें।

  इसके पश्चात शवासन की स्थिति में बायीं करवट से लेटें और नेत्रों को कोमलता से बंद कर ईश्वर का ध्यान करते हुए सो जाएँ।

  - शयन स्थान पवित्र, साफ–स्वच्छ तथा हवादार होना चाहिए।
  - बिस्तर व पंलंग आरामदायक होना चाहिए।
  - सोते समय सिर सदैव पूर्व अथवा दक्षिण दिशा की ओर रखना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 5.2

रिक्त स्थान भरिए :

1. स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक कर्म करना या नियम पालन करना ..... कहलाता है।
2. स्वस्थवृत्त के दो प्रायोजन हैं-
   (i) स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना।
   (ii) ..... के रोगों को दूर करना।
3. जब हानिकारक रोगाणु हमारे शरीर के अन्दर प्रवेश कर स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, तो अनिष्ट प्रभावों से रक्षा के लिए हमारी ..... प्रभावी हो जाती है।
4. प्रतिदिन किये जाने वाले आचरणों को ..... कहते हैं।
5. स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन ..... में जागना चाहिए।
6. प्रतिदिन प्रातः शौच से पूर्व जल पीने को ..... कहते हैं।
7. शयन स्थान पवित्र, साफ-स्वच्छ तथा ..... होना चाहिए।

5.3 ऋतुचर्या

ऋतुचर्या शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- ऋतु और चर्या अर्थात् ऋतु के अनुसार आहार विहार का पालन ऋतुचर्या कहलाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में ऋतुचर्या पर भी विशेष बल दिया गया है। यहद हम वर्ष भर देशभर में मनाएँ जाने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों, परम्पराओं और त्योहारों पर विचार करें तो यह देखेंगे कि हमारे पूर्वजों ने आहार-विहार व आचार-विचारों को उक्त परम्पराओं व त्योहारों के साथ जोड़ दिया गया है। यह वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त पाया गया है।

चित्र 5.1: मौसमी फल एवं सब्जी का उपयोग

आइये इसे अब ऋतु के अनुसार समझे। आयुर्वेद के अनुसार ऋतुचर्या के अंतर्गत कुल छः ऋतुएँ हैं- (i) वर्षा (ii) शरद (iii) हेमन्त (iv) शिशिर (v) वसन्त (vi) ग्रीष्म। प्रत्येक ऋतु के अनुसार आहार-विहार का पालन कैसा हो, आइये जानें-

1. **वर्षा ऋतु :** श्रावण-भाद्र पद मास (समान्यतः जुलाई-अगस्त) का समय वर्षा ऋतु का है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• पुराने खाठी चावल एवं जौ का सेवन करे।	• स्नेहन (शारीरिक अंगों पर तेल लगाना), स्वेदन (पसीना निकालना) और स्नान करना।	• पाचन शक्ति का क्षीण होना।
• जल उबालकर पिएँ।	• स्वच्छ वस्त्र धारण करें	• रक्त विकार
• भोजन के साथ घी, दूध का प्रयोग करें	• वस्त्रों का धूप में सुखाएँ।	• शारीरिक कमजोरी
• करेले, कद्दू, परवल लौकी, तोरई, मैथी, लहसून आदि का प्रयोग करें।	• व्यायाम एवं सहवास अधिक न करें।	• त्वचा विकार
• कूति आहार का सेवन न करे।	• दिन में न सोए, रात्रि में ही सोएँ।	• जोड़ों का दर्द
• वर्षा या तालाब का जल सेवन न करें।	• अधिक पैदल न चलें।	• सूजन
• नये अन्न व शीतल जल व पेय का प्रयोग न करें।		• वायरसों के रोग
• बासी भोजन का प्रयोग न करे।		

2. **शरद ऋतु :** यह आश्विन एवं कार्तिक मास (समान्यतः सितम्बर व अक्टूबर) का समय शरद ऋतु कहलाता है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• शाली एवं साठी चावल मूंग, जौ तथा गेहूं का सेवन करें।	• हल्के व स्वच्छ वस्त्र धारण करें।	• इस ऋतु में पित्त प्रधान वाले रोग जैसे बुखार, शरीर में जलन, सिर दर्द, चक्कर आना, एसिडिटी, कब्ज, अधिक प्यास, त्वचा के रोग होने की संभावना रहती है।
• आंवला, अंगूर आदि का सेवन करें।	• चन्दन आदि का लेप करें।	

• मीठे, हल्के, शीतल एवं तीखे रस वाले द्रव्यों का सेवन करें। • फलों का रस, नारियल पानी, सूखे मेवे का सेवन करें।	• चन्द्रमा की साम्य किरणों का सेवन करें। • तेल मालिश और नियमित व्यायाम करें।	

चित्र 5.2: शरद ऋतु में सूखे मेवे का सेवन करे

• गौ घृत का सेवन करें। • अधिक भोजन, तीष्ण व अम्लीय पदार्थों का सेवन न करें। • अधिक तेल व वसामुक्त पदार्थों का सेवन न करें। • मैदा से बने भोज्य पदार्थों का सेवन न करें। • मद्यपान न करें। • दही व खीरा एक साथ व अधिक मात्रा में न खाएँ।	• धूप का सेवन न करें। • दिन में न सोएँ और रात्रि में ने जागें। • क्रोध न करें। • धूप में न चलें।	

3. **हेमन्त ऋतु :** मार्गशीर्ष– पौष मास (समान्यत: नवम्बर एवं दिसम्बर) का समय हेमन्त ऋतु का है। शीतल हवाएँ चलती है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• घी, तेल, चिकनाईयुक्त, मीठा व भारी भोजन ग्रहण करें। • सूखे मेवे व इनसे बने पदार्थों का सेवन करें।	• आतप स्नान (धूप) का सेवन करें। • व्यायाम, योग, अभ्यास एवं अभ्यंग (मालिश) करें।	• शीतल हवा से त्वचा शुष्क हो जाती है। होठ फट जाते हैं। हाथ व पैर शुष्क हो जाते हैं, एड़िया फट जाती हैं।

• नवीन धान्य; चावल, गेहूं आदि का सेवन करें।	• शिरो अभ्यंग, स्वेदन तथा अंजन करें।	
• पुष्टिकारक व बलवर्धक आयुर्वेदिक रस-रसायनों जैसे- च्यवनप्राश, अश्वगंधा पाक, कोंचपाक आदि का सेवन करें।	• शीतल वायु का सेवन न करें।	
• वातवर्धक वह हल्का आहार न करें।	• दिन में शयन न करें।	
• भूखे न रहे तथा अधिक उपवास न करें।	• मौसम के अनुसार वस्त्र पहनें।	

4. **शिशिर ऋतु :** माघ-फागुन (समान्यत: जनवरी-फरवरी) मास का समय शिशिर ऋतु का है। वायु ठण्डी होती है। आकाश वर्षा से आच्छादित रहता है। इसी कारण घना कोहरा छा जाता है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• चिकनाईयुक्त, घी, तेल युक्त मीठा, भारी गरम भोजन सेवन करें।	• आतप स्नान (धूप का सेवन) करें।	• सामान्यत: रोगों की संभावना नहीं होती।
• शक्तिवर्धक भोज्य पदार्थों का सेवन करें।	• व्यायाम, योग अभ्यास तथा अभ्यंग (मालिश) करें।	
• सूखे मेवे और इनसे बने पदार्थों का सेवन करें।	• ठंड से बचने के लिए मोटे एवं ऊनी वस्त्र पहनें।	
• दूध का सेवन विशेष रूप से करें।	• गर्म पानी से स्नान करें।	
• वातवर्धक, हल्का आहार न लें।	• शीतल वायु का सेवन न करें।	
• भूखे न रहें तथा अधिक उपवास न करें।	• शीत, वर्षा, शीत लहर और कोहरे से बचे।	

5. **वसन्त ऋतु :** चैत्र-बैसाख (समान्यत: मार्च-अप्रैल) मास का समय वसन्त ऋतु का है। इस ऋतु में नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की बहार आ जाती हे। सभी दिशाएँ रमणीय और पुष्पों से सुशोभित होती है। हल्की-शीतल, मन्द सुगन्धित वायु बहती है। पुष्पों पर भौरे गुन्जार करते हैं। नाना प्रकार के पक्षी कूंजते, विहार करते फिरले हैं। वृक्ष नये-नये कोमल पत्ते धारण करते हैं। इस प्रकार नाना प्रकार के रंग-विरंगे पुष्पों और हरे भरे पेड़-पौधे से सुशोभित प्रकृति के सौन्दर्य के कारण इसे ऋतुराज भी कहा जाता है। इस ऋतु में वातावरण स्वच्छ व निर्मल रहता है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• साठी चावल, मूंग, गेहूं दलिया आदि का सेवन करें।	• व्यायाम, यौगिक अभ्यास करें।	• खांसी, श्वास रोग, वदन दर्द भूख में कमी, पेट में भरीपन कब्ज और कफजन्य विकार आदि।
• कटु, तिक्त एवं कषाय रस प्रधान आहार का सेवन करें।	• बाग बगीचे में प्रातः और सायं भ्रमण करें।	
• जल में शहद डालकर सेवन करें।	• शरीर शुद्धि के लिए वमन, जलनेति तथा कुंजल करें।	
• पुराना जौ, गेहूं व चावल का सेवन करें।	• शीतल वायु का सेवन न करें।	
• नीम पत्तों का सेवन करें।	• दिन में न सोएँ।	
• शीतल पेय न पिएँ।		
• भूखे न रहे। देर से पचने वाला आहार न करें।		
• उपवास अधिक न करें।		
• अरबी, कचालू, उड़द का सेवन न करें।		

6. **ग्रीष्म ऋतु :** ज्येष्ठ-अषाढ़ (समान्यतः मई-जून) मास का समय ग्रीष्म ऋतु का है। इस समय प्रचण्ड गर्मी होती है। वातावरण एवं भूमि गर्म रहती है। बहुत गर्म एवं तीक्ष्ण वायु बहती है।

आहार	विहार	संभावित रोग
• मधुर रस का सेवन करें	• ब्रह्ममुहुंत में उठें।	• रूखापन तथा कमजोरी, लू लगना, हैजा, खसरा, चेचक, उल्टी दस्त, ज्वर, नकमीर पीलिया, एनीमिया आदि।
• शुष्क शीत द्रव्य एवं स्निग्ध आहार लें।	• ऊषापान करें।	
• शालि चावल, जौ, मूंग, मसूर का सेवन अधिक करें।	• हल्के व सफेद रंग के कपड़े पहनें।	

• नारंगी, अनार, नीबू एवं गन्ने का रस पिएँ।	• शीतल जल से स्नान करें।	

चित्र 5.3: ग्रीष्म ऋतु में फलों के रस का अधिक सेवन करे

• खरबूज, तरबूज, शहतूत आदि रसदार फलों का सेवन करें। • नारियल पानी व जलजीरा का सेवन करें। • भारी भोजन का सेवन न करें। • मद्यपान न करें। • ऊष्ण आहार न करें।	• भय व क्रोध से बचें। • धूप में नंगे सिर यात्रा न करें। • तीक्ष्ण गर्म वायु से बचें।	

अब आप समझ गये होंगे कि यदि आहार विहार ऋतु के अनुसार रखा जाय तो आदर्श जीवनचर्या का पालन सुनिश्चित किया जा सकता है।

यूनिटगत प्रश्न 5.3

रिक्त स्थान भरिए :

1. ऋतु के अनुसार आहार-विहार का पालन ..... कहलाता है।
2. वर्षभर में कुल ..... ऋतुएँ होती हैं।
3. वसंत ऋतु का समय ..... मास का है।
4. प्रचण्ड गर्मी किस ऋत में आती है .....।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आपने–

- स्वास्थ्य और इसके विभिनन पहलुओं को समझा।
- स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों को जाना।
- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध करना सीखा और उनके विषय में संक्षिप्त में जाना।
- साफ–सफाई, स्वच्छता को जाना और इसके परस्पर सम्बन्ध को समझा।
- स्वस्थवृत्त, दिनचर्या एवं रात्रिचर्या को समझा और इनके महत्व को जाना।
- ऋतुचर्या के विषय में समझा और स्वास्थ्य के अंतर्गत इसकी भूमिका को जाना।
- स्वास्थ्य और इसके विभिन्न पहलुओं को समझने में सक्षम हो चुके हैं।
- जीवन में स्वस्थवृत्त, दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या को जीवन में अनुप्रयुक्त करने में सक्षम हो चुके हैं।

यूनिटांत प्रश्न

1. स्वास्थ्य की परिभाषा देते हुए, स्वास्थ्य की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. स्वस्थ व्यक्ति लक्षणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कर, संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
4. साफ–सफाई और स्वच्छता का स्वास्थ्य के साथ परस्पर संबंध है। इस तथ्य की विस्तार से विवेचना कीजिए।
5. स्वस्थवृत्त से क्या तात्पर्य है? दिनचर्या एवं रात्रिचर्या का जीवन में किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।
6. ऋतुचर्या से आप क्या समझते हैं? इसका विस्तार से वर्णन करते हुए महत्व का वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. गलत
2. सही
3. गलत

5.2

1. स्वस्थ वृत्त
2. रोगी
3. रोग प्रतिरोध का क्षमता
4. दिनचर्या
5. ब्रह्ममुहुर्त
6. ऊषापान
7. हवादार

5.3

1. ऋतुचर्या
2. छः
3. चैत्र-बैसाख (सामान्यतः मार्च-अप्रैल)
4. ज्येष्ठ-अषाढ़ (सामान्यतः मई-जून)

विषय-7: व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं योग

6. व्यावहारिक मनोविज्ञान
7. व्यक्तित्व की अवधारणा
8. मनोवैज्ञानिक समस्याएँ एवं यौगिक प्रबंधन
9. व्यसन और मादक पदार्थों का कुप्रभाव

6

व्यावहारिक मनोविज्ञान

शिक्षार्थियों, व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का व्यावहारिक (प्रयोगात्मक) स्वरूप है जिसके सिद्धान्तों से विभिन्न मानवीय समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है। सर्वप्रथम 'पैटर्सन' ने व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास पर प्रकाश डाला। उन्होंने इसके विकास के चार चरण बताएँ-गर्भावस्था, जन्मकाल, बाल्यावस्था और युवास्था।

इस यूनिट में आप व्यावहारिक मनोविज्ञान, इसका विकास एवं व्यापक क्षेत्र के बारे में अध्ययन करेंगे और योग में इसके महत्व को समझेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्थ को बता सकेंगे तथा मुख्य परिभाषाओं को समझा सकेंगे;
- व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- मानव जीवन में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का उल्लेख कर सकेंगे और योग के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

6.1 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

व्यावहारिक मनोविज्ञान = व्यावहारिक + मनोविज्ञान। व्यावहारिक मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है- व्यावहारिक + मनोविज्ञान।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के सही अर्थ को समझने से पूर्व हमें मनोविज्ञान की परिभाषा पर विचार करना होगा। आओ पहले मनोविज्ञान की परिभाषा समझें-

मनोविज्ञान अर्थात मन का विज्ञान। वह विज्ञान, जिसमें मन का अध्ययन किया जाता है, मनोविज्ञान कहलाता है।

अब यदि वैज्ञानिक दृष्टि से मनोविज्ञान को परिभाषित किया जाय तो–

''मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें, प्राणी को मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों तथा उनके व्यक्त व अव्यक्त व्यवहारों का एक क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन किया जाता है।''

आपने उपर्युक्त परिभाषा को समझा, आईये अब व्यावहारिक मनोविज्ञान को समझे। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का अनुप्रयोग कर प्राणी के व्यवहार में कल्याण हेतु परिवर्तन लाया जाता है। यह मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान कहलाती है। अर्थात् व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही व्यावहारिक (प्रयोगात्मक) पक्ष है जिसमें मानवीय विचारों कथनों और उसकी क्रियाओं पर नियंत्रण कर, जीवन को कल्याणप्रद बनाने की दिशा में कार्य किया जाता है।

अब आप समझ गये होंगे कि मानवीय कल्याण के लिए, व्यावहारिक मनोविज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

6.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ

शिक्षार्थियों अभी तक आपने व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ समझा, आइये अब व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषा पर विचार करें–

सामान्य रूप से ''व्यावहारिक मनोविज्ञान'' सामान्य मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक मनोविज्ञान का व्यावहारिक अध्ययन ही है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। इनमें से कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

1. ''व्यावहारिक मनोविज्ञान का लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन एवं नियंत्रण है ताकि हम स्वयं अपने जीवन को, बुद्धिमतापूर्ण, सही ढंग से समझ सकें तथा अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सके।'' –एच. डब्लू. हैपनर

2. ''व्यावहारिक मनोविज्ञान, सामान्य प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यवहारिक पक्षों का अध्ययन करता है।'' –आर.डब्लू हजबैण्ड

3. ''व्यावहारिक मनोविज्ञान के उद्देश्य, विभिन्न प्रकार की योग्यताओं एवं क्षमताओं से युक्त व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने तथा उनके पर्यावरण का चयन एवं नियंत्रण करने के बाद, उन्हें उनके कार्यों में इस प्रकार समायोजित करना है कि वे अधिक से अधिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सुख तथा संतोष पा सकें।'' –पाफेन बर्जर

कहने का तात्पर्य यह है कि ''अपने या दूसरों के व्यवहार एवं व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनमें आवश्यकतानुसार वांछित परिवर्तन लाने वाले मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान कहा जाता है।''

6.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास

शिक्षार्थियों, अब तक व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् आपको यह स्पष्ट अवश्य हो गया होगा कि व्यावहारिक मनोविज्ञान, विभिन्न मानवीय समस्याओं को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वास्तव में व्यावहारिक मनोविज्ञान का लक्ष्य, मानव क्रियाओं वर्णन, भविष्य कथन और उसकी क्रियाओं पर नियंत्रण है, ताकि उसकी समस्याओं का समाधान करके उसका जीवन, सकारात्मक एवं कल्याणमयी बनाया जा सके। आइये अब इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास पर चर्चा करें–

व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, अपितु मनोवैज्ञानिक पैटर्सन के अनुसार, जब द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था, उस समय इसकी उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक पैटर्सन ने ही व्यावहारिक मनोविज्ञान के इतिहास व विकास का वर्णन किया। उन्होंने अपना एक लेख लिखा जिसका नाम था– "Applied Psychology comes of Age" इस लेख में उन्होंने व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास को चार चरणों में बताया है, जिसे निम्नांकित आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं–

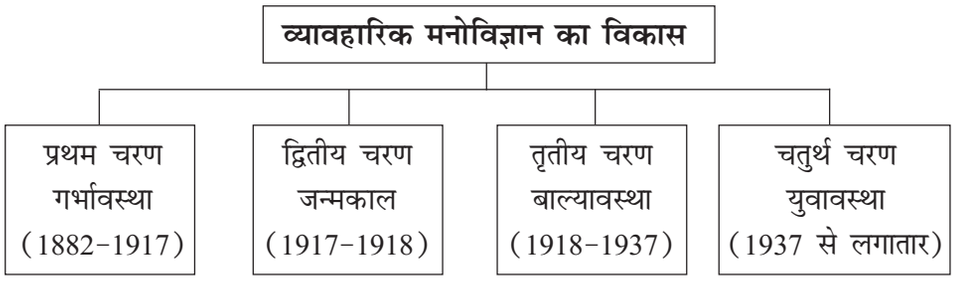

प्रथम चरण : प्रथम चरण व्यावहारिक मनोविज्ञान का गर्भावस्था काल है जो सन 1882 से लेकर 1917 तक का है। पैटर्सन के अनुसार, इस समय में कई मनोवैज्ञानिकों जैसे–गाल्टन केटेल, बिने आदि ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

द्वितीय चरण : सन 1917 से 1918 तक के काल को पैटर्सन ने जन्मकाल माना है। यह वह काल था जब कई मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण हुआ। इसी काल में अमेरिका जैसे शक्तिशाली देशों ने अपनी सेना में भर्ती के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग शुरू किया, जिसमें आर्मी एल्फा व आर्मी बीटा के परीक्षणों का निर्माण हुआ। इसमें एल्फा परीक्षण, आर्मी अधिकारी वर्ग के लिए और बीटा परीक्षण, जवानों और अनपढ़ स्टाफ के लिए किया गया।

तृतीय चरण : यह चरण बाल्यावस्था का है। पैटर्सन के अनुसार सन 1918 से लेकर 1937 तक व्यावहारिक मनोविज्ञान अपनी बाल्यावस्था में रही। यह वह महत्वपूर्ण समय था जिसमें, व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास हो रहा था। इसी दौरान 1937 में अमेरिका में व्यावहारिक मनोविज्ञान पर एक राष्ट्रीस स्तर के संस्थान की स्थापना हुई, जिसका लक्ष्य राष्ट्र के सुधार में व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग करना था।

चतुर्थ चरण : सन् 1937 के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान ने युवावस्था में प्रवेश किया। मानव ने इस विज्ञान का अनुप्रयोग, एक के बाद एक क्षेत्र में करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके महत्वपूर्ण परिणाम आने लगे और इस प्रकार सन 1937 से आज तक इसका क्षेत्र, लगातार बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान में मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसका सद्उपयोग बढ़ता ही जा रहा है।

शिक्षार्थियों, आज स्वस्थ रहने के लिए योग का उपयोग चिकित्सा जगत में किया जा रहा है, जिसे यौगिक चिकित्सा या योग थिरैपी कहते हैं। रोगी को उपयुक्त चिकित्सा देने के लिए पहले रोग का परीक्षण करना आवश्यक है ताकि रोगी को उचित चिकित्सा दी जा सकें। किसी भी रोगी की रोग प्रेक्षा (रोगी परीक्षण) करने के लिए विभिन्न प्रेक्षण विधियाँ, चिकित्सकों द्वारा प्रयोग में लायी जाती हैं- जैसे-रोगी की जिह्वा देखना, नेत्र देखना, नाड़ी चैक करना आदि। इसके साथ ही कभी-कभी रोगी के व्यवहार का भी परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण में व्यावहारिक मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है।

यूनिटगत प्रश्न 1.1

सही विकल्प चुनिए :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास पर, सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले वैज्ञानिक हैं-

   (क) फ्रायड (ख) पैटर्सन

   (ग) डेविड (घ) युंग

2. व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य प्रोढ़ व्यक्तियों के व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन करता है। उक्त परिभाषा निम्न में सें किस वैज्ञानिक ने दी-

   (क) पैटर्सन (ख) फ्रायड

   (ग) आर.डब्लू. हजबैण्ड (घ) युंग

3. व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास के चारों चरणों सही क्रम है-

   (क) जन्मकाल, बाल्यावस्था, युवावस्था और गर्भावस्था

   (ख) गर्भावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और जन्मकाल

(ग) गर्भावस्था, जन्मकाल, बाल्यावस्था और युवावस्था

(घ) जन्मकाल, गर्भावस्था, बाल्यावस्था और युवावस्था

रिक्त स्थान भरिए–

1. पैटर्सन ने सन ..... से ..... तक के समय को व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्मकाल माना है।
2. पैटर्सन ने अपने लेख में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास को चार चरणों –गर्भावस्था, जन्मकाल, ..., युवावस्था बताया है।
3. सन 1937 के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपनी ..... में प्रवेश किया।

6.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

शिक्षार्थियों, आपने व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके विकास के बारे में जाना। इसमें हमने चर्चा की कि, पैटर्सन ने इसके विकास को चार चरणों में विभाजित किया था। अपने चौथे चरण–युवावस्था में पहुँचते ही व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपना क्षेत्र, व्यापक और विस्तृत कर लिया। वर्तमान में व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में, लगातार वृद्धि होती जा रही है। आइये जाने कि, किन क्षेत्रों में मुख्य रूप से व्यावहारिक मनोविज्ञान का अनुप्रयोग किया जा रहा है–

चित्र 6.1: मानव द्वारा व्यावहारिक मनोविज्ञान के अनुप्रयोग

1. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में
2. परामर्श एवं निर्देशन में
3. समाज के क्षेत्र में
4. शिक्षा के क्षेत्र में
5. अपराध के क्षेत्र में
6. अभ्यर्थियों के चयन में
7. उद्योग एवं व्यापार में
8. सैनिक क्षेत्र में
9. राजनैतिक क्षेत्र में
10. खेल जगत में
11. यौन शिक्षा में
12. विश्व शान्ति में

उपर्युक्त कुछ ऐसे मुख्य क्षेत्र हैं जिनमें व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग बहुत कारगर सिद्ध हो रहा है। आइये जानें कैसे–

1. **मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में :** यह एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें व्यावहारिक (नैदानिक) मनोविज्ञान से व्यक्तियों के असमान्य व्यवहार से संबंधित समस्याओं को समझने, उनके कारणों का पता लगाने और समाधान करने में सहायता मिलती है। पहले मानसिक विक्षिप्त रोगियों को बांध कर रखा जाता था। उन पर झाड़ फूंक करने वाले तरह–तरह के अत्याचार करते थे। उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। आज विकसित मानसिक चिकित्सालयों में विक्षिप्तों की बेड़िया कटवाकर, मनोरोगों के कारणों का विश्लेषण कर, उनकी चिकित्सा शुरू की है। जिन मनोरोगियों को भूत–चुड़ैल समझा जाता था उन मनोरोगियों के कारणों का विश्लेषण करके, मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रोगों की सफलतापूर्वक चिकित्सा की और इस प्रकार फ्रायड, युंग एवं एडलर जैसे– मनोविश्लेषणवादियों ने इस क्षेत्र में, कई महत्वपूर्ण अन्वेषण किये। उन्होंने यह पता लगाया कि, मानव शरीर तथा मन का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। अत: रोगियों में शारीरिक व्याधियों के साथ–साथ मानसिक व्याधियाँ भी लगी हो सकती हैं। अत: आधुनिक चिकित्सक, मनोचिकित्सकों की सहायता लेकर, रोगी को स्वस्थ करते हैं।

   मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने के लिए, योग की विशेष पद्धतियाँ जैसे–भावातीत ध्यान, प्रेक्षाध्यान, विपश्यना तथा अष्टांग योग, अत्यंत महत्वपूर्ण कारगर सिद्ध होती हैं। ध्यान योग से, मानसिक रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। तनाव के प्रबन्ध में, डिप्रैशन को खत्म करने और विक्षिप्त अवस्था से बचाने के लिए, योग का महत्वपूर्ण

स्थान है। इस प्रकार योग मनोविज्ञान (योग आसनों और ध्यान की विशेष पद्धतियों) से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखा जा सकता है।

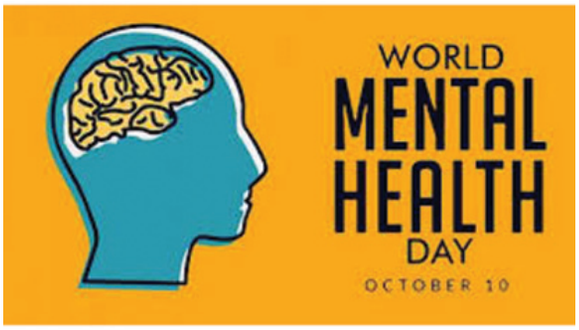

चित्र 6.2: विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस

2. **परामर्श एवं निर्देशन में :** वर्तमान काल में व्यक्ति का जीवन प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष से भरा पड़ा है। नौकरियाँ कम मिलने के कारण, बेरोजगारों में तनाव व्याप्त है, जिससे काफी लोग डिप्रैशन के शिकार हो जाते हैं। विकासशील देशों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से लोगों को उचित परामर्श व निर्देश देकर, समस्या का समाधान करते हैं। वे उनके अन्दर की आन्तरिक शक्ति तथा छिपे कौशल क्षमता और कार्य करने की क्षमता को समझाते हैं, जिससे समस्याओं का समाधान भी हो जाता है।

   व्यवसाय में आने वाली समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त, मनोवैज्ञानिक लोगों की व्यक्तिगत, घरेलू और सामाजिक समस्याओं का भी समाधान करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपने व परिवार सदस्यों के व्यवहार में वांछित सुधार ला सकता है और प्रगति कर सकता है।

3. **समाज के क्षेत्र में :** सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में, व्यावहारिक मनोविज्ञान महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। सामाजिक बुराईयों, कुप्रथाओं रूढ़िवादिता, जातिवाद भेदभाव, बालविवाह, कुपोषण आदि समस्याओं का मनोवैज्ञानिक तरीके से समाधान किया जा सकता है। समाज सेवाओं, सामाजिक शिक्षा और समाज कल्याण में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जा सकता है। समाज को समृद्धि और प्रगतिशील बनाने के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान उपयोगी सिद्ध हुआ है।

4. **शिक्षा के क्षेत्र में :** व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग, शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ता ही जा रहा है। एक स्वतंत्र विषय के रूप में भी मनोविज्ञान विषय को संचालित किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं, स्मृति चिन्तन तर्क आदि अनेक मानसिक प्रक्रियाओं पर मनोवैज्ञानिक नियमों की खोज की जा रही है। शिक्षार्थियों की रूचि योग्यता और सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न शोध कार्य किये जा रहे हैं।

   - शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने व व्यवहार कुशल बनाने में;
   - बालकों में अनुशासन व स्वस्थ आदतें उत्पन्न करने में;

- बुरी आदतें छुड़ाने में;
- शिक्षार्थियों की अभिरूचि तथा मानसिक परीक्षा से उनके अध्ययन विषयों को सुनिश्चित करने में;
- उच्च शिक्षा के उपरांत उचित व्यवसाय चुनने में;

5. **अपराध के क्षेत्र में :** जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी और गरीबी जैसे- मुख्य कारणों की वजह से, आज समाज में अपराधियों की संख्या बढ़ती जा रही है। एक भयमुक्त व अपराधमुक्त समाज की स्थापना के लिए, मनोविज्ञान बहुत सहायक है। मनोविज्ञान के अनुसार अपराधी को दंड देने की अपेक्षा, उसके दोषों को समझाकर और भविष्य का परिणाम बताकर, उसमें सुधार लाया जा सकता है। इसमें वह अपराध नहीं करेगा और एक अच्छे नागरिक का फर्ज अदा करेगा।

   आज सुधार गृह, खुले जेल जाने, बाल सुधार गृह आदि इसी के परिणाम हैं। मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि, अपराधी अपराधों के लिए अकेले ही जिम्मेदार नहीं हैं। उनकी परिस्थितियाँ, वातावरण और समाज भी उस अपराध के लिए जिम्मेदार है और मनोविज्ञान इन सभी का उपचार करता है।

   इस प्रकार अपराध निरोध में, मनोविज्ञान एक बड़ी भूमिका निभाती है। साथ ही अपराध , अपराधी और परिस्थितियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझने में, न्यायाधीश को सहायता मिलती है, जिससे उचित न्याय हो जाता है।

6. **नौकरी हेतु अभ्यर्थियों के चयन में :** प्रत्येक देश में सरकारी व गैर सरकारी सेवाओं के लिए अभ्यर्थियों का चयन किया जाता है। वर्तमान में लगभग सभी देशों में अब, इस चयन के लिए चयन समिति में एक या दो मनोवैज्ञानिक अवश्य जोड़े जाते हैं, जो मनोवैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर योग्य व्यक्ति का चुनाव करती है। सार्वजनिक सेवा आयोग, लोक सेवा आयोग, थल सेना, नौ सेना, वायु सेना तथा अन्य महत्वपूर्ण नियुक्ति संस्थाएँ, इन मनोवैज्ञानिकों की सहायता से योग्य व्यक्तियों का चयन करती हैं और इनके लिए जो योग्यता परीक्षा आयोजित की जाती है वे वास्तव में मनोवैज्ञानिक आधारित परीक्षाएँ भी हैं।

चित्र 6.3: नौकरी हेतु अभ्यर्थियों के चयन

7. **उद्योग एवं व्यापार में :** औद्योगिक क्षेत्रों में उद्योगों की सही ढंग से स्थापना, उन्हें आधुनिक रूप देना कर्मचारियों का उचित चयन, मशीनों का चयन और प्रबंधन को दुरुस्त करने आदि में मनोविज्ञान का बहुत बड़ा हाथ है। इसके अध्ययन के लिए अलग से मनोविज्ञान की शाखा–औद्योगिक मनोविज्ञान और संगठन मनोविज्ञान (Organisational Psychology) की स्थापना हुई है।

   औद्योगिक मनोविज्ञान में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक अच्छी किस्म का उत्पादन किस प्रकार किया जाय। जब कि संगठन मनोविज्ञान के अंतर्गत कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याएँ उनकी औद्योगिक समस्याएँ, कर्मचारियों के चयन की समस्याओं, उनके प्रशिक्षण, कारखानों मशीनों की दशा संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इससे निम्नांकित उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता मिलती है–

   - मजदूरों कर्मचारियों और प्रबन्धकों के बीच मतभेदों को दूर करने में।
   - कर्मचारियों की रूचि, अभिवृत्ति, बुद्धि एवं विशेष योग्यता की जांच करने में।
   - कार्य के प्रति कमचारियों में प्रोत्साहित करने में।
   - उद्योग के बेहतर उत्पादन, वितरण विनियम आदि कार्यों में।

   इस प्रकार उद्योग एवं व्यापार को वैज्ञानिक स्तर पर लाने और बेहतर उत्पादन वितरण और विनियम में व्यावहारिक मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

8. **सैन्य क्षेत्र में :** किसी भी देश के लिए उसका मजबूत सैन्य क्षेत्र उसके लिए काफी महत्वपूर्ण है और इसके लिए न केवल सैन्य अस्त्र-शस्त्रों का आधुनिक होना आवश्यक है अपितु सैनिक धैर्यवान, साहसी पराक्रमी और युद्ध के दौरान डटे रहने वाले होना भी, आवश्यक है। उक्त गुणों को विकसित करने के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान की मदद ली जाती है। निम्नांकित तरीके से सैन्य क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जा रहा है–

   - सैन्य भर्ती के दौरान उपयुक्त सैनिक के चयन में;
   - जल, थल व वायु सेना के अधिकारियों के चयन मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा;
   - युद्धकाल में शत्रु को भयभीत करने और सैनिकों का मनोबल बढ़ाने हेतु मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेने में;
   - सैनिकों में स्थिरता, दृढ़ता, देशभक्ति बनाएँ रखने में;
   - युद्ध तथा अन्य विषम परिस्थितियों के दौरान मानसिक रोगी बने सैनिकों की मनोचिकित्सा में।

9. **राजनैतिक क्षेत्र में :** कोई भी देश चाहे वह तानाशाही हो या जनतंत्रात्मक हो, उसमें व्यापक रूप से मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता रहा है। हालांकि मनोविज्ञान को व्यवहार में लाने

की बात बहुत पुरानी नहीं है, किन्तु राजा हमेशा अपने विश्वसनीय मंत्रियों के कहे गये वाक्यों को ध्यान में रखकर फैसला किया करते थे। इसका तात्पर्य सीधा है कि राजा के विश्वास पात्रों ने, जो भी कहानी राजा के समक्ष पेश कर दी, राजा ने उसी मनोवैज्ञानिक व्यवहार को ध्यान में रखकर, फैसला कर दिया और आज भी स्थिति यही है। आज भले ही हमारा देश लोक तंत्रात्मक है मगर समान्य जनता की मांग, उसकी आवाज संबंधित मंत्रियों तक नहीं पहुँच पाती। अत: ऐसे में यह आवश्यक है कि राजनैतिक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों का सहारा लिया जाय। इस क्षेत्र में निम्नांकित तरीकों से व्यावहारिक मनोविज्ञान की सहायता ली जा सकती है–

- कानून का पालन कराने के लिए जनता के साथ, मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यवहार किया जाए।
- जनता की मनोदशा जानकर, संबंधित क्षेत्र में काम किये जाए।
- मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेकर, जनहित में कुछ विशेष कार्य किये जाएँ।
- चुनाव के दौरान, जनता की मन की बात समझकर, मनोवैज्ञानिक तरीके से चुनाव प्रचार करें।
- मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया चुनाव प्रचार, व्यक्ति को सफलता प्रदान करता है। ऐन वक्त पर कभी–कभी इसी कारण, मतदाताओं का रूख बदल जाता है।
- राजनैतिक पार्टियों का मनोबल उठाने व गिराने में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान की अहम भूमिका रहती है।
- प्रशासन के प्रबंधन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

10. **खेल जगत में :** आजकल खेल जगत में व्यावहारिक मनोविज्ञान का पर्याप्त उपयोग किया जा रहा है। किस प्रकार इसका उपयोग किया जा रहा है, आइये जानें–
    - खिलाड़ियों की टीम के चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग करके;
    - खेलकूद प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों का मनोबल बढ़ाने के लिए;
    - किसी कारणवश हतोत्साहित खिलाड़ी को मनोवैज्ञानिक तरीके से उसको परामर्श देकर और उसकी छिपी क्षमता को याद दिलाकर;
    - खिलाड़ियों के मन से भय, शंका, चिंता, अवसाद आदि दूर करके;
    - खिलाड़ियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण देकर।
11. **यौन शिक्षा के क्षेत्र में :** यौन क्रिया सभी प्राणियों में एक आवश्यक जैविक क्रिया है, जिससे प्राणी संतान उत्पत्ति कर वंश वृद्धि करते हैं। मानव एक बुद्धिमान प्राणी है, जो नैतिक आचरण

से, एक सभ्य समाज की स्थापना करता है। परन्तु जब समाज में यौन क्रिया समय से पूर्व शुरू हो जाए या यह कुकृत्य बनने लगे तो निश्चित रूप से यह विकट सामाजिक समस्या बन जाती है।

क्या आप जानते हैं कि, हमाने कानून में विवाह के समय लड़के की न्यूनतम उम्र 21 वर्ष और लड़की की न्यूनतम उम्र 18 वर्ष निश्चित की गई है। संस्कृति में मनुष्य आयु 100 वर्ष मानकर उसे चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संयास में विभाजित कर दिया गया ताकि मनुष्य अपने जीवन को यश–कीर्ति को प्राप्त करते हुए, सम्मान के साथ समाज में जी सके। इस प्रथम आश्रम की आयु 25 वर्ष रखी गई, जिसमें बालक, बाल्यावस्था, खेलकूद, गुरू आश्रम में विद्या प्राप्त करना और गृहस्थ आश्रम के योग्य बनना आदि शामिल थे। अर्थात् इस आश्रम में 25 वर्ष की अवस्था तक इस प्रकार की शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी कि, बालक ब्रह्मचर्य का भी पालन करता था और उसका सुचरित्र होता था।

आज पाश्चात्य शैली और यौन स्वच्छन्दता का लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ा है, जिसमें विशेष रूप से किशोर व अव्यस्क व्यक्ति इस समस्या के शिकार हुए हैं। साथ ही टी.वी., मीडिया, अश्लील कॉमिक्स आदि की चरित विकृति उत्पन्न करने में सहायक है, जिससे आए दिन बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य समाज में घट रहे हैं। अत: इन अपराधिक भावनाओं से बचाना, सम्भोग का सही अर्थ समझाना और मनोनपुसंगता या यौन विकृति पर प्रकाश डालना आवश्यक है और इसकी समस्याओं का समाधान करने में व्यावहारिक मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मनोवैज्ञानी, अपराधिक प्रवृत्ति के लोगों, यौन विकृतों, अव्यस्कों आदि का मनोविश्लेषण कर उनकी यौन समस्याओं का समाधान करते हैं और योग के माध्यम से स्वस्थ करते हैं।

12. **विश्व शान्ति के क्षेत्र में :** आज विश्व शान्ति की परम आवश्यकता है। देश आपस में परस्पर सौहार्द से मित्रभाव में रहते हैं तो विकास के पथ पर बढ़ते हैं और यदि बैरभाव से रहते हैं, तो हानि ही हानि होती है। इसमें मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को ध्यान रखते हुए, आपसी मतभेदों और समस्याओं का मनोवैज्ञानिक समाधान ढूंढ़ते हैं, जिससे विश्व में शान्ति बनी रहे।

यूनिटगत प्रश्न 1.2

सत्य/असत्य बताइये :

1. आजकल व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में किया जा रहा है। ( )
2. लोगों की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु मनोवैज्ञानिकों द्वारा परामर्श दिया जाता है। ( )

3. सामाजिक बुराइयों कुप्रथाओं और अपराधों से केवल अपराधियों को दण्ड देकर ही नियंत्रित किया जा सकता है। ( )

4. आधुनिक समाज को अपराधमुक्त करने के लिए, अपराधियों को मनोवैज्ञानिक परामर्श देकर, उन्हें सुधारा जा सकता है। ( )

आपने क्या सीखा

- व्यावहारिक मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है– व्यावहारिक + मनोविज्ञान।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का व्यावहारिक प्रयोगात्मक पक्ष है, जिसमें मानवीय विचारों, कथनों और उसकी क्रियाओं पर नियंत्रण करने और जीवन को कल्याणमय बनाने का अध्ययन किया जाता है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग, मानवजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसकी समस्या का समाधन करने में तथा उसक कल्याण हेतु किया जाता है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान का उद्देश्य, मानव व्यवहार का अध्ययन करना, उसकी क्रियाओं का वर्णन करना, भविष्य कथन करना और क्रियाओं पर नियंत्रण रखना है, जिससे वह अपने जीवन को बुद्धिमत्तापूर्वक जी सकें और दूसरे के जीवन को प्रभावित कर सकें।
- पैटर्सन ने सन 1940 में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला और इस चार चरणों में विभाजित किया : (i) गर्भावस्था (ii) जन्मकाल (iii) बाल्यावस्था (iv) युवावस्था।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्र है। आज बहुत से क्षेत्रों में व्यावहारिक मनोविज्ञान का सदुपयोग किया जा रहा है।

यूनिटांत प्रश्न

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? उसका अर्थ बताते हुए उसकी विभिन्न परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए, उसके विकास का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक एवं विस्तृत है। इस कथन की विवेचना कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

सही विकल्प चुनिए :

1. (ख) 2. (ग) 3. (ग)

रिक्त स्थान भरिए :

1. 1917, 1918 2. बाल्यावस्था 3. युवावस्था

1.2

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य

7

व्यक्तित्व की अवधारणा

शिक्षार्थियों पिछले यूनिट में हमने व्यावहारिक मनोविज्ञान के विषय पर चर्चा की, जिसमें आपने जाना कि, मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाने हेतु हमारे जीवन में, मनोविज्ञान का उपयोग बढ़ता जा रहा है और साथ ही समस्या के अनुसार, यौगिक प्रबंधन किया जा रहा है।

जहाँ एक ओर मनोविज्ञानी, मनोविश्लेषण के माध्यम से समस्या का समाधान करते हैं, वहीं दूसरी ओर पीड़ित के जीवन में व्यावहारिक योग लाकर, उसके जीवन को स्वस्थ और कल्याणमयी बना दिया जाता है।

पिछले यूनिट में आपने यह भी पढ़ा कि वर्तमान में स्वास्थ्य चिकित्सा से लेकर विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों में, व्यावहारिक मनोविज्ञान का सीधा दखल है। इस यूनिट में हम व्यक्तित्व, इसके सिद्धांत और व्यक्तित्व के निर्धारण करने वाले कारकों को समझेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप :

- व्यक्तित्व की अवधारणा पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- व्यक्तित्व के निर्धारकों का वर्गीकरण कर सकेंगे और प्रत्येक का वर्णन कर सकेंगे।

7.1 व्यक्तित्व की अवधारणा

शिक्षार्थियों, हम प्रतिदिन बहुत से व्यक्तियों से मिलते हैं, बातचीत करते हैं, अच्छा व्यवहार करते हैं, किन्तु उनमें से कुछ ही लोग हमें पसन्द आते हैं। आपने देखा होगा कि कुछ व्यक्तियों का व्यक्तित्व (Personality) इतना आकर्षक होता है कि, उनसे मिलना बातचीत करना अच्छा लगता है और उनसे मित्रता हो जाती है। जबकि इसके विपरीत अन्य व्यक्तियों से चाहते हुए भी दूरी

बनाना चाहते हैं। इसका क्या रहस्य है? इसका रहस्य है व्यक्ति की वह अव्यवहारिक समस्या, जो उसकी आदत बन गई है, जिससे लोग उसे मानसिक बीमार कहने लगते हैं।

उक्त विषय पर विचार किया गया मंथन किया और फिर मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति को और व्यक्तित्व समझने के लिए नये-नये सिद्धान्तों की खोज की। उल्लेख मिलता है कि इस प्रकार का अन्वेषण ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक हिप्पोक्रेट्स ने व्यक्ति के काय रस के आधार पर उसके व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा- 1. रक्त 2. कृष्ण पित्त 3. पीत पित्त 4. कफ। और बताया कि इन चारों में से जिस काय रस की व्यक्ति में प्रधानता होती है उसकी चित्तवृत्ति उसी के अनुसार होती है।

उक्त सिद्धांत का प्रमाणीकरण, हमारी प्राचीनकाल की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में मिल जाता है, जिसमें पित्त और कफ के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन मिलता है।

इसके साथ ही सुप्रसिद्ध उपनिषद् श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्ति के व्यक्तित्व का उल्लेख मिलता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि, व्यक्ति का व्यक्तित्व तीन गुणों – सत्, रज और तम के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

अब यदि गत शताब्दी और वर्तमान काल को देखा जाय तो कई मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न सिद्धान्तों द्वारा व्यक्तित्व को जानने का प्रयत्न किया है।

7.1.1 व्यक्तित्व

शिक्षार्थियों, व्यक्तित्व एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथा रोचक विषय है। किसी भी व्यक्ति के विषय में जानने के लिए उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार उसके गुण, शारीरिक संरचना, विशेषताएँ आदि को जानना परम आवश्यक है। क्या आपने कभी किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलकर उसको स्वभाव का आंकलन किया है अब आप विचार करें – आपको बहुत से शिक्षकों ने पढ़ाया होगा किन्तु उनमें से केवल कुछ ही शिक्षकों की याद आपको हमेशा बनी रहती है या फिर जब भी आप अपने शिक्षण समय को याद करते हैं तो उनकी याद आपको आ ही जाती है। ऐसा क्यों होता है? आपको पढ़ाया तो अन्य शिक्षकों द्वारा भी गया था। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इन शिक्षकों की कुछ खास विशेषताएँ थी, जिन्होंने आपको प्रभावित किया।

विशेषताएँ अर्थात् विशेष गुण जो अच्छे भी हो सकते है और बुरे भी। जैसे किसी शिक्षक के पढ़ाने व समझाने की वह अच्छी टेकनिक, उसका सौम्य एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार, तो किसी शिक्षक का अकारण क्रोध, दण्डात्मक कार्यवाही, अनुचित व्यवहार।

ये वे विशेषताएँ हैं, जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होती और इन्हीं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। ये मुख्य विशेषताएँ अथवा गुण मिलकर उस व्यक्ति का व्यक्तित्व बनाते हैं।

चित्र 7.1: विभिन्न व्यक्तित्व के व्यक्ति

व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा : अभी हमने व्यक्ति में पाये जाने विशेष गुण अथवा विशेषताओं की चर्चा की। अब आप यह समझ ही गये होंगे कि किसी भी व्यक्ति को उसके विशेष गुण अथवा विशेषताएँ, जो अन्य में नहीं पाये जाते, उसे दूसरे से भिन्न बनाती हैं तो आइये अब व्यक्तित्व की परिभाषा को समझने का प्रयास करें–

''प्रत्येक व्यक्ति पाये जाने वाले कुछ विशेष गुणों, जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होते और जिनके कारण प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न बनता है, का संगठन व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।''

पर्सनलिटी (Personality) शब्द की उत्पत्ति, लैटिन भाषा के पर्सोना (Persona) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– मुखौटा यानि बाह्य आवरण।

प्राचीनकाल से ही बाह्य रूपरेखा के आधार पर व्यक्तित्व को परिभाषित किया जाता रहा है। जैसे जब हम किसी गेरूआ, लाल, पीले, सफेद वस्त्र धारण किये तिलक लगाएँ, माला पहने, हाथ में कमण्डल आदि लिये जटाधारी व्यक्ति को महात्मा, साधु या संत कहते हैं। किन्तु आधुनिक काल में व्यक्ति के विशेष गुणों के आधार पर उसके व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने दार्शनिकों व समाज शास्त्रियों द्वारा व्यक्तित्व की परिभाषा, व्यक्तियों के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए दी है– जायसवाल (1987) के अनुसार कुछ मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाएँ इस प्रकार है–

1. व्यक्तित्व, उन अभ्यास के रूपों का समन्वय है, जो वातावरण में व्यक्ति के विशेष संतुलन प्रस्तुत करता है। –कैम्फ (Kempf) 1919 के अनुसार

2. व्यक्तित्व, व्यक्ति की समस्त जैविक जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रूझान, क्षुदाएँ, मूल प्रवृत्तियां तथा अर्जित विन्यासों एवं प्रवृत्तियों का समूह है।
–मार्टन प्रिंस (Morton Prince) 1924 के अनुसार

3. व्यक्ति के विकास की किसी अवस्था पर उसके सम्पूर्ण संगठन को व्यक्तित्व कहते हैं।
–वारेन तथा करमाइकल के अनुसार

4. ''व्यक्तित्व व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ अपूर्व व स्थायी समायोजन है।''
(Personality is an individuals consistant adjustment to his environment)
–बोरिंग के अनुसार

5. मनोवैज्ञानिकों ने माना कि इस प्रकार की ये सभी परिभाषाएँ व्यक्तित्व को परिभाषित करने में आंशिक सिद्ध हो जाती है। यह देखा गया है कि किसी व्यक्ति का मानसिक व शारीरिक गुणों का यचोग कितना भी चिन्तनशील हो परन्तु व्यवहार में गतिशीलता न होने के कारण, उसका व्यवहार और समायोजन अधूरा रह जाता है। अत: मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट ने उपर्युक्त बात को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व की परिभाषा पर अपने विचार व्यक्त किये और इसे सर्वमान्य बनाने का सफल प्रयास किया जिसके उपरांत अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने इसे पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार किया।

मनोविज्ञानिक जायसवाल जी के अनुसार, आलपोर्ट (1939) ने व्यक्तित्व की जो परिभाषा दी है वह इस प्रकार है–

''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो कि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजनों को निर्धारित करता है।''

Personality is the dynamic organisation within the individual of those pshycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment.

यूनिटगत प्रश्न 7.1

रिक्त स्थान भरिए :

1. पर्सनलिटी शब्द की उत्पत्ति ..... भाषा के पर्सोना शब्द से हुई है।
2. पर्सोना शब्द का अर्थ है .....।
3. विशेषताएँ अर्थात् ....., जो अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी।

7.2 व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinants of Personality)

हमने व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं को समझा। अब आइये व्यक्तित्व के निर्धारकों के बारे में जानें- व्यक्तित्व को प्रभावित करने में कुछ विशेष तत्वों का सहयोग रहता है, इन्हें व्यक्तित्व निर्धारक कहते हैं। इन तत्वों के प्रभाव से ही उनके अनुरूप व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व के विकास में जैविक (Biological) तथा पर्यावरणीय (Environmental) दोनों का ही प्रभाव पड़ता है। अत: व्यक्तित्व के निर्धारकों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है- जैविक निर्धारक और पर्यावरणीय निर्धारक।

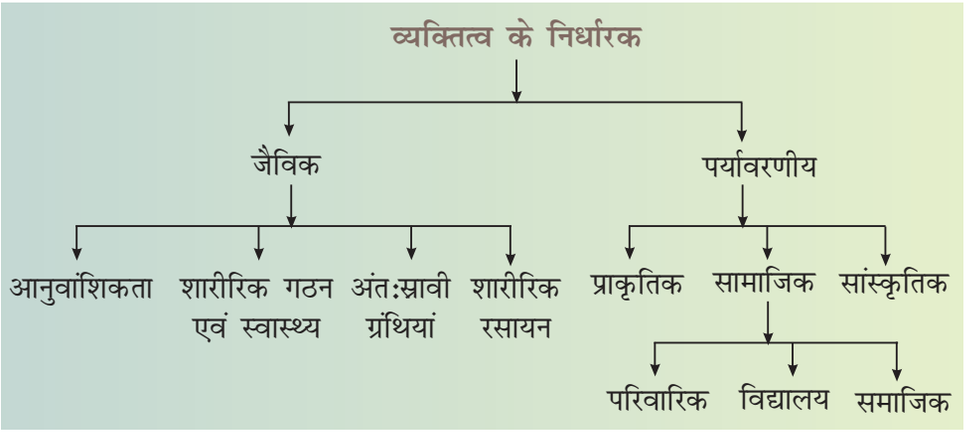

(अ) जैविक निर्धारक

आइये, पहले जैविक निर्धारक (Biological determinants) के विषय में जानें; वे सभी निर्धारक तत्व, जो जैविक रूप से व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, जैविक निर्धारक कहलाते हैं। मुख्य रूप से ये चार माने गये हैं-

1. आनुवंशिकता
2. अंत:स्रावी ग्रन्थियां
3. शारीरिक गठन
4. शारीरिक रसायन।

1. **आनुवंशिकता (Heredity):** संतानों में अपने वंश के पैतृक गुण आते हैं। इसे आनुवंशिकता कहते हैं। व्यक्ति में जो पैतृक गुण आते हैं जैसे-शरीर का रंग, रूप, बनावट, बुद्धि आदि ये पैतृक गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व को सीधा प्रभावित करते हैं।

2. **शारीरिक गठन और स्वास्थ्य :** शारीरिक गठन का तात्पर्य व्यक्ति की लम्बाई बनावट, शारीरिक रंग, बाल, नैन नक्श आदि की गणना से है। बहुत से लोग इनहीं शारीरिक विशेषताओं व्यक्ति का बोध करते हैं। लोग हृष्ट-पुष्टि और सुनदर व्यक्ति को देखकर प्रभावित होते

हैं ओर प्रशंसा करते हैं। इससे वह व्यक्ति अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है और उसमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

शारीरिक गठन ठीक न होने पर व्यक्ति में हीन भावना उत्पनन हो जाती है। इससे उसको आत्म विश्वास में कमी सफलता में सशंकित रहना और असामाजिक व्यवहार करना आदि पाया जाता है।

ठीक इसी प्रकार व्यक्तित्व विकास पर स्वास्थ्य का भी सीधा असर पड़ता है। स्वस्थ व्यक्ति सफलता के साथ समय से अपने कार्यों को पूर्ण कर लेता है और अस्वस्थ व्यक्ति इसके विपरीत अर्थात अपने लक्ष्य को पूरी नहीं कर पाता।

3. **अंतः स्रावी ग्रंथियां :** शिक्षार्थियों आप शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान के अन्तर्गत पहले ही अंत:स्रावी तंत्र का अध्ययन कर चुके हैं। हमारे शरीर में आठ अंत:स्रावी अर्थात् नलिका विहीन ग्रंथियां पायी जाती है जो अपने स्राव (हार्मोन्स) को सीधे रूधिर में छोड़ देती है।

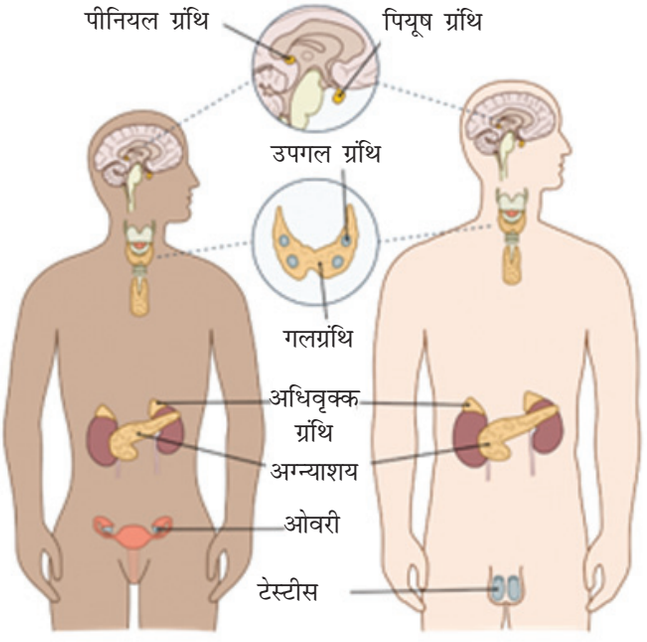

चित्र 7.2: अंतः स्रावी ग्रंथियां

(i) **पियूष ग्रंथि (Pituitary gland) :** इसे मास्टर गलैण्ड भी कहते हैं क्योंकि इससे स्रावित हॉर्मोन्स अन्य ग्रंथियों से निकलने वाले हॉर्मोन्स पर नियंत्रण करता है और शारीरिक विकास में भी यह हॉर्मोन्स बहुत प्रभाव डालता है। विकासकाल में इस ग्रंथि की क्रिया तीव्र होने पर व्यक्ति की मांसपेशियां, अस्थियां, लम्बाई तेजी से बढ़ती हैं।

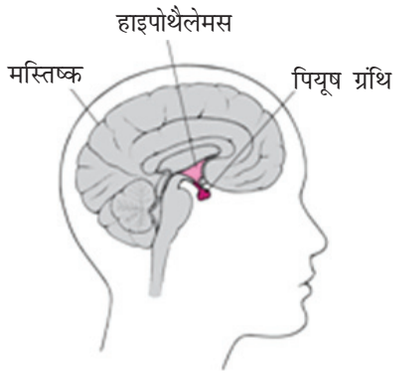

चित्र 7.3: पियूष ग्रंथि

सामनय से अधिक स्राव से व्यक्ति असामान्य अथवा दानवाकार और कम होने से व्यक्ति बौना भी रह जाता है।

(ii) **पीनियल ग्रंथि (Pineal gland) :** मस्तिष्क में पायी जाने वाली इस ग्रंथि के कार्य एवं स्राव अभी रहस्यमयी बने हुए हैं परन्तु ऐसा अनुभव है कि ये शारीरिक वृद्धि व युवावस्था बनाये रखने में सहायक हैं।

(iii) **गलग्रंथि (Thyroid gland) :** कंठ में स्थित यह ग्रंथि थायरोक्सिन नामक हॉर्मोन स्रावित करती है जो शरीर में आयोडीन की मात्रा को नियंत्रित करती है। शरीर मस्तिष्क का उचित विकास करता है।

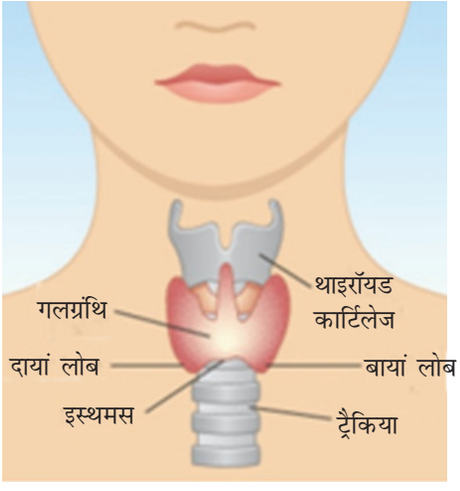

चित्र 7.4: गलग्रंथि

(iv) **उपगल ग्रंथि (Parathyrroid gland) :** यह गलग्रंथि के समीप ही स्थित रहती है। इसके स्राव से शरीर शक्तिमान बना रहता है।

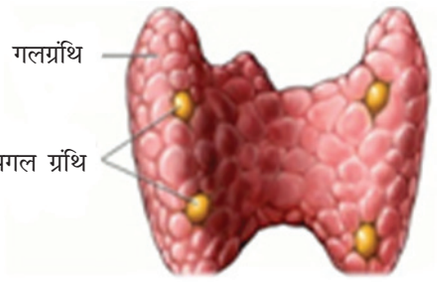

चित्र 7.5: उपगल ग्रंथि

(v) **थाइमास ग्रंथि (Thymus gland) :** यह ग्रंथि सीने के अग्रभाग की गुहा में स्थित होती है। इसके कार्य एवं स्राव की भी स्पष्ट जानकारी नहीं है किन्तु ऐसा अनुमान है कि यह युवावस्था में मौन ग्रंथियों पर नियंत्रण रखती है।

(vi) **अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal gland) :** अधिवृक्क ग्रंथि से अधिवृक्कीय हॉर्मोन स्रावित होता है, जो व्यक्तित्व को बहुत अधिक प्रभावित करता है। सामान्य मात्रा में उत्पन्न होने पर यह पुरूषों व स्त्रियों में उनमें सामान्य गुण बनाएँ रखता है। अधिक मात्रा में उत्पन्न होने पर पुरूषों में स्त्रियों के और स्त्रियों में पुरूष के गुण बढ़ जाते हैं। यह आपत्तिकाल में जीव की शक्तियों का संगठन करता है। इसकी बहुत अधिक मात्रा में रक्तचाप बढ़ जाता है, पसीना आता है तथा आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं और अभाव में एडिसन नामक बीमारी हो जाती है। अब जानना चाहेंगे कि यह एडिसन नामक बीमारी क्या है या इसके क्या लक्षण हैं तो इस बीमारी में शरीर में निर्बलता और शिथिलता बढ़ जाती है, चयापयच की क्रिया मंद पड़ जाती है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है।

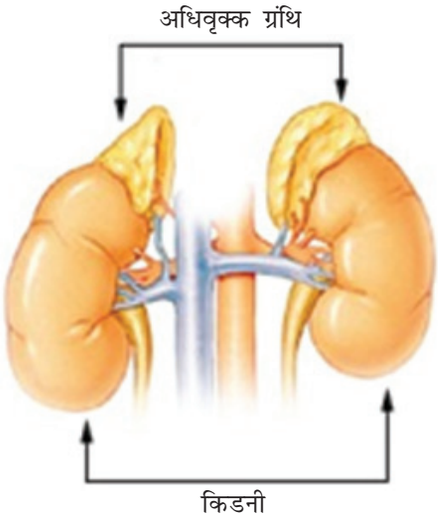

चित्र 7.6: अधिवृक्क ग्रंथि

(vii) **अग्न्याशय ग्रंथि (Pancreas gland) :** इस ग्रंथि से अग्न्याशय नामक स्राव निकलता है जिसमें इन्सुलिन नामक हार्मोन होता है। शिक्षार्थियों यह हॉर्मोन रक्त में शर्करा को पचाता है जिससे शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। इस हार्मोन की कमी या अभव में शर्करा का पाचन नहीं हो पाता जिसे मधुमेह रोग कहते हैं।

(viii) **जनन ग्रंथि (Gonad gland) :** शिक्षार्थियों, जनन ग्रंथियों के स्राव का भी व्यक्तित्व पर बहुत बड़ा प्रभव पड़ता है। किशोरावस्था में ये ग्रंथियां विशेष रूप से सक्रिय होती हैं जिसके कारण स्त्रियों में और पुरूषों में यौन चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। पुरूषों में टेस्टोस्टेरोन हार्मोन के स्रावित होने से पुरूषों जैसे लक्षण जैसे दाढ़ी–मूंछ, भारी आवाज आदि का विकास होता है और स्त्रियों में स्त्री सुलभ लक्षण जैसे दुग्ध ग्रंथियां आदि का विकास एस्ट्रोजन हॉर्मोन स्राव के कारण होता है।

4. **शारीरिक रसायन :** शिक्षार्थियों, शारीरिक रसायन की व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों में महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। ये रसायन कौन से हैं? ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व यूनान के एक प्रसिद्ध दार्शनिक एवं चिकित्सक हिप्पोक्रेटस ने मनुष्य शरीर में पाये जाने वाले रसायनों के आधार पर उसके स्वभाव का निरूपण किया। यह वर्णन हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में भी मिलता है। ये शारीरिक रसायन चार प्रकार के होते हैं–

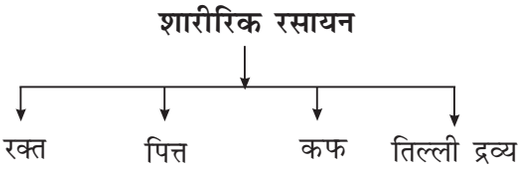

उन्होंने बताया कि –

(i) रक्त की अधिकता वाले व्यक्ति आदतन आशावादी और उत्साही होते हैं।

(ii) पित्त की अधिकता वाले व्यक्ति चिड़चिड़े व क्रोध करने वाले होते हैं।

(iii) कफ की प्रधानता वाले व्यक्ति शान्त व आलसी होते हैं।

(iv) तिल्ली द्रव्य की प्रधानता वाले व्यक्ति उदास रहने वाले होते हैं।

(ब) पर्यावरण संबंधी निर्धारक (Environmental determinants)

ये वे निर्धारक हैं, जो प्रकृति, समाज और संस्कृति के द्वारा व्यक्तित्व को निर्धारित करते हैं।

शिक्षार्थियों इसमें मुख्यत: तीन पर्यावरणीय निर्धारक हैं–

1. प्राकृतिक निर्धारक
2. सामाजिक निर्धारक
3. सांस्कृतिक निर्धारक

1. **प्राकृतिक निर्धारक :** शिक्षार्थियों, मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण में रहता है अत: उसके जीवन तथा व्यक्तित्व पर भौगोलिक परिस्थितियों एवं जलवायु का प्रभाव पड़ता है। आपने देखा होगा कि ठण्डी जलवायु वाले प्रदेशों में रहने वाले लोग गोरे रंग के होते हैं, जबकि गर्म जलवायु वाले प्रदेशों में रहने वाले लोग सांवले रंग के होते हैं। इसी प्रकार गर्म व ठण्डी जलवायु का प्रभाव लोगों के शारीरिक गठन को भी प्रभावित करते हैं। अब आप यह सोच रहे होंगे कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को ये कैसे प्रभावित कर सकते हैं? इसके लिए उदाहरण के तौर पर आप जब किसी व्यक्ति की भौगोलिक परिस्थितियां बदल देते हैं तो उसके व्यक्तित्व में स्वयं ही परिवर्तन आ जाता है। जैसे- उष्ण प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों को शीत प्रदेशों में रखा जाय तो उनके कार्य करने की क्षमताएँ बहुत कत हो जाती है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

2. **सामाजिक निर्धारक :** जैसाकि आप जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त समाज में ही बना रहता है। यही कारण है, उस पर समाज का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। किस प्रकार परिवार से लेकर विद्यालय कार्यक्षेत्र और समाज का प्रभाव व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित करता है, इस विषय पर समझने का प्रयास करें-

   (क) **परिवार व घर का प्रभाव :** शिक्षार्थियों, यह सत्य है :

   (i) माता पिता का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास की शुरूआत घर व परिवार से ही होती है। जन्म होते ही व्यक्ति पहले अपनी मां मो देखता है, सुनता है और उसमें बोलना, हंसना, प्रेम करना आदि सीखता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, माता उसकी देखभाल कुशलता से करती है उसी से उस बालक को जीवन का मार्ग मिल जाता है। तत्पश्चात पिता और फिर परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार को वह शीघ्र ही सीख लेता है। यदि आप विचार करें कि शिवाजी, महाराणा प्रताप, स्वामी विवेकानन्द, लाल बहादुर शास्त्री जैसे महापुरूषों के व्यक्तित्व विकास का प्रथम श्रेय किसको जाता है, प्रथम श्रेय उनकी माता को जाता है। तत्पश्चात ही पिता व परिवार के अन्य सदस्यों को जाता है। माता-पिता द्वारा आवश्यकताओं की उचित पूर्ति तथा उचित मार्गदर्शन बालक को आशावादी, कर्मवीर, धर्मपरायण व परोपकारी बनाता है और इसके विपरीत उचित पूर्ति व मार्गदर्शन न होने पर बालक निराशावादी, कर्महीन, गलत आचरण वाला बन जाता है।

   (ii) **घर के अन्य सदस्यों का प्रभाव :** शिक्षार्थियों, बालक अपने माता-पिता के बाद घर परिवार के अन्य सदस्यों जैसे दादा-दादी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, बड़े भाई बहन और रिश्तेदारों नाना-नानी, मामा-मामी आदि के व्यवहार को देखते हैं और उनसे सीखते हैं। इन सभी सदस्यों का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर सीधा पड़ता है। जो कालान्तर में उसको व्यक्तित्व का भाग बन जाता है। उदाहरण के लिए आप देखें कि यदि परिवार में बालक इकलौती संतान

है तो निश्चित ही उसे अधिक लाड़ प्यार मिलता है, फलस्वरूप वह जिद्दी और शरारती हो जाता है। आगे चलकर यह निर्भीक, निडर और साहसी बनता है। किन्तु जब आवश्यकता से अधिक शरारती होता है तो नियंत्रण की सीमा तोड़ देता है और इस प्रकार वह सामाजिक विरोधी व्यवहार करने लगता है। एक अन्य उदाहरण में यदि बालक को प्यार न किया जाय बात-बात पर झिड़का जाय तो वह दब्बू बन जाता है ओर कई बार वह उदंड बन जाता है।

यदि परिवार में आपराधिक किस्म के लोग हैं, या उनकी प्रवृत्तियां आपराधिक हैं तो बालक में भी आपराधिक प्रवृत्तियां जन्म ले लेती हैं।

(iii) **जन्म क्रम का प्रभाव :** यह हम सब जानते हैं कि परिवार में सभी लोग सभी बच्चों से एक जैसा व्यवहार नहीं करते। वे सबसे बड़े या सबसे छोटे से अधिक प्यार करते हैं जिसका बालक की शारीरिक स्थिति कार्यशैली पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिस बालक को ज्यादा लाड़ प्यार मिलता है, वह दूसरों पर अत्यधिक निर्भर बन जाता है। इसके विपरीत जिसे लाड़-प्यार कम मिलता है, वह स्वावलम्बी व निर्दयी बन जाता है। उसे लगता है कि उसका अधिकार प्यार उसकी वजह से छिन गया है। आपने कई बार छोटे बच्चों की शिकायत करते सुना होगा कि मम्मी, पापा, दादा-दादी सब मेरे भाई को प्यार करते हैं। मुझे कोई नहीं करता और हम इस प्रकार वह अपने उस भाई के प्रति ईर्श्या करने लगता है और अपना अधिकार बनाएँ रखने की कोशिश भी करता है। ऐसे में परिवार को इस बात का विशेष ख्याल रखना चाहिए।

(ख) विद्यालय का प्रभाव : व्यक्तित्व विकास में विद्यालय, विद्यालय के अध्ययन, शिक्षक सहपाठी और भौगोलिक स्थिति का सीधा प्रभाव पड़ता है। इसमें विशेष रूप से निम्नांकित कारक व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं-

चित्र 7.7: विद्यालय का प्रभाव

(i) **शिक्षकों का प्रभाव :** शिक्षक का व्यक्तित्व जितना अधिक प्रभावशाली होता है, बालक के व्यक्तित्व विकास पर उतना ही अनुकूल प्रभाव पड़ता है। यदि शिक्षकों में नकारात्मक गुण है तो निश्चित रूप से बालकों में भी उनका आना स्वाभाविक है।

(ii) **विद्यालयी शिक्षा का प्रभाव :** विद्यालयी शिक्षा किस प्रकार की दी जाती है, इसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है। आजकल प्रायोगिक आधारित शिक्षा, मूल्यपरख शिक्षा, अनेकान्त धार्मिक शिक्षा व शारीरिक विकास की शिक्षा दी जानी बहुत आवश्यक है, जो बालक के व्यक्तित्व विकास में बहुत सहायक होती है।

(iii) **सहपाठियों का प्रभाव :** शिक्षार्थियों, बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसके सहपाठियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जैसी संगति मिल जाती है वैसा ही व्यक्तित्व विकास होता है। बुद्धिमान अनुशासित, समय अनुपालन वाले छात्रों की संगति में अच्छा विकास होता है।

(iv) **विद्यालय की भौगोलिक स्थिति :** विद्यालय कहाँ स्थित है उसका भव कैसा है? किस प्रकार का वातावरण हे? वहाँ आसपास आवासीय या व्यावसायिक स्थिति है? आदि सभी की बालक के व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है। एक शान्त प्रदूषणमुक्त वातावरण में सड़क मार्ग से जुड़े, शानदार भवन वाले विद्यालय का बालक के व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, वह अपने विद्यालय में पढ़ने में गर्व महसूस करता है।

(ग) समाज का प्रभाव : व्यक्ति एक समाजिक प्राणी है, वह समाज के बिना नहीं रह सकता। इसलिए उसी समाज का अंग एवं इकाई के रूप में माना जाता है। चूंकि व्यक्ति समाज की परम्पराओं रीति-रिवाजों संस्कृति समाजिक नियमों आदि का पालन करता है, अत: उसके व्यक्तित्व विकास पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ता है।

जाति, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार हर व्यक्ति की समाज में स्थिति भिन्न-भिन्न पायी जाती है। वर्ण भेद जैसे-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र की भी समाज में स्थितियां भिन्न-भिन्न ही है। समाज में कुछ लोग कुरीतियों जैसे- बाल विवाह, पर्दा

चित्र 7.8: समाज का प्रभाव

प्रथा, जाति प्रथा के पक्षधर होते है तो कुछ लोग विरोधी। कुछ लोग समाज के नियमों का दृढ़ता से पालन करते है तो वहीं कुछ लोग तोड़ते दिखाई देते हैं। समाज में कुछ समाज सुधारक व सामाजिक कार्यकर्ता होते है तो वहीं कुछ समाज विरोधी भी और उपर्युक्त इस सबका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है।

3. **सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinants) :** शिक्षार्थियों अभी आपने व्यक्तित्व के विकास पर समाज का प्रभाव पढ़ा। आपने जाना कि जिस प्रकार समाज की विभिन्न परम्पराओं रीति-रिवाजों सामाजिक नियमों आदि का व्यापक प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। ठीक उसी प्राकर हमारी संस्कृति की भी इसमें अहम भूमिका होती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी संस्कृति के अनुरूप होता है क्योंकि जन्मकाल से ही शिशु का पालन पोषण तथा सामाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है और इसी प्रकार यह संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है। जिस संस्कृति में बालक का लालन-पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। यहाँ इस तथ्य पर गौर करना भी आवश्यक है कि अलग-अलग संस्कृति के समाजों में रहन-सहन रीति-रिवाजों धर्म, कुला, मूल्य और परम्पराओं में भिन्नता देखी जा सकती है।

यूनिटगत प्रश्न 7.2

रिक्त स्थान भरिए :

1. व्यक्तित्व के विकास में व्यक्तित्व निर्धारकों को दो भागों में बांटा - (i) ..... और (ii) पर्यावरण।
2. थाईमस नामक ग्रंथि से ..... नामक हॉर्मोन स्रावित होता है।
3. ..... हॉर्मोन की कमी अथवा अभाव के कारण रक्त में शर्करा का पाचन नहीं होता।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में हमने सीखा कि :

- व्यक्तित्व एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथा रोचक विषय है। किसी भी व्यक्ति के विषय में जानने के लिए उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार उसके गुण, शारीरिक संरचना, विशेषताएँ आदि को जानना परम आवश्यक है।

- विशेषताएँ अर्थात विशेष गुण जो अच्छे भी हो सकते है और बुरे भी। जैसे किसी शिक्षक के पढ़ाने व समझाने की वह अच्छी टेकनिक, उसका सौम्य एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार, तो किसी शिक्षक का अकारण क्रोध, दण्डात्मक कार्यवाही, अनुचित व्यवहार।
- ''प्रत्येक व्यक्ति पाये जाने वाले कुछ विशेष गुणों, जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होते और जिनके कारण प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न बनता है, का संगठन व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।''
- पर्सनलिटी (Personality) शब्द की उत्पत्ति, लैटिन भाषा के पर्सोना (Persona) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- मुखौटा यानि बाह्य आवरण।
- व्यक्तित्व, उन अभ्यास के रूपों का समन्वय है, जो वातावरण में व्यक्ति के विशेष संतुलन प्रस्तुत करता है। –कैम्फ (Kempf) 1919 के अनुसार
- व्यक्तित्व, व्यक्ति की समस्त जैविक जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रूझान, क्षुदाएँ, मूल प्रवृत्तियां तथा अर्जित विन्यासों एवं प्रवृत्तियों का समूह है।

  –मार्टन प्रिंस (Morton Prince) 1924 के अनुसार
- व्यक्ति के विकास की किसी अवस्था पर उसके सम्पूर्ण संगठन को व्यक्तित्व कहते हैं।

  –वारेन तथा करमाइकल के अनुसार
- ''व्यक्तित्व व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ अपूर्व व स्थायी समायोजन है।'' (Personality is an individuals consistant adjustment to his environment)

  –बोरिंग के अनुसार
- ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो कि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजनों को निर्धारित करता है।''
- व्यक्तित्व को प्रभावित करने में कुछ विशेष तत्वों का सहयोग रहता है, इन्हें व्यक्तित्व निर्धारक कहते हैं। इन तत्वों के प्रभाव से ही उनके अनुरूप व्यक्तित्व का विकास होता है।
- व्यक्तित्व के निर्धारकों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है- जैविक निर्धारक और पर्यावरणीय निर्धारक।
- वे सभी निर्धारक तत्व, जो जैविक रूप से व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, जैविक निधरिक कहलाते हैं। मुख्य रूप से ये चार माने गये हैं- 1. आनुवंशिकता 2. अंत:स्रावी ग्रन्थियां 3. शारीरिक गठन 4. शारीरिक रसायन।
- ये वे निर्धारक हैं, जो प्रकृति, समाज और संस्कृति को द्वारा व्यक्तित्व को निर्धारित करते हैं।

- व्यक्तित्व के निर्धारकों को समझा और इनके आधार पर व्यक्तित्व को विकसित करने का कौशल सीखा। आपने सीखा कि यदि निर्धारकों पर नियंत्रण कर लिया जाय, तो व्यक्ति के व्यक्तित्व में बदलाव लाया जा सकता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. व्यक्तित्व के विकास में जैविकीय और पर्यावरणीय निर्धारकों का प्रभाव पड़ता है। इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. जैवकीय निर्धारकों का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तार से वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. लैटिन
2. मुखौटा
3. विशेष गुण

7.2

1. जैविक
2. थाइमोसिन
3. इंसुलिन

8

मनोवैज्ञानिक समस्याएँ एवं यौगिक प्रबंधन

जैसा कि आपको पिछले यूनिटों में बताया जा चुका है कि मनोविज्ञान, मन का विज्ञान है और जब मन प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है तो सारे शरीर में रोमांच हो उठता है। वे पल खुशी के और आनन्द के होते हैं। इस समय में हमारे शरीर के सभी तंत्र एक बेहतर समन्वय के साथ कार्य कर रहे होते हैं। यदि कहीं जरा सी भी किसी अंग, तंत्र या शरीर में कोई व्याधि, दर्द या विकार आदि है, वह भी स्वत: ही ठीक होने लगता है। शरीर के अंदर हॉर्मोन्स का संतुलन भी ठीक बना रहता है। व्यक्तित्व का विकास होता हैं किन्तु जब मानसिक रूप से व्यथित होते हैं, तब हमारा स्वास्थ्य प्रभावित होने लगता है, यदि ये पीड़ा लगातार बनी रहती है तो इसके गम्भीर परिणाम उठाने पड़ते हैं। कभी-कभी रोगी पागल तक हो जाता है। इस यूनिट में हम इसी प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याओं एवं उनके यौगिक प्रबन्धन के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्या को समझ सकेंगे तथा प्रमुख मनोवैज्ञानिक समस्याओं का वर्णन कर सकेंगे;
- मानसिक तनाव व उत्पन्न होने के कारणों पर चर्चा कर सकेंगे तथा उसके लक्षणों को पहचान कर, यौगिक प्रबंधन कर सकेंगे;
- चिंता एवं अवसाद के कारणों का वर्णन कर सकेंगे तथा लक्षणों का उल्लेख करते हुए, यौगिक प्रबंधन को व्यवहार में ला सकेंगे।

8.1 स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ

यह देखा गया है कि जो व्यक्ति अपने जीवनकाल में किसी भी घटने वाली घटना अथवा भविष्य को लेकर चिंतित नहीं रहते, तनाव नहीं लेते बल्कि मस्त रहते हैं उनका स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है और बुढ़ापा भी शीघ्र नहीं आता। वे शारीरिक रूप से भी हृष्ट पुष्ट पाये जाते है। जबकि इसके विपरीत जो लोग जरा-जरा सी बात पर क्रोध करते हैं, चिंता करते हैं, भविष्य का अनहोनी का अनुमान लगाते रहते हैं, नकारात्मक सोच रखते हैं वे हमेशा अस्वस्थ बने रहते हैं, शारीरिक रूप से कमजोर और शीघ्र ही बूढ़े दिखने लगते हैं। उनकी मन की दशा विचलित रहती है और मन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

अब आप यह समझ ही गये होंगे कि स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, मन संबंधी वे विकार हैं जो व्यथित मन, भय, क्रोध, भविष्य में घटने वाली आशंका आदि के कारण उत्पन्न होती हैं।

आइये अब यह जाने कि कौन-कौन सी प्रमुख मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं? स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ निम्नांकित हो सकती हैं-

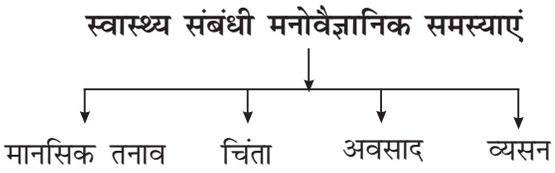

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को हम, चार प्रमुख मनोवैज्ञानिक समस्याओं में बांट सकते हैं-

1. मानसिक
2. चिंता
3. अवसाद
4. व्यसन

8.2 मानसिक तनाव, लक्षण, कारण और यौगिक प्रबंधन

स्वास्थ्य संबंधी बीमारियों में तनाव एक बहुत बड़ी समस्या है। वर्तमान भौतिक युग में शायद ही काई ऐसा व्यक्ति हो जो तनाव से मुक्त हो। अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ने और उन्हें पूरा करने के उद्देश्य से हम सदैव ही चिंतित और तनाव से ग्रसित रहते हैं। क्या आपने भी अनुभव किया है कि जब कोई लक्ष्य, समस्या या परिस्थिति हमारी क्षमता के नियंत्रण के बाहर होती है और स्वयं को असमर्थ पाते हैं, तो हमारे व्यवहार में स्वयं ही बदलाव आ जाता है और हम असामान्य हो जाते हैं। यह स्थिति तनाव कहलाती है। अर्थात् तनाव वह मानसिक स्थिति है, जो किसी लक्ष्य समस्या या परिस्थिति के नियंत्रण में न रहने के कारण उत्पन्न होती है और व्यक्ति असमान्य व्यवहार करने लगता है।

व्यक्ति के शरीर एवं मन को समय-समय पर मिलने वाली चिनौतियों, जिनका सामना करने में वह स्वयं असहाय एवं असमर्थ समझता है, तो तनाव उत्पन्न हो जाता है।

आइये तनाव पर मनोवैज्ञानिक विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी है उनमें से एक-दो विद्वानों की परिभाषा नीचे दी जा रही है।

बेरोन द्वारा साइकोलॉजी (1992) में दी गई परिभाषा इस प्रकार है-

1. **तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रतिक्रिया है जो हमलोग में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रियाओं के रूप में उत्पन्न होती है, जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।**

2. तनाव पर हेन्सशैली द्वारा द स्ट्रेस ऑफ लाइफ (1979) दी गई परिभाषा इस प्रकार है -

   ''तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार किये गये अवशिष्ट अनुक्रिया से होता है।''

   अपने शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति में परिस्थितियों पर नियंत्रण न कर पाने कारण उत्पन्न होता है।'

8.2.1 तनाव के प्रकार

तनाव मुख्यत: दो प्रकार का हो सकता है- सकारात्मक तनाव एवं नकारात्मक तनाव।

(क) **सकारात्मक तनाव :** सकारात्मक तनाव वह स्थिति है, जिसमें व्यक्ति तनावयुक्त घटना से चिंतित और परेशान नहीं होता अपितु उसका सामना करने के लिए उसे एक चुनौती के रूप में लेता है।

- सकारात्मक तनाव में व्यक्ति की सोच सकारात्मक बनी रहती है।
- वह अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं जागरूक होकर अपनी क्षमताओं के अनुसार उससे निपटता है।
- व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता सामान्य से अधिक हो जाती है।

(ख) **नकारात्मक तनाव :** नकारात्मक तनाव सकारात्मक तनाव की ठीक विपरीत स्थिति है जिसमें व्यक्ति तनाव युक्त परिस्थितियों से निपटने में अपने आपको असमर्थ और असहाय पाता है और वह चिंतित वह परेशान हो उठता है।

- नकारात्मक तनाव में व्यक्ति की सोच नकारात्मक बनी रहती है।
- वह स्वयं की उन परिस्थितियों से निपटने में असमर्थ और असहाय पाता है।
- व्यक्ति चिंता व शोक में डूब जाता है। कार्य करने की क्षमता और कम हो जाती है।

चित्र 8.1: तनाव

8.2.2 तनाव के कारण

इस विषय पर गहन अध्ययन करने पर मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रमुख कारक बताएं हैं–

1. जीवन की अप्रिय परिस्थितियां
2. सकारात्मक दृष्टिकोण की कमी
3. अत्याधिक प्रतिस्पर्धायुक्त जीवन
4. अपनी क्षमताओं का ठीक से मूल्यांकन न कर पाना
5. दूसरों पर निर्भर रहने की आदत बना लेना
6. स्वार्थ और अहंकार की भावना
7. ईश्वर में श्रद्धा व विश्वास की कमी
8. समय प्रबंधन का अभाव

8.2.3 तनाव के लक्षण

निम्नांकित सांकेतिक लक्षणों के आधार पर आप तनावग्रस्त व्यक्ति को पहचान सकते हैं–

शारीरिक लक्षण	मानसिक लक्षण
1. उच्च रक्तचाप होना	मानसिक संतुलन का अभाव
2. हृदय की गति को बढ़ना	भय
3. नाड़ी गति का बढ़ना	चिंता
4. श्वास की गति का बढ़ना	बेचैनी

5.	कब्ज अजीर्ण	चिड़चिड़ापन
6.	शारीरिक थकान	नकारात्मक भाव
7.	सिर दर्द और सम्पूर्ण शरीर में तनाव	आत्म विश्वास में कमी
8.	भूख न लगना	स्वयं को निर्बल महसूस करना
9.	वजन का कम होना	दूसरे के साथ संतोषजनक व्यवहार न कर पाना
10.	रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी	समायोन की कमी

उपर्युक्त लक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तनाव को नकारात्मक ढंग से लेने पर यह मन व शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है और फिर धीरे-धीरे यह चिंता व अवसाद मानसिक बीमारी में बदल जाते हैं।

8.2.4 तनाव का यौगिक प्रबंधन

प्रिय शिक्षार्थियों आज की भागदौड़ वाली व्यस्त जीवन शैली में तनाव एक विकट समस्या बन गया है, जिसे दूर करने के लिए यौगिक जीवनशैली ही उत्तम एवं स्थायी समाधान है। आइये तनाव को नियंत्रित करने के उपायों पर चर्चा करें-

1. स्वयं को परमात्मा का अभिन्न अंग समझें।
2. समय की मर्यादा का पालन करें, महत्व को समझें।
3. ईश्वर की अनुकूल व प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में प्रार्थना करें।
4. भविष्य की चिंता छोड़कर, वर्तमान में कर्त्तव्य पालन करें।
5. सकारात्मक दृष्टिकोण रेखें।
6. षट्कर्म का व्यावहारिक अभ्यास करें -

   (i) **जलनेति :** तनावमुक्त रखने के लिए काफी प्रभावी है। मस्तिष्क के न्यूरोन्स में सही ढ़ंग से नेट वकिंग होने लगती है। तमोगुण बढ़ाने वाले विजातीय द्रव्य निकल जाते हैं।

   (ii) **त्राटक :** नकारात्मक चिन्तन दूर होता है। मानसिक संतुलन बनता है।

   (iii) **कपालभाति :** नियमित अभ्यास से मन में दबी इच्छाएँ बाहर निकलती है, जिससे व्यक्ति स्वयं तनावमुक्त महसूस करता है।

   (iv) **आसन :** आसन के अभ्यास से शारीरिक स्थिरता बढ़ती है, जिससे मन की स्थिर एवं शांत होने लगाता है।

   (v) **प्राणायाम :** प्राण स्थिर होते हैं। ब्रह्मण्डीय ऊर्जा से सम्पर्क होने के कारण उसमें प्राण की मात्रा बढ़ने लगती है।

(vi) **धारणा :** नियमित रूप से किसी एक आदर्श लक्ष्य में स्थिर करें।

(vii) **प्रात:कालीन भ्रमण :** सूर्योदय से पूर्व प्रात:काल भ्रमण समाकलन ऊर्जा प्रदान करता है।

यूनिटगत प्रश्न 8.1

सत्य/असत्य बताइये–

1. तनाव में व्यक्ति परिस्थिति को नियंत्रित करने में असफल रहता है। ( )
2. तनाव, चिंता, अवसाद आदि स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ नहीं हैं। ( )
3. तनाव वह मानसिक स्थिति है, जो किसी लक्ष्य, समस्या या परिस्थिति के नियंत्रण में न रहने के कारण उत्पन्न होती है। ( )
4. सकारात्मक तनाव में व्यक्ति की सोच नकारात्मक बनी रहती है। ( )
5. कपालभाति के नियमित अभ्यास से मन में दबी हुई इच्छाएँ बाहर निकलने लगती है, जिससे व्यक्ति का तनाव कम होने लगता है। ( )

8.3 चिंता एवं अवसाद, लक्षण, कारण एवं यौगिक प्रबंधन

शिक्षार्थियों, इससे पहले हम मानसिक तनाव पर चर्चा कर चुके हैं, जिसमें आपको बताया गया कि मानसिक तनाव क्या है, इसके लक्षण क्या हैं? वे कारण कौन से हैं जिनकी वजह से तनाव उत्पन्न होता है और साथ ही यह भी समझाया गया कि मानसिक तनाव को दूर करने का सबसे बेहतर उपाय यौगिक प्रबंधन है। यदि मानसिक तनाव का कोई समाधान नहीं होता और यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है तो आगे चलकर यही तनाव चिन्ता में बदल जाता है और लगातार चिंतित बने रहने से अवसाद (डिप्रैशन) की स्थिति आ जाती है। अर्थात मानसिक तनाव से चिन्ता और चिन्ता ही अवसाद को जन्म देती है।

8.3.1 चिंता

चिंता एक दु:खद भावनात्मक स्थिति है, जिससे व्यक्ति एक अनजाने भय से ग्रसत रहता है और बेचैन रहता है। हम सभी अपने जीवन में भविष्य की योजनाएँ तैयार करते हैं। इन योजनाओं को पूरा करने व लक्ष्य तक पहुँचने में कुछ समस्याओं के कारण आशंकाएँ दिखती हैं, भय लगताा है, तो स्वत: ही मन में एक अनहोनी का विचार उठता है, जिसे चिंता कहते हैं।

चिंता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

'चिंता वस्तुत: व्यक्ति को भविष्य में होने वाली किसी भयानक समस्या की चेतावनी का संकेत है'।

कुछ लोग छोटी-छोटी समस्याओं को भी बहुत अधिक तनावपूर्ण ढंग में लेते हैं और चिंताग्रस्त हो जाते हैं। जबकि कुछ लोग बड़ी-बड़ी समस्याओं व कठिन परिस्थितियों को भी सहजता से लेते हैं ओर शान्त भाव व विवेकपूर्ण ढ़ंग से समस्याओं का समाधान करते हैं। यह स्पष्ट हो जाता है कि चिंताग्रस्त होना किसी भी व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

शिक्षार्थियों, चिंता से हमारे दैनिक जीवन के सारे क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि हमारी बुद्धि, काम करने की क्षमता, सृजनात्मक क्षमता इत्यादि सभी चिंता से प्रभावित होती है। कभी-कभी यह देखा गया है कि अत्यधिक चिंताग्रस्त व्यक्ति का व्यक्तित्व ही बुरी तरह प्रभावित हो जाता है।

आइये अब कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा चिंता की जो परिभाषाएँ दी हैं उनमें से एक-दो परिभाषाओं पर विचार करें -

1. फ्रायड (1924) ने चिंता को इस प्रकार परिभाषित किया है:

   ''चिंता एक भावनात्मक एवं दु:खद अवस्था होती है जो व्यक्ति के अहं को आलम्बित खतरे से सतर्क करती है, ताकि व्यक्ति वातावरण के साथ अनुकूली ढ़ंग से व्यवहार कर सके।''

2. अमेरिकन साइकेट्रिक ऐसोशिऐश्न 2005 एवं बारलोप 1988 के अनुसार, **चिंता एक ऐसी मनोदशा है, जिसकी पहचान चिन्हित नकारात्मक प्रभाव से तनाव के शारीरिक लक्षणों लाभवित्य के प्रति भय से की जाती है।''**

3. **''चिंता एवं अवसाद दोनों ही तनाव के क्रमिक सांवेगिक प्रभाव है। अति गम्भीर तनाव कालान्तर में चिंता में परिवर्तित हो जाता है और दीर्ध स्थायी चिंता, अवसाद का रूप ले लेती है।''** यह परिभाषा बारलोव, 1998 द्वारा दी गई है।

8.3.2 चिंता के लक्षण

शिक्षार्थियों आपने देखा होगा कि जब कोई व्यक्ति चिंताग्रस्त रहता है तो किस प्रकार वह स्वयं में खो जाता है या उसे मुख्मंडल पर लकीरें खिंच जाती है। वह बैचेन व अप्रसन्न दिखता है और कौन-कौन से लक्षण दिखाई देते हैं? इस पर निम्नांकित बिंदुओं के अंतर्गत विवेचना करते हैं-

1. दैहिक लक्षण
2. सांवेगिक लक्षण
3. संज्ञानात्मक लक्षण
4. व्यवहारात्मक लक्षण

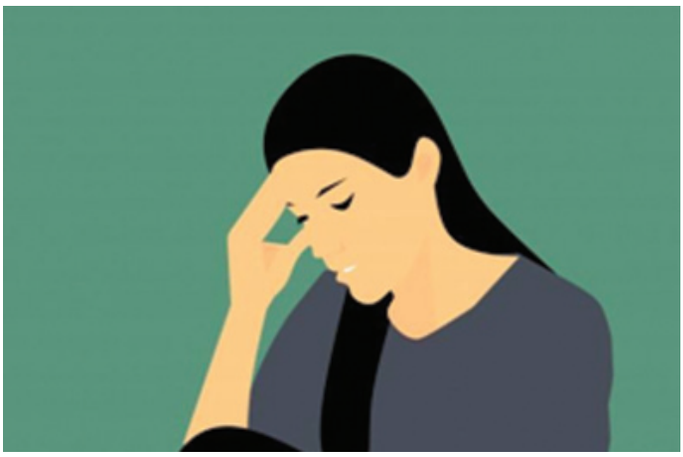

चित्र 8.2: चिंता के लक्षण सिर दर्द

दैहिक लक्षण

1. सिर दर्द होना
2. हृदयगति व नाड़ी गति का तेज होना
3. अत्यधिक शारीरिक थकान होना
4. शारीरिक मांसपेशियों में तनाव की स्थिति
5. उच्च रक्त चाप
6. पसीना आना आदि।

सांवेहिक लक्षण

1. बैचेनी एवं अप्रसन्नता
2. उदासी एवं निराशा के भाव
3. परेशान
4. चिड़चिड़ापन

संज्ञानात्मक लक्षण

1. नकारात्मक विचारों का आना
2. भविष्य के बारे में दु:खद कल्पनाएँ करना

व्यावहारात्मक लक्षण

1. दूसरे लोगों से अपने आपको छिपाने का प्रयास करना
2. निर्णय लेने में कठिनता
3. अंतर्मुखी होना

अब आप उन लोगों को पहचानने में समर्थ हो सकते हैं जो चिंता से ग्रसित होंगे।

8.3.3 चिंता से भिन्न चिंतन

शिक्षार्थियों अभी आपने चिंता के विषय में जाना। चिंता की तरह मिलता जुलता एक शब्द है चिन्तन ये चिंतन क्या है? आप सोच रहे होंगे दोनों शब्द मिलते-जुलते ही हैं। दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं होगा। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। ''चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है और ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल रूप है। सभी प्राणियों में सोचने, समझने एवं चिंतन करने की क्षमता होती है। किन्तु मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अन्य प्राणियों से बेहतर सोचने, समझने और चिंतन की क्षमता रखता है। इसी कारण मनुष्य को प्राणियों में विकसित प्राणी माना गया है। यहाँ एक बात जाननी आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य में सोचने समझने और चिंतन करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है।

चिंतन के अंतर्गत हम विचार को जांचते हैं, समालोचना करते हैं, तुलना करते हैं, प्रश्न-प्रतिप्रश्न करते हैं, विश्लेषण करते है और दोहराते हैं आदि। अत: चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जो हमारे मस्तिष्क में चलती रहती है। इसमें अनेक आंतरिक क्षमताओं जैसे- कल्पना, एकाग्रता, जागरूकता, समझ, स्मृति आदि का उपयोग होता रहता है।

मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ ने चिंतन को बाधाओं के निवारण का एक साधन बताया है। उनके अनुसार ''चिंतन बाधाओं के निवारण का एक साधन है।''

8.3.4 अवसाद

अवसाद पर चर्चा करने से पहले शिक्षार्थियों एक बार हम तनाव और चिंता पर विचार करें। जैसाकि आपको उक्त संबंधित उपविषयों के बारे में बताया गया है कि मानसिक तनाव लम्बे समय तक बने रहने पर, यह चिंता में बदल जाता है और लम्बे समय बनी रहने वाली चिंता अवसाद में बदल जाती है। अर्थात् किसी व्यक्ति में बहुत लम्बे समय तक बनी चिंता की स्थिति ''अवसाद'' का रूप धारण कर लेती है। यह मनोदशा विकृति है। अवसाद के दौरान उस व्यक्ति की स्थिति कैसी हो सकती है? आइये जानें-

- व्यक्ति का मन बहुत उदास रहता है।
- व्यक्ति अकेले रहना पसंद करता हैं।
- निष्क्रियता जन्म लेती है।

- आत्म हत्या करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
- अवसाद ग्रस्त व्यक्ति स्वयं को दीनहीन, निर्बल मानकर जिंदगी को कुछ नहीं समझता है।
- अपने भविष्य के विषय में नकारात्मक सोचते हैं।
- अपने दैनिक कार्यों में रूचि नहीं होती है।
- अपनी स्वेच्छा से कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं होती।
- पहल करने की प्रवृत्ति भी कम होती है।
- अकेले रहने की प्रवृत्ति।
- लोगों से मिलना जुलना नहीं।
- सिरदर्द बने रहना।
- कब्ज व अपच रहना।
- पूरे शरीर में दर्द एवं थकान रहना।
- भोजन में रूचि न होना।
- अनिद्रा यानि नींद न आना।

शिक्षार्थियों, उपर्युक्त स्थितियां अवसाद के लक्षण हैं। इन लक्षणों के आधार पर एक मनोदशा विकृत अवसादी व्यक्ति को पहचान सकते है।

8.3.5 चिंता एवं अवसाद के कारण

चिंता एवं अवसाद के भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। मुख्य रूप से इसका कारण ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियां हैं, जिनमें व्यक्ति स्वयं को असहाय एवं निर्बल महसूस करता है। स्थिति उसके नियंत्रण से बाहर होती है। इसके पीछे कई बार आनुवांशिक कारण भी होती हैं, जिसके लिए कुछ जींस जिम्मेदार होते हैं।

8.3.6 चिंता एवं अवसाद का यौगिक प्रबंधन

शिक्षार्थियों, आप योग कि विभिन्न यौगिक अभ्यास पढ़ चुके हैं। ये यौगिक अभ्यास आरोग्यता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ यह बताना भी बहुत आवश्यक होगा कि योग का चाहे कोई भी अभ्यास, जैसे-आसन, प्राणयाम, ध्यान, मंत्र जाप इत्यादि इन सभी का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार की त्रुटियों को दूर करके उसे स्वच्छ व शुद्ध बनाना है।

योग अभ्यास वास्तव में प्राण ऊर्जा के अवरोधों को हटाकर चित्त को निर्मल करते हैं जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति नकारात्मक विचारों को छोड़कर सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ता है। इस प्रकार धीरे-धीरे नियमित योगाभ्यास व योगमयी दिनचर्या से व्यक्ति की सभी समस्याओं और रोगों का निदान हो जाता है।

आईये अब चिंता एवं अवसाद मानसिक बीमारी से निपटने के लिए यौगिक प्रबंधन को जानें। हालांकि इन दोनों ही मानसिक समस्याओं के लिए यौगिक अभ्यास लगभग मिलते जुलते हैं। अब पहले चिंता के यौगिक प्रबंधन की चर्चा करते हैं और जानते है कि कौन-कौन से यौगिक अभ्यास रोगी को कराया जाना आवश्यक है?

चिंता का यौगिक प्रबंधन

षट्कर्म : षट्कर्म अर्थात् यौगिक शुद्धि क्रियाओं में जलनेति, कपालभाति और कुंजल

सूक्ष्म क्रियाएँ : श्वास-प्रश्वास की सजगता के साथ संधि संचालन के अभ्यास

आसन :

- ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन (5 से 10 बार)।
- सूर्यनमस्कार (3-5 बार)।
- पदमासन, सिद्धासन, स्वास्तिक आसन, गोमुखासन, शशांक आसन, वज्रासन, सर्वांगासन, हलासन, सिंहासन, हलासन, शवासन (15 से 20 मिनट)।

नोट : प्रत्येक आसन के बाद कुछ समय विश्राम आवश्यक है।

प्राणायाम

- नाड़ीशोधन
- भ्रामरी
- उज्जायी
- चन्द्रभेदी

शिथिलीकरण के अभ्यास

- योगनिद्रा
- मंत्र

  ओउम्, गायत्री या महामृत्युन्जय जप
- प्रातःकालीन भ्रमण
- सात्विक यौगिक आहार
- समय पालन
- स्वाध्याय
- सत्कर्म के लिए ईश्वरीय प्रार्थना

अवसाद के लिए यौगिक प्रबंधन

षटकर्म : शुद्धि क्रियाओं में जलनेति, कपालभांति, वमन

यौगिक सूक्ष्म अभ्यास : संधि संचालन के अभ्यास

आसन :

- ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटि चक्रासन।
- सूर्यनमस्कार।
- उत्तानपादासन, हलासन, विपरीत करिणी आसन सर्वांगासन, भुजंगासन, शशांकासन, सिंहासन, हलासन।

प्राणायाम

- नाड़ीशोधन
- भस्त्रिका
- भ्रामरी
- सूर्यभेदी

मंत्र जप

- महामुत्युजन्यज मंत्र
- ओउम
- प्रात:कालीन भ्रमण
- सात्विक भोजन
- कार्यों में व्यस्तता
- सकारात्मक कथाओं का पढ़ना व सुनना

सावधानियां

अवसाद के रोगियों को योगनिद्रा एवं ध्यान के अभ्यास नहीं कराने चाहिए। ऐसा कोई अभ्यास नहीं कराना चाहिए जिससे, रोगी अंतर्मुखी हो।

यूनिटगत प्रश्न 8.2

1. चिंता क्या है?
2. वुडवर्थ के अनुसार चिंतन की परिभाषा लिखिए।
3. अवसाद के कोई दो मुख्य लक्षण बताईये।

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि–

- स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, मन की समस्याएँ अथवा विकार हैं, जो व्यथित, मन, भय, क्रोध भविष्य में घटने वाली आशंका आदि के कारण उत्पन्न होती हैं।
- मानसिक तनाव चिंता, अवसाद और व्यसन मुख्य स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ अथवा विकार हैं, जिनके लक्षण पहचान कर यौगिक प्रबंधन को व्यवहार में लाया जा सकता है।
- तनाव वह मानसिक स्थिति है, जो किसी लक्ष्य समस्या या परिस्थिति के नियंत्रण में न रहने के कारण उत्पन्न होती है और व्यक्ति असमानय व्यवहार करने लगता है।
- तनाव मुख्यत: दो प्रकार का हो सकता है– सकारात्मक तनाव एवं नकारात्मक तनाव।
- आज की भागदौड़ वाली व्यस्त जीवन शैली में तनाव एक विकट समस्या बन गया है, जिसे दूर करने के लिए यौगिक जीवनशैली ही उत्तम एवं स्थायी समाधान है।
- 'चिंता वस्तुत: व्यक्ति को भविष्य में होने वाली किसी भयानक समस्या की चेतावनी का संकेत है'।
- चिंता से हमारे दैनिक जीवन के सारे क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि हमारी बुद्धि, काम करने की क्षमता, सृजनात्मक क्षमता इत्यादि सभी चिंता से प्रभावित होती है। कभी–कभी यह देखा गया है कि अत्यधिक चिंताग्रस्त व्यक्ति का व्यक्तित्व ही बुरी तरह प्रभावित हो जाता है।
- जब कोई व्यक्ति चिंताग्रस्त रहता है तो किस प्रकार वह स्वयं में खो जाता है या उसे मुखमंडल पर लकीरें खिंच जाती है। वह बैचेन व अप्रसन्न दिखता है।
- ''चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है और ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल रूप है। सभी प्राणियों में सोचने, समझने एवं चिंतन करने की क्षमता होती है। किन्तु मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अन्य प्राणियों से बेहतर सोचने, समझने और चिंतन की क्षमता रखता है। इसी कारण मनुष्य को प्राणियों में विकसित प्राणी माना गया है।

- मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ ने चिंतन को बाधाओं के निवारण का एक साधन बताया है। उनके अनुसार ''चिंतन बाधाओं के निवारण का एक साधन है।''
- किसी व्यक्ति में बहुत लम्बे समय तक बनी चिंता की स्थिति ''अवसाद'' का रूप धारण कर लेती है। यह मनोदशा विकृति है।
- चिंता एवं अवसाद के भिन्न-भिन्न कारण हो सकते हैं। मुख्य रूप से इसका कारण ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियां हैं, जिनमें व्यक्ति स्वयं को असहाय एवं निर्बल महसूस करता है। स्थिति उसके नियंत्रण से बाहर होती है। इसके पीछे कई बार आनुवांशिक कारण भी होती हैं, जिसके लिए कुछ जींस जिम्मेदार होते हैं।
- यौगिक अभ्यास आरोग्यता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- योग का चाहे कोई भी अभ्यास, जैसे-आसन, प्राणयाम, ध्यान, मंत्र जाप इत्यादि इन सभी का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार की त्रुटियों को दूर करके उसे स्वच्छ व शुद्ध बनाना है।
- योग अभ्यास वास्तव में प्राण ऊर्जा के अवरोधों को हटाकर चित्त को निर्मल करते हैं जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति नकारात्मक विचारों को छोड़कर सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ता है। इस प्रकार धीरे-धीरे नियमित योगाभ्यास व योगमयी दिनचर्या से व्यक्ति की सभी समस्याओं और रोगों का निदान हो जाता है।
- अवसाद के रोगियों को योगनिद्रा एवं ध्यान के अभ्यास नहीं कराने चाहिए। ऐसा कोई अभ्यास नहीं कराना चाहिए जिससे रोगी अंतर्मुखी हो।

यूनिटांत प्रश्न

1. स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्या से आप क्या समझते है? सभी मुख्य स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
2. मानसिक तनाव पर मनोवैज्ञानिक बेरोन द्वारा दी गई परिभाषा लिखिए और मानसिक लक्षणों को वर्णन करते हुए, इसके यौगिक प्रबंधन का उल्लेख कीजिए।
3. चिंता और चिंतन में अंतर बताते हुए, चिंता के कारण, लक्षण और इसके यौगिक प्रबंधन को समझाइये।
4. अवसाद से आप क्या समझते हैं? अवसाद के लक्षण बताते हुए, इसके यौगिक प्रबंधन पर प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य

8.2

1. चिंता वस्तुतः व्यक्ति को भविष्य में होने वाली किसी भयानक समस्या की चेतावनी का संकेत है।

2. वुडवर्थ के अनुसार, चिंतन बाधाओं के निवारण का एक साधन है।

3. (i) व्यक्ति अकेले रहना पसंद करता है।

   (ii) आत्म हत्या करने की प्रवृति पायी जाती है।

9

व्यसन और मादक पदार्थों का कुप्रभाव

शिक्षार्थियों, व्यसन अर्थात् बुरी आदत, आज व्यसन एक बहुत बड़ी सामाजिक समस्या है, जो प्रमुख रोग के रूप में हमारे सामने आ रही है। बहुत से किशोर एवं युवक इस रोग की चपेट में आ रहे हैं। भौतिक शान-शौकत, कुसंगति और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण, लोग मादक द्रव्यों एवं औषधियों को लेना शुरू कर देते हैं। हालांकि ये द्रव्य कुछ समय के लिए तो व्यक्ति के चेहरे पर प्रसन्नता और आराम के भाव दिखत हैं। लेकिन अंत में उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ता है। इस यूनिट में हम, व्यसन, प्रकृति, लक्षण, कारक और मादक पदार्थों के कुप्रभाव की चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- व्यसन के आश्य को समझाते हुए, इसकी प्रकृति, लक्षण और कारणों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- मादक पदार्थों के दुष्प्रभावों का वर्णन कर सकेंगें;
- व्यसन मुक्ति के लिए, यौगिक प्रबंधन को व्यवहार में ला सकेंगे।

9.1 व्यसन

व्यसन एक ऐसी आसक्ति (addiction) है, जिसमें व्यक्ति दुष्परिणामों को जानते हुए भी मादक द्रव्यों जैसे ड्रग्स, एल्कोहल, भांग, गांजा जैसे नशीले पदार्थ का सेवन करने के लिए बाध्य हो जाता है। इन मादक द्रव्यों के बिना सेवन के वह रह नहीं सकता। आपने समाज में देखा ही होगा, कि आजकल लोगों में इस प्रकार की प्रवृति बढ़ती जा रही है।

व्यसन के लिए मादक द्रव्यों में बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू-गुटका, बीअर, शराब एल्कोहल, भांग, चरस, गांजा, हीरोइन ब्राउन सुगर आदि सम्मिलित हैं। यहाँ ध्यान रखने की एक और महत्वपूर्ण बात है कि, व्यसन मात्र उक्त पारम्परिक पदार्थों के सेवन तक ही सीमित नहीं है। यह चाय, कॉफी, चॉकलेट, यौनक्रिया, जुआ आदि का भी हो सकता है, जिससे व्यक्ति की आध्यात्मिक जीवन की क्षमता का भी ह्रास हो जाता है।

चित्र 9.1: व्यसन में फंसा व्यक्ति

9.1.1 व्यसन से आशय

डाइग्नॉस्टिक एण्ड स्टैटिष्टिकल मैनुअल-IV के अनुसार मनोविज्ञान की भाषा में व्यसन एक द्रव्य संबंधी विकृति है जिसमें व्यक्ति विभिन्न प्रकार के रासायनिक द्रव्यों का सेवन करने लगता है और धीरे-धीरे इनके सेवन का आदी होता जाता है।

शिक्षार्थियों, इस प्रकार व्यक्ति न चाहते हुए भी मादक द्रव्यों के सेवन हेतु विवश हो जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक रोग है। इसे द्रव्य संबंधी रोग भी कहा जाता है। द्रव्य संबंधी रोग को DSM-IV के अनुसार दो शब्दों के साथ स्पष्ट किया जा सकता है :

द्रव्य संबंधी रोग

द्रव्य दुरूपयोग — द्रव्य निर्भरता

1. **द्रव्य दुरूपयोग :** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति मादक द्रव्यों का लगातार सेवन करता है और पारिवारिक, व्यावसायिक तथा अन्य दायित्वों को पूरा करने में असफल हो तो जाता है। यह स्थिति बहुत गंभीर नहीं है। इसमें व्यक्ति को नियंत्रित किया जा सकता है।

2. **द्रव्य निर्भरता :** इसमें व्यक्ति मादक द्रव्यों पर निर्भर होता जाता है। उसे ऐसा महसूस होता है कि उस मादक द्रव्य के बिना वह जी नहीं सकता। वह इस तरह निर्भर हो जाता है कि, यदि उसे वह मादक द्रव्य न मिले तो वह पागलों जैसा व्यवहार करने लगता है और मिल जाए तो उसमें एक अजीव सी स्फूर्ति, शक्ति आ जाती है। यह दो प्रकार की हो सकती है– मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक।

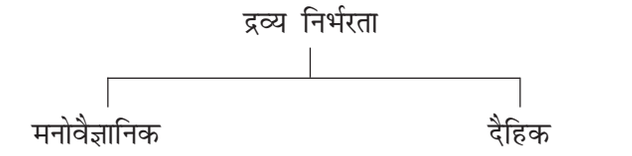

चित्र 9.2: द्रव्य निर्भरता

3. **मनोवैज्ञानिक द्रव्य निर्भरता** में व्यक्ति का मन हमेशा उस द्रव्य को किसी प्रकार प्राप्त करने में लगा रहता है। उसकी संगति भी इसी प्रकार के लोगों से हो जाती है।

4. **दैहिक निर्भरता :** मादक द्रव्यों के सेवन की मनोवैज्ञानिक निर्भरता, दैहिक निर्भरता को जन्म देती है। धीरे–धीरे व्यक्ति के शरीर को उन द्रव्यों पर निर्भर रहने की आदत पड़ जाती हैं। उसके बिना शरीर में बैचेनी, घबराहट होने लगती है और कई बार तो व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है।

चित्र 9.3: दैहिक निर्भरता

9.1.2 संलक्षण

शिक्षार्थियों, जब व्यक्ति लगातार एक लम्बे समय तक, अत्याधिक मात्रा में बार-बार मादक द्रव्य का सेवन करता है तो उसमें दो प्रकार के संलक्षण उत्पन्न हो जाते हैं- सहनशीलता एवं प्रत्याहार।

सहनशीलता : सहनशीलता से आशय एक शारीरिक प्रक्रिया से है जिसमें-

- व्यक्ति उस मादक द्रव्य के लेने का आदी हो चुका होता है।
- इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, उसे उस द्रव्य का मात्रा की सेवन बढ़ाना पड़ता है।

प्रत्याहार संलक्षण : जब व्यक्ति व्यसनी द्रव्य का सेवन नहीं करता, तो;

- उसमें शरीर और मन में कई प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो जाती है।
- मन अशांत और बेचैन रहता है।
- शरीर में दर्द, कम्पन होने लगते हैं।
- कई बार रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

शिक्षार्थियों आज समाज में व्यसन बढ़ता ही जा रहा है, जिससे व्यक्तियों में लगातार अपराध की प्रवृति भी बढ़ती जा रही है। आइये जानें कि, व्यसन के मुख्य कारण क्या-क्या हैं?

9.1.3 व्यसन के कारण

व्यसन के निम्न कारण हो सकते हैं-

- **आनुवंशिक कारण :** व्यक्ति के माता-पिता, परिवार या पीढ़ी में व्यसन की आदत है या रही है तो आनुवांशिकता के आधार पर उस व्यक्ति में भी व्यसन से ग्रसित होने की संभावना हो सकती है।
- **समुचित देखभाल न होने के कारण :** यदि किसी बच्चे को समुचित देखभाल, माता-पिता व परिवार का पर्याप्त प्यार व स्नेह न मिलें तो व्यक्ति में व्यसन का जन्म हो जाता है।
- **कुसंग के कारण :** जब व्यक्ति को कुसंग का साथ मिल जाता है, तो भी देखा गया है कि व्यक्ति में व्यसन उत्पन्न हो जाता है।
- **स्वयं की गलती अथवा किसी के आग्रह के कारण :** व्यक्ति, जब कभी गलती से या किसी आग्रह पर मादक द्रव्य लेने को प्रेरित हो जाता है और उसे इसके प्रयोग से उत्साह, स्फूर्ति, प्रसन्नता का अहसास होने लगता है वह स्वयं को हल्का एवं तरोताजा महसूस करते हैं। तब भी व्यक्ति व्यसन से ग्रसित हो जाता है। यह व्यवहार परक विचारधारा है जिसका समर्थन मनोवैज्ञानिक क्लाक, जोषेफ्ष, स्टीली, सेचिटी आदि के द्वारा किया गया है।

चित्र 9.4: कुसंग

- **सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा के कारण :** सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा भी इसका एक मुख्य कारण है। जब व्यक्ति संबंधित परिवारों व समाज के तनावयुक्त माहौल को देखता है, तो उसमें व्यसन की विकृति आ ही जाती है और सांस्कृतिक समारोहों, कार्यक्रमों में व्यसनी द्रव्यों का सेवन शान समझा जाता है और फिर धीरे–धीरे व्यक्ति व्यसन की ओर बढ़ जाता है।

ये उपर्युक्त ऐसे मुख्य कारण हैं जिनके कारण एक सुसभ्य व्यक्ति, इन परिस्थितियों के तहत व्यसनी बन सकता है और यदि आप विचार करें तो, ऐसे अनेक उदाहरण आपके आसपास समाज में देखने को मिल जाएंगे, जिनकी आप केस स्टडी कर सकते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 9.1

सत्य/असत्य बताईए–

1. व्यसन एक द्रव्य संबंधी विकृति है। ( )
2. द्रव्य निर्भरता के अंतर्गत व्यक्ति, मादक द्रव्यों पर निर्भर हो जाता है। ( )
3. व्यसन के कारण व्यक्ति सदैव स्वस्थ रहता है। ( )
4. मादक पदार्थों का हमारे शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। ( )

9.2 मादक पदार्थों का दुष्प्रभाव

अब तक व्यसन पर, जो चर्चा आपके साथ हुई है, उससे आप यह तो अवश्य जान ही गये होंगे कि, व्यसन एक बुरी आदत है, जो समग्र स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करती है। एक व्यसनी

यह जानते हुए भी कि, मादक द्रव्यों का सेवन उसके लिए हानिकारक है, परिवार व समाज उसे तिरस्कृत करता है, फिर भी वह, इनके सेवन के लिए विवश रहता है। एक व्यसनी पर मादक द्रव्यों का क्या दुष्प्रभाव पड़ता है, आइये जानें-

(i) **शारीरिक समस्याऐं एवं रोग**

- व्यसनी के शरीर में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।
- कभी-कभी भयंकर रोग जैसे- कैंसर, अल्सर, हृदय रोग, फैफड़ों रोग, किडनी संबंधी रोग, पाचन संस्थान और मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(ii) **मानसिक समस्याएँ**

- व्यसनी व्यक्ति मानसिक रूप से तनाव में, बेचैन, अशांत और अन्जाने भय से व्याकुल रहते हैं।
- आत्म सम्मान, आत्म विश्वास और साहस की कमी पायी जाती है।
- अपने कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।

(iii) **भावनात्मक असंतुष्टि**

- व्यसनी मादक द्रव्य लेने के पश्चात अत्यधिक राहत महसूस करता है किन्तु जैसे ही इसका प्रभाव समाप्त होता है, वैसे ही वह व्यक्ति कुण्ठा एवं घुटन का अनुभव करता है।
- सदैव असंतुष्ट रहता है।

(iv) **विवेक का नाश**

- व्यसनी व्यक्ति के सोचने समझने की क्षमता, क्षीण हो जाती है।
- वह न विवेकपूर्ण विचार करता है और न ही विवेकपूर्ण व्यवहार। इसी कारण विवेकरहित कार्यों के दुष्परिणाम उसे भुगतने पड़ते हैं।

9.3 व्यसन मुक्ति के लिए यौगिक प्रबंधन

शिक्षार्थियों, व्यसन दूर करने के लिए कई मनोवैज्ञानिक विधियां हैं किन्तु इनमें कुछ न कुछ अपनी कमी के कारण प्रभावी परिणाम नहीं आ पाते हैं। अन्य रोगों की तरह व्यसन मुक्ति के लिए आजकल यौगिक जीवन शैली को अपनाया जा रहा है।

आपको यह जानकर निश्चित रूप से आश्चर्य होगा कि यौगिक प्रबन्धन से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। आईये इस समस्या के समाधान हेतु यौगिक प्रबंधन पर विचार करें-

(i) **सकारात्मक दृष्टिकोण**

रोगी भावनाओं को समझें और सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करें।

(ii) **विचारों एवं भावनाओं को व्यक्त कराना**

व्यक्ति के विचार, भावना एवं इच्छा, नैतिकता के दायरे में व्यक्त कराएँ।

(iii) **स्वाध्याय**

रोगी को स्वयं का अध्ययन करने, अच्छे विचारों व लोगों की संगति में रहने को निर्देशित करें।

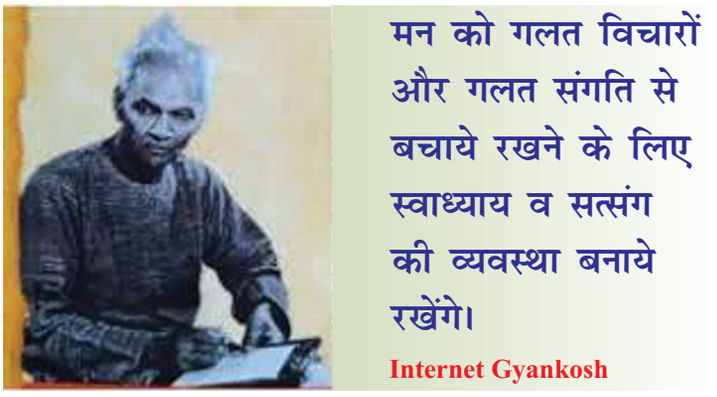

चित्र 9.5: स्वाध्याय

(iv) **जीवन की महत्वता**

जीवन के महत्वता को समझाएँ। व्यसनी व्यक्ति को समझाना चाहिए कि मानव जन्म बड़ी मुश्किल से मिलता है। इसे यूं ही बर्बाद नहीं करना चाहिए।

(v) **आध्यात्म**

ईश्वर की महत्वता बताएँ। उसमें श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न करें। उसे बताएँ कि जीवन का सर्वस्व, हमारे ईश्वर ही है। इस तरह भजन संगति, सत्संग ईश्वरीय कथाएँ आदि में उसे रमाने का प्रयास करना चाहिए।

यह सर्वदा विदित है कि महाकवि कालीदास, सूरदास, तुलसीदास, महर्षि वाल्मीक, मीराबाई, इन सबका जीवन इनके जीवनकाल में, पहले कुछ और था और बाद में, वे महान व्यक्तित्व को प्राप्त हुए।

(vi) **यौगिक अभ्यास**

आसन और प्राणायाम के अभ्यास शारीरिक दृढ़ता, मानसिक स्थिरता एवं संतुलन प्रदान करते है। छोटे-छोटे यौगिक अभ्यास को निश्चित क्रम कराना शुरू करना चाहिए और रूचि को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

यौगिक अभ्यास से व्यक्ति में

- सकारात्मक भाव बढ़ते हैं।
- मन में साहस बढ़ता है।
- काम करने इच्छा शक्ति उत्पन्न होती है।
- विश्वास बढ़ता है।
- धीरे-धीरे वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है।

चित्र 9.6: यौगिक अभ्यास

यूनिटगत प्रश्न 9.2

सत्य/असत्य बताईयए-

1. व्यसन मुक्ति के लिए, सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए। ( )
2. आध्यात्म काव निर्देशन व्यसन मुक्ति उपाय नहीं है। ( )
3. यौगिक अभ्यास से सकारात्मक भाव बढ़ते हैं। ( )
4. लगातार यौगिक अभ्यास करते रहने से मन में साहस उत्पन्न होता है, विश्वास बढ़ता है और वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगता है। ( )

आपने क्या सीखा

इस यूनिट में आपने सीखा कि :

- व्यसन अर्थात बुरी आदत, आज व्यसन एक बहुत बड़ी सामाजिक समस्या है, जो प्रमुख रोग के रूप में हमारे सामने आ रही है।
- व्यसन एक ऐसी आसक्ति (addiction) है, जिसमें व्यक्ति दुष्परिणामों को जानते हुए भी मादक द्रव्यों जैसे ड्रग्स, एल्कोहल, भांग, गांजा जैसे नशीले पदार्थ का सेवन करने के लिए बाध्य हो जाता है। इन मादक द्रव्यों के बिना सेवन के वह रह नहीं सकतां
- व्यसन के लिए मादक द्रव्यों में बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू-गुटका, बीअर, शराब एल्कोहल, भांग, चरस, गांजा, हीरोइन ब्राउन सुगर आदि सम्मिलित हैं। यहाँ ध्यान रखने की एक और महत्वपूर्ण बात है कि व्यसन मात्र उक्त पारम्परिक पदार्थों के सेवन तक ही सीमित नहीं है। यह चाय, कॉफी, चॉकलेट, यौनक्रिया, जुआ आदि का भी हो सकता है जिससे व्यक्ति की आध्यात्मिक जीव की क्षमता का भी ह्रास हो जाता है।
- इस प्रकार व्यक्ति न चाहते हुए भी मादक द्रव्यों के सेवन हेतु विवश हो जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक रोग है। इसे द्रव्य संबंधी रोग भी कहा जाता है।
- व्यसन के कई मुख्य कारण हैं जैसे - व्यसन एक बुरी आदत है, जो समग्र स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित करती है। एक व्यसनी यह जानते हुए भी कि, मादक द्रव्यों का सेवन उसके लिए हानिकारक है, परिवार व समाज उसे तिरस्कृत करता है, फिर भी वह, इनके सेवन के लिए विवश रहता है।
- यौगिक प्रबन्धन से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

- यौगिक अभ्यास से व्यक्ति में
  - सकारात्मक भाव बढ़ते हैं।
  - मन में साहस बढ़ता है।
  - काम करने इच्छा शक्ति उत्पन्न होती है।
  - विश्वास बढ़ता है।
  - धीरे-धीरे वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है।

यूनिटांत प्रश्न

1. व्यसन का अर्थ बताते हुए, इसकी प्रकृति, लक्षण एवं कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. मादक पदार्थों का स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है। इस तथ्य की विवेचना कीजिए।
3. क्या व्यसन एक बहुत बड़ी सामाजिक समस्या है? व्यसन मुक्ति के लिए आप क्या कदम उठाऐंगे?
4. मादक पदार्थों के दुष्प्रभावों का वर्णन करते हुए, व्यसन मुक्ति के लिए, यौगिक प्रबंधन पर प्रकाश डालिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. असत्य

9.2

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

विषय-8: स्वास्थ्य प्रबंधन एवं योग चिकित्सा

10. यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन
11. तनाव (स्ट्रैस) में यौगिक प्रबन्धन
12. श्वसन एवं हृदय (कॉर्डियोवेस्कुलर) सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा
13. पाचन एवं मूत्र-जनन सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा
14. मस्कुलो-स्केलेटल संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा
15. तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा
16. जीवनशैली सम्बन्धित रोग एवं उनकी यौगिक चिकित्सा

10

यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने यौगिक फिजियोलॉजी को जाना और आपने यह ज्ञान प्राप्त किया कि मानव शरीर में ऊर्जा के पाँच आवरण कोश के रुप में विद्यमान रहते हैं। इन पाँच कोशों के सन्तुलित रहने पर विभिन्न शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सुव्यवस्थित रुप से होती रहती हैं और शरीर एवं मन स्वस्थ बना रहता है। इसके साथ-साथ आने शरीर में स्थित नाड़ियों और ऊर्जा के केन्द्रों अर्थात् चक्रों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त किया। अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार शरीर में ऊर्जा के प्रवाह को सन्तुलित बनाया जा सकता है और किस प्रकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाते हुए समग्र स्वास्थ्य की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। विशेष रुप से मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं जैसे बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में जब शरीर में ऊर्जा का स्तर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहता है और अलग-अलग प्रकार की समस्याओं और चुनौतियों का सामना मनुष्य को करना होता है। जीवन की इन अलग-अलग अवस्थाओं में किस प्रकार यौगिक प्रबन्धन को अपनाकर मनुष्य अपने समग्र स्वास्थ्य को उन्नत बना सकता है।

वर्तमान काल में मनुष्य की अव्यवस्थित दिनचर्या, विकृत आहार-विहार, बढ़ता वातावरणीय प्रदूषण, विलासितापूर्ण जीवनशैली और मानसिक तनाव आदि ऐसे प्रमुख कारक हैं, जिन्होनें वर्तमान समय में मनुष्य के स्वस्थ्य के स्तर पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डाला है। इन कारकों के परिणाम स्वरुप मनुष्य की शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का स्तर असन्तुलित हो रहा है और समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं हो पाती है। प्रस्तुत यूनिट के अन्तर्गत मनुष्य के समग्र स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में यौगिक प्रबन्धन की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत यूनिट में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार यौगिक प्रबन्धन को अपनाकर जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में समग्र स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं। इसके साथ साथ विभिन्न क्षेत्र जैसे सुरक्षाबल, पर्यटन और सामान्य जन भी अपनी फिटनेस को यौगिक प्रबन्धन के माध्यम से उन्नत अवस्था में बनाए रख सकते हैं।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन का सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेगें;
- बाल्यावस्था का यौगिक प्रबन्धन जान सकेंगे;
- किशोरावस्था का यौगिक प्रबन्धन की व्याख्या करने में सक्षम हो सकेंगे;
- युवावस्था का यौगिक प्रबन्धन की विवेचना करने में सक्षम हो सकेंगे;
- वृद्धावस्था का यौगिक प्रबन्धन समझ सकेंगे;
- खिलाड़ियों के जीवन का यौगिक प्रबन्धन जान पाएंगे;
- सुरक्षाबलों का यौगिक प्रबन्धन जान पाएंगे;
- सामान्य शारीरिक फिटनेस का यौगिक प्रबन्धन जान पाएंगें;
- पर्यटकों का यौगिक प्रबन्धन जान पाएंगे।

10.1 यौगिक स्वास्थ्य प्रबंधन का सामान्य परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों, यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन में तीन शब्दों को लिया गया है। योग, स्वास्थ्य और प्रबंन्धन के मिलने से इस शब्द की उत्पत्ति होती है। इन तीनों शब्दों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि योग के द्वारा स्वास्थ्य का प्रबन्धन करना ही 'यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन' कहलाता है। योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'युज' धातु से हुई है। जिसका अर्थ होता है मिलना या जुड़ना। यहाँ पर आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के अर्थ में योग शब्द को लिया गया है। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के लिए योगाभ्यास का उपदेश किया गया है। इस हेतु महर्षि पतंजलि के द्वारा अष्टांग योग का उपदेश किया गया है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक योग के आठ अंगों का उपदेश किया जाता है। इसी प्रकार हठयोग के ग्रन्थों में योग के सप्त साधनों का वर्णन किया गया है। इन सप्त साधनों में षट्कर्म, आसन, मुद्रा-बन्ध, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है। इन योगांगों का पालन करने से शरीर, मन और आत्मा में निर्मलता उत्पन्न होने के साथ समन्वय स्थापित होता है और आत्मसाक्षात्कार होते हुए साधक को मुक्ति की अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्था पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं-

तदा दश्भटु स्वरुपेवस्थानम्॥

(पा. योगसूत्र 1/3)

अर्थात् चित्तवृति निरोध की इस अवस्था में दश्भटा (आत्मा) अपने स्वरुप में स्थित हो जाता है।

उपरोक्त यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक और निरन्तर अभ्यास करने से आत्मा पूर्ण रुप से निर्मल होकर परमात्मा के साथ आनन्दमय हो जाती है। इसके साथ-साथ उपरोक्त योगाभ्यास मनुष्य को समग्र रुप से स्वस्थ बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। नियमित योगाभ्यास करने से मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। स्वास्थ्य शब्द की उत्पत्ति स्व और स्थ के मिलने से होती है। स्व का अर्थ स्वयं अर्थात् शरीर, मन और आत्मा से होता है और स्थ का अर्थ होता है-स्थित होना। अर्थात् स्वास्थ्य एक सकारात्मक अवस्था है जिसमें शरीर, मन और आत्मा अपने-अपने स्वरुप में स्थित होते हैं। स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए आयुर्वेद शास्त्र के वि)ान आचार्य सुश्रुत कहते हैं-

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभीधियते॥

(सु.सं. 15/41)

अर्थात् जिसके त्रिदोष सम अवस्था में हैं, जिसके शरीर में अग्नियों का व्यापार सम है, जिसके शरीर में धातुएँ सम मात्रा में उपस्थित हैं तथा शरीर में मलों की सम स्थिति है। इसके साथ साथ जिसकी इन्द्रियां, मन व आत्मा में प्रसन्नता के भाव हैं, वही व्यक्ति स्वस्थ है।

इसी प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य द्वारा स्वास्थ्य की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

Health is a state of complete Physical , Mental and Social well being and not merely the absence of disease or infirmity.

अर्थात् केवल रोगों की अनुपस्थिति मात्र को ही स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता है अपितु स्वास्थ्य तो वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर पूर्ण रुप से स्वस्थ हो।

इस प्रकार स्वास्थ्य का अर्थ केवल शरीर का रोग मुक्त होना ही नहीं होता है अपितु शरीर के साथ मन का प्रसन्न और इन्द्रियों का क्रियाशील होना और इसके साथ-साथ आत्मा का सकारात्मक ऊर्जा (आत्मबल) से परिपूर्ण होना ही स्वास्थ्य कहलाता है। इसे ही समग्र स्वास्थ्य (Holistic Health) की संज्ञा दी जाती है।

प्रबन्धन का अर्थ होता है सुव्यवस्थित एवं योजनाबद्ध रुप से समुचित उपयोग करना। वास्तव में प्रबन्धन शब्द का प्रयोग अधिकांशतया व्यवसाय के क्षेत्र में किया जाता है। जहाँ पर एक व्यवसायी अपने पास उपलब्ध संसाधनों का योजनाबद्ध और अनुशासित रुप से प्रयोग करता हुआ अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने का प्रयास करता है। प्रबन्धन की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि इसमें बाहर से कुछ नहीं लिया जाता है अपितु जो संसाधन, शक्ति या उपकरण उस समय पर उपलब्ध होते हैं, उनका ही सही योजनाबद्ध रुप से प्रयोग किया जाता है और उनसे ही पहले की तुलना में अधिक सकारात्मक और अच्छे परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। इस व्यवस्थाक्रम को प्रबन्धन (Management) की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन उसे स्पष्ट होता है कि यौगिक क्रियाओं का सुनियोजित ढंग से अभ्यास करते हुए शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ, सक्रिय, ऊर्जावान एवं निरोगी बनाने की कला ही यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन कहलाता है। जैसा कि हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य के शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इन शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के परिणामस्वरुप एक शिशु पहले बालक और फिर युवा का रुप ग्रहण कर लेता है। युवावस्था के उपरान्त मध्यावस्था और इसके उपरान्त प्रौढ़ावस्था के उपरान्त वृद्धावस्था को प्राप्त करना प्रत्येक शरीर का धर्म होता है। जीवन की इन अवस्थाओं से प्रत्येक मनुष्य गुजरता है और जीवन की इन अलग-अलग अवस्थाओं में स्वास्थ्य को उन्नत बनाए रखना प्रत्येक मनुष्य के समक्ष बहुत महत्वपूर्ण चुनौति होती है। इस चुनौति का सामना यौगिक प्रबन्धन के द्वारा किया जा सकता है। अत: अब जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन पर विचार करते हैं।

10.2 बाल्यावस्था का यौगिक प्रबन्धन

यह मानव जीवन की सबसे मधुर और कोमल अवस्था होती है जिसका समय 6 से 12 वर्ष की आयु होती है। इस अवस्था में मानव शैशवास्था से बाहर आकर संसार से आत्मसात करता है। जीवन की अवस्था की तुलना मनौज्ञानिक युंग उस उगते हुए सूर्य के साथ करते हैं जिसमें चमकीलापन का स्तर कम किन्तु ऊर्जा (क्षमता) बहुत अधिक होती है। ठीक इसी प्रकार बाल्यावस्था ऊर्जाओं का वह संगठित रुप होता है जिसे सही दिशा देने की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि इस अवस्था में सही और गलत का निर्णय करने की विवेक शक्ति अधिक विकसित नहीं होती है। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ एवं समस्याएँ निम्न होती हैं-

चित्र 10.1: बालक को प्रबल जिज्ञासा की प्रवृति होती है

10.2.1 बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य में बाल्यावस्था का जीवन निम्न विशेषताओं और समस्याओं से युक्त होता है–

1. बाल्यावस्था शारीरिक क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं के सर्वाधिक विकास की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक का सर्वाधिक विकास होता है जिसमें शारीरिक क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं का समावेश रहता है।
2. इस अवस्था में बालक वास्तविक संसार से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इससे पूर्व वह केवल अपने परिवार तक सिमित होता है किन्तु इस अवस्था में वह परिवार के साथ–साथ बहारी संसार से भी अपना सम्बन्ध स्थापित करने लगाता है।
3. इस अवस्था में बालक की प्रबल जिज्ञासाओं की प्रवृत्ति होती है। बालक के मन में नित्य और प्रतिक्षण नये–नये प्रश्न उत्पन्न होते रहते हैं और वह उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है।
4. इस अवस्था में बालक के अन्दर आत्मनिर्भरता की भावना प्रबल होने लगती है। यद्यपि इस अवस्था में बालक पूर्णतया अनुभवहीन होता है परन्तु फिर भी वह प्रत्येक कार्य को स्वत्रंतरुप से करने का प्रयास करता है।
5. इस अवस्था में बालक में रचनात्मक कार्यों को करने की रुचि होती है। वह अपना अधिकांश समय रचनात्मक कार्य करने में व्यतीत करना चाहता है।
6. जीवन की इस आरम्भिक अवस्था में बालक अपने संवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास करता है। इससे पूर्व अवस्था में संवेगों पर नियंत्रण नहीं होता है किन्तु इस अवस्था में वह संवेग जैसे भय, क्रोध, हँसना, रोना आदि पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास करता है।
7. इस अवस्था में बालक में बर्हिमुखी व्यक्तित्व का विकास होता है। वह अधिक से अधिक बाह्य संसार के साथ जुड़कर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है।
8. इस अवस्था में बालक में प्राय: संग्रहात्मक प्रवृत्ति का विकास होता है। इसके साथ–साथ बालक अपने समान विचार और गुण–कर्म स्वभाव से युक्त मनुष्यों को अपना मित्र को बनाते हुए अपने सामाजिक दायरे का विस्तार करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार मनुष्य की बाल्यावस्था उपरोक्त विशेषताओं से युक्त होती है। वास्तव में यह अवस्था मनुष्य के जीवन का आधार तैयार करती है जिसका यौगिक प्रबन्धन आवश्यक होता है। अत: अब इस अवस्था के यौगिक प्रबन्धन पर विचार करते हैं –

10.2.2 यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, बाल्यावस्था में शरीर, मन और बुद्धि का बहुत तेजी से विकास होता है अत: यह मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इस अवस्था में योग के द्वारा सकारात्मकता

का विस्तार करना बहुत आवश्यक होता है। वास्तव में यह अवस्था मिटटी के उस कच्चे घड़े के समान होती है जिसमें हम जितना और जैसा चाहे परिवर्तन कर सकते है किन्तु जिस प्रकार घड़े के परिपक्व हो जाने के उपरान्त उसमें परिवर्तन करना संभव नहीं होता है ठीक उसी प्रकार मानव जीवन की इस अवस्था को योगाभ्यास के सकारात्मक संस्कारों द्वारा पोषित करने से मानव जीवन को सकारात्मक दिशा प्राप्त हो जाती है। बाल्यावस्था में निम्न योगाभ्यास करने से इस अवस्था का यौगिक प्रबन्धन होता है–

1. **यम-नियम पालन की शिक्षा :** बच्चों को बाल्यावस्था में यौगिक पाँच यम- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और पाँच नियम- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिाधन की शिक्षा अनिवार्य रुप से प्रदान करनी चाहिए। यद्यपि बालक की बुद्धि इन्हें सीधे रुप से समझने में सक्षम नहीं होती है अत: महापुरुषों के उदाहरणों एवं प्रेरणाप्रद प्रसंगों के द्वारा बालकों को बाल्यावस्था में से यम-नियम की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। ऐसा करने से बालकों में सूक्ष्म एवं स्थूल स्तर पर श्रेष्ठ संस्कार उत्पन्न होते हैं और उन्हें आत्मबल की प्राप्ति होती है। इसके साथ-साथ बालकों में उत्तम समायोजन शक्ति के साथ जीवन की सभी परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक रहने की क्षमता विकसित होती है। यम-नियम का उपदेश करने से बालकों में सकारात्मक मनन-चिन्तन एवं श्रेष्ठ विवेकबुद्धि का उदय होता है।

2. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास :** यद्यपि बाल्यावस्था में शरीर स्वच्छ और निर्मल रहता है अत: षट्कर्म की शुद्धि क्रियाओं के अभ्यास की विशेष आवश्यकता नहीं होती है किन्तु जैसे-जैसे इस अवस्था में बालक की समझ विकसित होती है उन्हें इन शुद्धिक्रियाओं का सैद्वान्तिक ज्ञान प्रदान करना चाहिए। बालकों में रुचि उत्पन्न करने के लिए बालकों के समक्ष इन क्रियाओं का प्रदर्शन और लाभों की व्याख्या करना चाहिए। इसके साथ समय-समय पर बालकों को त्राटक क्रिया का अभ्यास मानसिक स्थिरता और एकाग्रता को प्रदान करने के लिये अवश्य कराना चाहिए।

3. **आसनों के अभ्यास द्वारा :** बालकों का शरीर बहुत लचीला और हल्का होता है। अत: आठ वर्ष की आयु के उपरान्त बालकों को आसनों के अभ्यास के साथ जोड़ना चाहिए। बालकों को आसनों का लाभ समझाते हुए उन्हें प्रतिदिन योगासनों को अपनी दिनचर्या का अंग बनाने हेतु प्रेरित करना चाहिए और उनकी क्षमता व रुचि के अनुसार आसनों का अभ्यास करवाना चाहिए। बच्चों को ताड़ासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, तितलीआसन, पद्मासन, सिद्धासन आदि योगासनों के साथ प्रात:काल सूर्यनमस्कार का अभ्यास नियमित रुप से करवाना चाहिए। बच्चों को इन आसनों का अभ्यास अपने सम्मुख और दिशा निर्देश के अनुसार करवाना चाहिए। इन आसनों का अभ्यास करने से बाल्यावस्था से ही शरीर लचीला, क्रियाशील, हल्का, सन्तुलित और निरोगी बना रहता है और बालकों की रोग प्रतिरोधक क्षमता का स्तर उन्नत बना रहता है। इससे बालकों में मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक क्रियाशीलता बनी रहती है।

चित्र 10.2: वृक्षासन

4. **मुद्रा और बन्धों का अभ्यास :** यद्यपि बाल्यावस्था में मुद्राओं और बन्धों का विशेष ज्ञान नहीं होता है किन्तु फिर भी बाल्यावस्था में यौगिक मुद्राओं जैसे योगमुद्रा, ब्रह्ममुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, महामुद्रा आदि का सैद्वान्तिक ज्ञान एवं लाभों का वर्णन बालकों के सम्मुख करना चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन :** बाल्यावस्था में प्रत्याहार पालन का बहुत विशेष महत्व होता है। जैसा कि हमें पूर्व में अध्ययन किया है कि जीवन की इस आरम्भिक अवस्था में इन्द्रियाँ बाहरी संसार की ओर बहुत तेजी से दौड़ती रहती है और बालकों के मन को स्थिर नहीं होने देती है। अत: इस अवस्था में प्रत्याहार पालन अर्थात् इन्द्रियों पर संयम की शिक्षा बालकों को अवश्य प्रदान करनी चाहिए। इसके साथ-साथ बालकों की दिनचर्या को सुव्यवस्थित और आहार-विहार को शुद्ध सात्विक बनाना चाहिए।

6. **प्राणायाम के अभ्यास :** जहाँ तक हो सके बाल्यावस्था (आठ वर्ष की आयु के उपरान्त) बालकों को प्राणायाम का हल्का अभ्यास करवाना चाहिए। इस अवस्था में बच्चों को बन्धों का अभ्यास नहीं करवाना चाहिए अपितु अनुलोम-विलोम के साथ भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप नियमित रुप से करवाना चाहिए।

7. **ध्यान के अभ्यास :** बालकों को ध्यान के अभ्यास के साथ जोड़ना चाहिए। बच्चों में ध्यान के प्रति जागरुकता और रुचि को उत्पन्न करते हुए स्थूल ध्यान एवं ज्योर्ति ध्यान का समय-समय पर अभ्यास करवाना चाहिए।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियाँ :** बाल्यावस्था से ही बालकों को सकारात्मक अनुभूतियों की शिक्षा देनी चाहिए। बालकों के मन:स्थिति को समझकर उन्हें अच्छे प्रेरणाप्रद प्रसंग सुनाने चाहिए। बालकों को सकारात्मक की अनुभूतियाँ कराने से उनमें बाल्यावस्था से ही आत्मबल विकसित होने लगता है।

इस प्रकार उपरोक्त योगांगों की शिक्षा एवं अभ्यास से मानव जीवन की बाल्यावस्था का यौगिक प्रबन्धन करना चाहिए। अब मानव जीवन की बाल्यावस्था से अगली किशोरावस्था के यौगिक प्रबन्धन पर विचार करते हैं–

10.3 किशोरावस्था का यौगिक प्रबन्धन

यह मानव जीवन की बाल्यावस्था से अगली अवस्था होती है जिसका समय 12 से 18 वर्ष की आयु होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व निर्माण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था होती है जिसमें बाल्यावस्था से प्राप्त संस्कारों को स्थाई रुप से धारण करते हुए बालक किशोर का रुप ग्रहण कर लेता है। इस जीवन की यह अवस्था बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इस अवस्था में ज्ञान और ऊर्जा का विकास बहुत तेजी से होता है किन्तु अनुभवहीनता के कारण अच्छे–बुरे की पहचान अथवा सही–गलत का निर्णय करने की विवेक शक्ति अधिक विकसित नहीं होती है। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ एवं समस्याएँ निम्न होती हैं–

10.3.1 किशोरावस्था की प्रमुख विशेषताएँ

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य की किशोरावस्था का जीवन निम्न विशेषताओं और समस्याओं से युक्त होता है–

1. बाल्यावस्था शारीरिक क्षमताओं, मानसिक योग्यताओं एवं बौद्धिक ज्ञान शक्ति का विकास बहुत तेजी से होता है और किशोरावस्था में क्षमताएँ व योग्यताएँ स्थाई रुप ग्रहण करने लगती हैं।

2. इस अवस्था में संवेगात्मक विकास बहुत तेजी से होता है और किशोरावस्था में संवेगात्मक स्थिरता उत्पन्न होने लगती है।

3. इस अवस्था में बुद्धि के सर्वाधिक विकास की अवस्था होती है जिसमें अधिकतम् ज्ञान प्राप्त करने के साथ मानसिक परिपक्वता और स्वतंत्रता आना प्रारम्भ हो जाती है।

4. मानव जीवन की इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास बहुत तेजी से होता है और किशोरावस्था में धारणाएँ परिपक्व रुप ग्रहण करने लगती है।

5. किशोरावस्था व्यक्तित्व विकास की बहुत महत्वपूर्ण अवस्था होती है जिसमें शारीरिक संरचना और मानसिक गुणों में परिपक्वता आने लगती है जिसके परिणामस्वरुप उसके व्यक्तित्व की पहचान होने लगती है।

इस प्रकार मनुष्य की किशोरावस्था उपरोक्त विशेषताओं से युक्त होती है। जिसका यौगिक प्रबन्धन आवश्यक होता है। अत: अब इस अवस्था के यौगिक प्रबन्धन पर विचार करते हैं।

10.3.2 यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, किशोरावस्था में स्वयं की अधिक समझ विकसित नहीं होती है अत: इस अवस्था में हमें किशोरों को अपने निर्देशन या योग्य अनुभवी गुरु के निर्देशन में ही यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करवाना चाहिए। किशोरावस्था में निम्न यौगिक प्रबन्धन करते हुए किशोरों के अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहिए-

1. **यम-नियम पालन की शिक्षा :** किशोरावस्था में किशोरों को यम-नियम का उपदेश करते हुए इनको दृढ़ता के साथ पालन करने की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

2. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास :** किशोरावस्था में षट्कर्म की छ: शुद्धि क्रियाओं का सैद्धान्तिक ज्ञान दृढ़ करवाते हुए किशोरों की आवश्यकता और क्षमता के अनुसार इनका नियमित अभ्यास करवाना चाहिए।

3. **आसनों के अभ्यास द्वारा :** किशोरावस्था में किशोरों को नियमित आसनों का अभ्यास करवाना चाहिए। इस अवस्था में किशोरों की दिनचर्या में योगासनों को सम्मिलित करना चाहिए। सामान्य आसनों से प्रारम्भ करवाते हुए कठिन आसनों का नियमित अभ्यास किशोरावस्था में करवाना चाहिए। किशोरावस्था में शरीर की लम्बाई में वृद्धि करवाने हेतु ताड़ासन, वजन को नियंत्रित करने हेतु सूर्यनमस्कार और रीढ़ को लचीला बनाने हेतु चक्रासन व धनुरासन का नियमित रुप से अभ्यास करवाना चाहिए।

4. **मुद्रा और बन्धों का अभ्यास :** इस अवस्था में शरीरोपयोगी यौगिक मुद्राओं जैसे योगमुद्रा, बह्ममुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, महामुद्रा आदि का सैद्धान्तिक ज्ञान एवं अभ्यास किशोरों को करवाना चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन :** इन्द्रियों पर संयम की शिक्षा किशोरों को प्रदान करने के साथ इनकी दिनचर्या को अनुशासित, सुव्यवस्थित और आहार-विहार को शुद्ध सात्विक बनाना चाहिए।

6. **प्राणायाम का अभ्यास :** किशोरावस्था में विधिपूर्वक प्राणायामों का अभ्यास करवाना चाहिए। इस अवस्था में शरीर में वात-पित्त और कफ की अवस्था के अनुसार नाड़ीशोधन, सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका और भ्रामरी प्राणायाम को चाहिए।

7. **ध्यान का अभ्यास :** किशोरावस्था में मन को स्थिर और एकाग्र करने हेतु ध्यान के अभ्यास की बहुत आवश्यकता होती है अत: किशोरों को नियमित रुप से ध्यान का अभ्यास करवाना चाहिए।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियाँ :** किशोरावस्था में किशोरों का ध्यान सकारात्मक अनुभूतियों की ओर आकृष्ट करवाना चाहिए। इससे उनका जीवन तनाव से मुक्त बना रहता है। सकारात्मक अनुभूतियाँ करते हुए निरन्तर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होने का उपदेश किशोरों को करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त योगाभ्यास के द्वारा किशोरावस्था का यौगिक प्रबन्धन करना चाहिए। अब मानव जीवन की युवावस्था के यौगिक प्रबन्धन पर विचार करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 10.1

सही/गलत बताइए :

(क) केवल रोगों की अनुपस्थिति मात्र को ही स्वास्थ्य कहा जा सकता है। ( )

(ख) बाल्यावस्था में बन्धों का अभ्यास नहीं करवाना चाहिए। ( )

(ग) बालकों को ध्यान के अभ्यास के साथ नहीं जोड़ना चाहिए। ( )

10.4 युवावस्था का यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षाथिर्यों, मानव जीवन में किशोरावस्था से अगला चरण युवावस्था होती है। यह अवस्था 18 वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाती है जिसमें बालक शारीरिक क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं से परिपूर्ण माना जाता है। इस अवस्था की तुलना मनोवैज्ञानिक युंग दोपहर के सूर्य के साथ करते हैं और इस काल को जीवन का दोपहर कहते हैं। इस अवस्था में मनुष्य अपनी योग्यताओं और क्षमताओं का सर्वाधिक उपयोग करते हुए जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होता है। जीवन की इस महत्वपूर्ण अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ एवं समस्याएँ निम्न होती हैं-

10.4.1 युवावस्था की प्रमुख विशेषताएँ

प्रिय शिक्षाथिर्यों, मनुष्य में युवावस्था का काल उत्साह, उमंग और जोश से परिपूर्ण होता है इस काल की विशेषताएँ और समस्याएँ निम्न होती हैं-

1. शारीरिक और माानासिक रुप से स्वस्थ रहते हुए अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का अधिकतम् सदुपयोग करना।
2. स्वयं को उपयुक्त रोजगार के साथ जोड़कर उसे आगे बढ़ाने का प्रयास करना।
3. अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों को पूरा करने का प्रयास करना।
4. अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करते हुए उन्नत बनाने का प्रयास करना।
5. अपनी पूर्ण सार्मथ्य से जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना।

इस प्रकार युवावस्था में मनुष्य के सामने उपरोक्त लक्ष्य और चुनौतियाँ विद्यमान रहती है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए युवावस्था में युवा अधिकतम परिश्रम करता है अत: इस अवस्था में यौगिक प्रबन्धन बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यौगिक प्रबन्धन से वह शरीरिक और मानसिक रुप से

स्वस्थ रहता हुआ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहे। इस अवस्था में मनुष्य को निम्न यौगिक प्रबन्धन अपनाना चाहिए-

10.4.2 यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, युवावस्था में मनुष्य को निम्न योगांगों का पालन करते हुए यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक और नियमित रुप से अभ्यास करना चाहिए-

1. **यम-नियम का पालन करना :** युवावस्था में अष्टांग योग में वर्णित यम-नियम का व्रत के रुप में दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिए। ऐसा करने से नकारात्मक विचारों से मुक्ति प्राप्त होने के साथ सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है। सकारात्मक ऊर्जा से आत्मबल की प्राप्ति होती है जो इस अवस्था में बहुत आवश्यक होता है।

2. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करना :** युवावस्था में शरीर को रोगों से मुक्त बनाने एवं स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बनाने के लिए शरीर की आवश्यकता (शरीर में वात-पित्त और कफ दोष की अवस्थानुसार) और क्षमता के अनुसार षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास बहुत करना चाहिए।

3. **आसनों का अभ्यास करना :** युवावस्था में प्रतिदिन योगासनों को अपनी दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए। योगासनों में प्रात:काल सूर्यनमस्कार पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताडासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए।

4. **प्राणायाम का अभ्यास करना :** युवावस्था में प्रतिदिन विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इससे प्राणशक्ति का विस्तार एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर और मन के मध्य सन्तुलन स्थापित होता है और नाड़ियों का मल दूर होने के साथ चित्त निर्मल और मन प्रसन्न होता है। अत: युवावस्था में विधिपूर्वक उज्जायी, शीतली, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन करना :** युवावस्था में प्रत्याहार का पालन करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या और शुद्ध सात्विक आहार-विहार करना चाहिए। अपनी इन्द्रियों पर संयम करते हुए मन को स्थिर और एकाग्र बनाने का प्रयास करना चाहिए।

6. **सकारात्मक धारणा बनाना :** युवावस्था में सकारात्मक धारणा बनाते हुए युवाओं द्वारा जीवन की सभी समस्याओं का सामना धैर्यपूर्वक करना चाहिए।

7. **ध्यान का अभ्यास करना :** युवावस्था में प्रतिदिन विधिपूर्वक ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियों द्वारा :** युवावस्था में युवाओं को सकारात्मक विषयों का ध्यान करते हुए अपने चारों ओर सकारात्मक वातारण का निर्माण करना चाहिए। युवाओं को अपनी योग्यताओं और क्षमताओं का सकारात्मक दिशा में प्रयोग करना चाहिए।

प्रिय शिक्षार्थियों, इस प्रकार तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में युवाओं द्वारा नियमित योगाभ्यास करते हुए अपनी युवावस्था का यौगिक प्रबन्धन करना चाहिए। इससे युवाओं का जीवन दुर्गुण और दुर्व्यसनों से मुक्त रहता हुआ स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बना रहता है। अब विषय में आगे बढ़ते हुए प्रौढ़ावस्था के यौगिक प्रबन्धन पर विचार करते हैं–

10.5 प्रौढ़ावस्था का यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव जीवन में युवावस्था का अगला चरण प्रौढ़ावस्था होती है। इस अवस्था को मध्यावस्था भी कहा जाता है। यह अवस्था लगभग 40–45 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है जिसमें युवा अपनी शारीरिक क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं का उपयोग करता हुआ अपने मुकाम पर पहुँच गया होता है और अब उसे जो प्राप्त करना था वह उसे प्राप्त कर चुका होता है। मनोवैज्ञानिक युंग जीवन की इस अवस्था की तुलना अपराहन के तीसरे पहर के साथ करते हैं जिसमें सूर्य ढलना प्रारम्भ होने लगता है। इस अवस्था में मनुष्य के भीतर नकारात्मक भाव आने प्रारम्भ होने लगते हैं। इसके साथ शरीरिक स्वास्थ में भी समस्याएँ प्रारम्भ हो जाती है। अत: इस अवस्था का यौगिक प्रबन्धन बहुत अनिवार्य हो जाता है। प्रौढ़ावस्था में निम्न यौगिक प्रबन्धन अपनाना चाहिए–

प्रौढ़ावस्था में सर्वप्रथम यौगिक यम–नियम का प्रालन अधिक दृढता के साथ करना चाहिए। इस अवस्था में मनुष्य को सर्वत्र और सभी परिस्थितियों में अहिंसा और सत्य आदि यम–नियम का पालन व्रत के रुप में करना चाहिए। इससे नकारात्मकता का नाश और सकारात्मकता का उदय होता है। इसके साथ–साथ योगसूत्र में वर्णित अनुशासन को अपनी दिनचर्या का महत्वपूर्ण अंग बनाना चाहिए। यहाँ पर अनुशासन से अभिप्राय: स्वयं का स्वयं पर संयम करने से होता है। अर्थात इस अवस्था में स्वत: ही स्वयं के विचारों, भाषा, आदतों, खान–पान एवं व्यवहार को नियम संयम के साथ जोडना चाहिए। जीवन की इस अवस्था में विचारों की पवित्रता, सभ्य–सुशील भाषाशैली, अच्छी आदतें, सात्विक आहार और सकारात्मक–मधुर व्यवहार बहुत अनिवार्य एवं अपेक्षीय हो जाता है। प्रात:काल सूर्योदयपूर्व निश्चित समय पर उठने की दिनचर्या बनाते हुए निश्चित समय पर अपनी क्षमता और शरीर की आवश्यकता के अनुसार षट्कर्म की शुद्धि क्रियाओं, योगासनों, प्राणायाम और ध्यान की क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। इस अवस्था में अपने सभी कार्य पूर्ण ज़िम्मेदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ पूर्ण मनोयोग से करने चाहिए।

इस अवस्था में जीवन के अनुभवों से प्राप्त ज्ञान से धैर्य के स्तर को उन्नत बनाना चाहिए। प्रतिदिन स्वाध्याय के साथ ध्यान के द्वारा स्वयं का साक्षात्मकार करना चाहिए और सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करते हुए अपने व्यक्तित्व को प्रतिक्षण परिष्कृत करने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिए।

10.6 वृद्धावस्था का यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव जीवन के अन्तिम चरण के रुप में वृद्धावस्था का वर्णन आता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक युंग इस अवस्था को जीवन की शाम की संज्ञा देते हुए कहते है कि इस

अवस्था में मनुष्य मृत्यु के भय, पश्चाताप और नकारात्मकता से घिरा हुआ रहता है और यह सोचता रहता है कि कौन सी रात उसके लिए अन्तिम होगी। परन्तु इस दर्शन के विपरीत भारतीय संस्कृति में यह मानव जीवन की सबसे अधिक ज्ञान, सम्मान और आनन्दमयी अवस्था मानी गयी है जिसमें व्यक्ति को अपनी जीवनयात्रा के कार्यों से पूर्ण सन्तोष रहता है और वह उस सन्तोष की अन्त: अनुभूति के साथ सांसारिक कर्तव्यों से मुक्त होकर ईश्वर की आध्यात्मिक दुनिया के साथ अपना दृढ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस अवस्था में मनुष्य सर्वत्र ईश्वरीय आनन्द को अनुभव करता हुआ उसमें लीन रहता है और नियमित योगाभ्यास करते हुए मृत्यु के भय अर्थात् अभिनिवेश क्लेश से मुक्त होकर संसार सागर से तर जाता है। इस अवस्था में निम्न यौगिक प्रबन्धन करना चाहिए।

चित्र 10.3: वृद्धावस्था में शरीर और मन को स्थिर एवं एकाग्र बनाते हुए ध्यान अभ्यास करना चाहिए

वृद्धावस्था में मनुष्य यम-नियम का पालन आर्दश रुप में करता है। इसके साथ-साथ शरीर की आवश्यकता और क्षमतानुसार नेति, धौति, शंखप्रक्षालन, नौली, त्राटक और कपालभाति आदि का विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। चूंकि इस अवस्था में शरीर की क्षमता कम हो जाती है अत: कठिन आसनों का अभ्यास संभव नहीं हो पाता है किन्तु इस अवस्था में नियमित रुप से सूक्ष्म अभ्यास, हल्के आसन और सूर्यनमस्कार का अभ्यास अपनी दिनचर्या का अंग बनाकर करना चाहिए। इस अवस्था में इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करते हुए आचार-विचार और व्यवहार में संयम करना चाहिए। इस अवस्था में प्राण तत्व का विस्तार करने के उद्देश्य से नियमित रुप से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

वृद्धावस्था में शरीर और मन को स्थिर व एकाग्र बनाते हुए नियमित ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। निरन्तर ध्यान और प्रार्थना के अभ्यास से आत्मसाक्षात्मकार करते हुए ईश्वर से प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इस अवस्था में ईश्वर के साथ संयुक्त होकर समाधि की अवस्था में लीन होने का प्रयास करना चाहिए। वृद्धावस्था में नित्यप्रति श्रेष्ठ मोक्ष प्रदत्त ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन-चिन्तन करना चाहिए और महर्षि पतंजलि द्वारा प्रेणित योगसूत्र के अनुसार सुखी मनुष्यों से मित्रता के भाव, दुखी प्राणियों से करुणा, पुण्यात्माओं से प्रसन्नता और पापात्माओं के प्रति उपेक्षा के भाव रखते हुए सदैव अपने चित्त को निर्मल रखते हुए ईश्वरीय आनन्द में लीन रहना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धावस्था में उपरोक्त योगाभ्यास द्वारा जीवन प्रबन्धन करते हुए इस महत्वपूर्ण अवस्था को आनन्दमय, क्रियाशील, रोगमुक्त, स्वस्थ और सार्थक बनाए रखना चाहिए।

10.7 खिलाड़ियों के लिए यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, खेल का क्षेत्र प्रत्येक मानव जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। खेल के द्वारा एक ओर जहाँ मनुष्य स्वयं का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास करता है तो वहीं दूसरी ओर खेल को अपना केरियर बनाकर खिलाड़ी के रुप में अपने परिवार, समाज और राष्ट्र का नाम रोशन करता है। परन्तु एक खिलाड़ी का जीवन बहुत चुनौतियों और समस्याओं से भरा हुआ रहता है। अतः खिलाड़ियों के लिए यौगिक प्रबन्धन करना बहुत आवश्यक होता है।

एक खिलाड़ी को अपने जीवन में सबसे अधिक उत्तम और मजबूत आत्मबल की आवश्यकता पडती है जिसके आधार पर वह अपने खेल में सर्वश्रेष्ठ प्रर्दशन करने में सक्षम बन सके। इसे प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम यौगिक अनुशासन को अपनी दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए। इसके साथ-साथ यम-नियम का पालन करने से आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। खिलाड़ियों द्वारा शरीर को हल्का, लचीला और निरोगी बनाने के लिए नियमित रुप से योगासनों का अभ्यास करना चाहिए। योगासनों के क्रम में सूक्ष्म अभ्यास से प्रारम्भ करते हुए क्षमतानुसार सूर्यनमस्कार, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। योगासनों के साथ प्राण ऊर्जा में वृद्धि करने के उद्देश्य से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में दीर्घ श्वास-प्रश्वास से प्रारम्भ करते हुए सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए।

आसन और प्राणायाम के अभ्यास के उपरान्त खिलाड़ियों को शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को संगठित करने के लिए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अपने मन में सकारात्मक धारणा बनाकर सकारात्मक और ऊर्जावान लक्ष्यों का ध्यान करना चाहिए। इससे शरीर और मन का तनाव दूर होता है और सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है। इन योगाभ्यास के साथ खिलाड़ियों को सकारात्मक अनुभूतियाँ करते हुए अपनी क्षमताओं में वृद्धि करना चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त योगांगों का पालन एवं यौगिक क्रियाओं के द्वारा खिलाड़ी अपनी क्षमताओं और योग्यता का समुचित उपयोग करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होता है।

10.8 सुरक्षाबलों के लिए यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में प्रत्येक मनुष्य की भूमिका बहुत विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण होती है। परन्तु समाज को सही प्रकार चलाने में कुछ व्यक्ति उस कड़ी के रुप में क्रियाशील रहते हैं जो पूरे समाज को व्यवस्थित रुप से जोड़ने का कार्य करती हुई समाज को सदैव सुरक्षित बनाए रखती है। इस कड़ी के रुप में हमारे सुरक्षाबल के जवानों सदैव चौबीसों घन्टे राष्ट्र सेवा में तत्पर रहते हैं जिनके ऊपर सम्पूर्ण राष्ट्र की सुरक्षा की जिम्मेदारी होती है। सुरक्षाबल

राष्ट्र की वह महत्वपूर्ण कड़ी होती हैं जो समाज और राष्ट्र की बाहरी और आन्तरिक दोनों ओर से सुरक्षा का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। सुरक्षाबल परिवारों से दूर रहकर अपना राष्ट्र सुरक्षा कर्तव्यपालन को निभाने का कार्य करते हैं। इनका जीवन बहुत चुनौतिपूर्ण होता है अत: इनका शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना बहुत आवश्यक होता है। इस सम्बन्ध में नियमित योगाभ्यास करते हुए अपने जीवन का यौगिक प्रबन्धन करना बहुत आवश्यक होता है। यौगिक प्रबन्धन से सुरक्षाबल स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त रहते हुए अपने कर्त्तव्यपालन का निर्वाह सभी प्रकार करने में सक्षम होते हैं।

चित्र 10.4: सुरक्षा बलों के लिए यौगिक प्रबन्धन

सुरक्षा बलों को शरीर शोधनार्थ और वात-पित्त, कफ दोषों को शरीर में सम बनाए रखने हेतु षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। अत: इन्हें कुशल निर्देशन में शरीर की आवश्यकता और क्षमतानुसार नेति, धौति, शंखप्रक्षालन, नौली, त्राटक और कपालभाति आदि शोधन क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। शुद्धिक्रियाओं के साथ-साथ आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करने से सुरक्षाबलों का शरीर हल्का, लचीला, स्वस्थ एवं रोगों से मुक्त बना रहता है। इसके साथ-साथ शरीर का वजन सन्तुलित रहता है। आसनों के क्रम में सूर्यनमस्कार से प्रारम्भ करते हुए शरीर को लचीला और दृढ बनाने वाले आसन जैसे- पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। योगासनों के साथ-साथ प्राणतत्व को उन्नत बनाने प्रात:काल सुरक्षाबलों को सामूहिक एवं व्यक्तिगत रुप से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में दीर्घ श्वास-प्रश्वास से प्रारम्भ करते हुए सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए। इससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनने के साथ जीवन शक्ति को प्रबल बनाने का कार्य करती है।

चूंकि सुरक्षाबलों का कार्य बहुत जिम्मेदारी और एकाग्रता से भरा होता है अत: इस कार्य को भलि-भांति सम्पन्न करने के लिए इन्हें नियमित रुप से ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान के द्वारा तनाव का निवारण करते हुए सकारात्मक ऊर्जा को ग्रहण करना चाहिए और सम-विषम दोनों परिस्थितियों में धैर्य पूर्वक एकसमान रहना चाहिए। सुरक्षाबलों को सदैव अनुशासित रहते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या का पालन करना चाहिए।

10.9 फिटनेस के लिए यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय में अव्यवस्थित दिनचर्या, रासायनों से युक्त विकृत आहार-विहार और मानसिक तनाव के परिणाम स्वरुप शरीर की फिटनेस को सन्तुलित बनाए रखना बहुत जटिल होता जा रहा है। दिनचर्या के अभाव में आहार का क्रम अव्यवस्थित होता है और पाचन क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। इनके साथ-साथ मानसिक तनाव के परिणाम स्वरुप शरीर में हार्मोन्स का स्तर असन्तुलित हो जाता है जिससे थायरॉयड और मधुमेह जैसे रोगों की चपेट में आने से शरीर की फिटनेस विकृत हो जाती है। इन सभी अवस्थाओं से मुक्ति प्राप्ति का श्रेष्ठतम विकल्प यौगिक प्रबन्धन है। यौगिक प्रबन्धन के द्वारा मनुष्य बहुत सरलता, सहजता और प्राकृतिक रुप से फिटनेस को उन्नत बना सकता है।

फिटनेस को उन्नत बनाने के लिए शरीर में वात-पित्त, कफ दोषों का सम होना बहुत आवश्यक होता है। अत: इन दोषों को शरीर में सम बनाए रखने हेतु षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। शरीर की आवश्यकता और अपनी क्षमतानुसार नेति, धौति, शंखप्रक्षालन, नौली, त्राटक और कपालभाति आदि शोधन क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करने से फिटनेस उन्नत बनती है। शुद्धिक्रियाओं के साथ-साथ आसनों का अभ्यास शरीर की फिटनेस पर सीधा प्रभाव रखता है। अत: नियमित रुप से प्रात:काल सूक्ष्म अभ्यासों एवं वार्म अप एक्सरसाईज से प्रारम्भ करते हुए सूर्यनमस्कार से प्रारम्भ करते हुए शरीर को लचीला और दृढ बनाने वाले आसन जैसे- पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, नौकासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, वक्रासन, मण्डूकासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास कुशल निर्देशन में करना चाहिए।

योगासनों के उपरान्त प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास शरीर की फिटनेस सन्तुलित करने के लिए बहुत आवश्यक होता है। इसके लिए ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर दीर्घ श्वास-प्रश्वास से प्रारम्भ करते हुए सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए। इससे शरीर की फिटनेस का स्तर उन्नत होने के साथ शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवन शक्ति में भी सुधार होता है।

शरीर की फिटनेस का स्तर उन्नत बनाने हेतु इन्द्रियों पर संयम, सुव्यवस्थित दिनचर्या के अनुसार प्रत्येक कार्य, तनावमुक्त सकारात्मक सोच-विचार और यौगिक पथ्य आहार का सेवन करना बहुत अनिवार्य होता है। इन सभी कारकों को मिलाकर यौगिक प्रबन्धन की संज्ञा दी जाती है जिनका पालन करने से फिटनेस का स्तर उन्नत एवं शरीर स्वस्थ बनता है।

10.10 पर्यटकों के लिए यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय की भागदौड़ भरी जिन्दगी में मनुष्य कुछ समय स्वयं के लिए निकालता है जिसमें वह कुछ समय के लिए अपनी सामान्य दिनचर्या का त्याग करते हुए तनाव से मुक्त होकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक सुख और शान्ति प्राप्त करने का प्रयास

करता है। जीवन के इस काल में उसे पर्यटक कहा जाता है। किसी भी पर्यटक का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक सुख और शान्ति को प्राप्त करना होता है जिससे वह आगामी समय के लिए ओर अधिक ऊर्जा, उत्साह और उमंग को प्राप्त कर सके। पर्यटकों के इन उद्देश्यों को पूर्ण करने का श्रेष्ठ विकल्प यौगिक प्रबन्धन होता है।

पर्यटकों को उनकी आवश्यकता, क्षमता और रुचि के अनुसार नेति, धौति, शंखप्रक्षालन, नौली, त्राटक और कपालभाति आदि शोधन क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करवाने से शरीर हल्का और ऊर्जावान बनता है। इन शुद्धिक्रियाओं के साथ-साथ योगासनों का सरल अभ्यासक्रम पर्यटकों को करवाना चाहिए। विशेष रुप में सूक्ष्म अभ्यासों पर केन्द्रित करते हुए सूर्यनमस्कार का अभ्यास पर्यटकों को करवाना चाहिए। इसके उपरान्त कुछ सरल आसन जैसे ताड़ासन, त्रिकोणासन, वज्रासन, वक्रासन, मण्डूकासन, शशांकासन, सिंहासन, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, मरकटासन, नौकासन और भुजंगासन आदि का अभ्यास उनकी क्षमतानुसार करवाना चाहिए। योगासनों के उपरान्त अनुलोम-विलोम, नाड़ीशोधन, उज्जायी, भस्त्रिका और भ्रामरी आदि प्राणायामों एवं इसके उपरान्त प्रणव उच्चारण के साथ ध्यान का अभ्यास पर्यटकों को करवाना चाहिए। पर्यटकों को प्राणायाम, प्रार्थना और ध्यान के अभ्यास पर अधिक केन्द्रित करना चाहिए। ध्यान के अभ्यास में स्थूल ध्यान से प्रारम्भ करते हुए ज्योति ध्यान का अभ्यास करवाना चाहिए। पर्यटकों को योगनिद्रा का अभ्यास भी बहुत लाभकारी प्रभाव प्रदान करता है। पर्यटकों को सर्वत्र सुख की मंगलकामना मंत्रोच्चारण के साथ करवानी चाहिए। इससे पर्यटकों को शरीरिक सुख, मानसिक स्थिरता और आत्मिक शान्ति की प्राप्ति होती है।

यूनिटगत प्रश्न 10.2

रिक्त स्थान भरिए :

(क) युवावस्था ..... वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाती है।

(ख) वृद्धावस्था में शरीर और मन को स्थिर व एकाग्र बनाते हुए नियमित ..... का अभ्यास करना चाहिए।

(ग) वात, पित्त, कफ दोषों को शरीर में सम बनाए रखने हेतु ..... की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करने की आवश्यकता होती है।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में सर्वप्रथम यौगिक स्वस्थ्य प्रबन्धन के स्वरुप को स्पष्ट किया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में योग, स्वास्थ्य और प्रबन्धन के अर्थ को समझाते हुए मानव जीवन में इसके महत्व को समझाया गया है। तत्पश्चात् मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं जैसे

बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था के यौगिक प्रबन्धन को समझाया गया है। यूनिट में मानव जीवन की इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं, समस्याओं और चुनौतियों को स्पष्ट करते हुए इन अवस्थाओं के यौगिक प्रबन्धन पर प्रकाश डाला गया है।

वर्तमान काल में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यौगिक प्रबन्धन की आवश्यकता है। वास्तव में आधुनिक समय में मनुष्य की अव्यवस्थित दिनचर्या, विकृत आहार-विहार, बढता वातावरणीय प्रदूषण, विलासितापूर्ण जीवनशैली और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणाम स्वरुप खिलाडी़, सुरक्षाबल, जन सामान्य और पर्यटक आदि सभी के स्वास्थ्य का स्तर क्षीण होता जा रहा है। स्वास्थ्य की समस्या का सीधा प्रभाव मनुष्य के जीवन उद्देश्य पर पड़ता है और इसी कारण इन सभी क्षेत्रों में मनुष्य अपने उद्देश्यों को सही प्रकार प्राप्त नहीं कर पा रहे है। इस हेतु प्रस्तुत यूनिट में इन सभी क्षेत्रों में यौगिक स्वस्थ्य प्रबन्धन के स्वरुप एवं महत्व को समझाया गया है। यूनिट में यौगिक क्रियाओं के साथ अन्य योगाभ्यास के द्वारा यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन करते हुए जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने का सविस्तार वर्णन किया गया है।

यूनिटांत प्रश्न

1. यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन के स्वरुप एवं महत्व का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. फिटनेस के यौगिक प्रबन्धन की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
3. युवावस्था की प्रमुख विशेषताओं एवं यौगिक प्रबन्धन की सविस्तार चर्चा कीजिए।
4. मनुष्य में बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताओं एवं यौगिक प्रबन्धन की व्याख्या कीजिए।
5. टिप्पणियाँ लिखिए-
   (क) वृद्धावस्था का यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन
   (ख) पर्यटकों का यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

(क) गलत (ख सही (ग) गलत

10.2

(क) 18 (ख) ध्यान (ग) षट्कर्म

11

तनाव (स्ट्रैस) में यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने यौगिक स्वास्थ्य प्रबन्धन के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि किस प्रकार मनुष्य के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में स्वास्थ्य का यौगिक प्रबन्धन करते हुए जीवन को सुखमय और सार्थक बनाया जा सकता है। परन्तु वर्तमान काल में मानसिक तनाव अत्यन्त व्यवहारिक शब्द बना हुआ है। प्रात:काल उठने से प्रारम्भ होकर रात्रिकाल तक की दिनचर्या के दौरान अनेक बार इस तनाव के साथ मनुष्य का सामना होता है। यह तनाव जीवन की सभी अवस्थाओं से लेकर सभी क्षेत्र जैसे शिक्षा, व्यापार, कृषि आदि के साथ जुड़ा हुआ है। विशेषरुप से छात्रों को अध्ययनकाल में, परिवारजनों को परिवार में एवं कार्मिकों को कॉरपोरेट सेक्टर में इस तनाव का अधिक सामना करना पड़ता है। मनुष्य की बढ़ती महत्वकांक्षाएँ, कम समय में अधिक प्राप्त करने की इच्छा तथा प्रतिस्पर्धात्मक सोच आदि ऐसे प्रमुख कारक हैं, जिनसे मनुष्य तनाव की चपेट में आ जाता है। वर्तमान समय में मनुष्य ने अपने जीवन को बहुत अधिक व्यस्त कर लिया है। इतना अधिक व्यस्त कर लिया है कि वह स्वयं के लिए एवं आराम के लिए समय नहीं बचा पाता है। इस प्रकार जीवन में समय प्रबन्धन का अभाव और अव्यवस्थित दिनचर्या से भी मनुष्य तनाव रुपी जंजाल में फंसता जा रहा है। आज मानसिक तनाव सम्पूर्ण विश्व में मानव जाति को अपनी चपेट में ले रहा है।

मानसिक तनाव की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि इससे ग्रस्त होने का पता ही नहीं चल पाता है। अपितु, जब मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं और व्यवहार में अस्वाभाविक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं उस अवस्था में दूसरे व्यक्तियों को यह पता चलता है वह मनुष्य मानसिक तनाव से ग्रस्त हो चुका है और इसके उपरान्त यह तनाव उस मनुष्य की दिनचर्या का अंग बन जाता है और चाह कर भी मनुष्य इससे मुक्त नहीं होने में स्वयं को असक्षम अनुभव करने लगता है। वहीं दूसरी ओर तनाव से ग्रस्त होने पर भूख–प्यास और निद्रा जैसी मूलभूत जैविक क्रियाएँ असन्तुलित एवं अव्यवस्थित होने लगती हैं। इससे परिणामस्वरुप शरीर की चयापचय दर (Metabolism) भी असन्तुलित हो जाती है जिसके फलस्वरुप विभिन्न शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है और धीरे–धीरे यह समस्या गंभीर रुप धारण करने लगती है। इस गंभीर अवस्था में मनुष्य

का स्वयं पर (शारीरिक और मानसिक स्तर) नियंत्रण कम होने लगता और तथा मनुष्य दुर्व्यसनों की चपेट में आने लगता है। विभिन्न शोध इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि, वर्तमान सभ्य और शिक्षित समाज में तेजी से बढ़ते दुर्व्यसनों में मानसिक तनाव एक महत्वपूर्ण कारक की भूमिका वहन करता है। मानसिक तनाव की गंभीर अवस्था में योग एवं यौगिक क्रियाओं का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। दैनिक जीवन में योगाभ्यास को अपनाकर तनाव का यौगिक प्रबन्धन करते हुए इससे मुक्त हुआ जा सकता है। प्रस्तुत यूनिट के अन्तर्गत छात्रों, परिवार के सामान्य जनों और कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर में होने वाले मानसिक तनाव के यौगिक प्रबन्धन की सविस्तार व्याख्या की गयी है।

उद्देश्य

इस यूनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मानसिक तनाव का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें;
- मानसिक तनाव के स्वरुप को जान पाएंगे;
- छात्रों में तनाव के प्रमुख कारकों एवं लक्षणों को समझ पाएंगे;
- छात्रों में तनाव का यौगिक प्रबन्धन की व्याख्या करने में सक्षम हो सकेंगे;
- सामान्यजनों में मानसिक तनाव का यौगिक प्रबन्धन समझ सकेंगे;
- कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के तनाव का यौगिक प्रबन्धन समझा सकेंगे।

11.1 तनाव का सामान्य परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों, मानसिक तनाव सम्पूर्ण विश्व में एक जाल के रुप में फैली महामारी है जिससे मुक्त होने के लिए अनेक प्रकार के उपचार किये जाते हैं। एलोपैथी चिकित्सा में रोग के लक्षणों को देखकर रासायनिक दवाईयों के प्रभाव से लक्षणों को दबाने का कार्य किया जाता है। परन्तु जिस प्रकार यदि किसी वृक्ष की शाखाओं और पत्तों में रोग उत्पन्न होने पर उपचार वृक्ष के मूल भाग में किया जाना अधिक श्रेष्ठकर होता है। क्योंकि वृक्ष के मूल का उपचार होने पर फल-फूल और शाखाएँ आदि स्वत: ही स्वस्थ हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार मानसिक तनाव की स्थिति में भी रोग के मूल को जानना आनिवार्य होता है। मानसिक तनाव के मूल स्वरुप को जानने के लिए इसका वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन करते हैं। अत: सर्वप्रथम मानसिक तनाव के अर्थ और परिभाषा पर विचार करते हैं।

11.2 मानसिक तनाव का अर्थ एवं परिभाषा

प्रिय शिक्षार्थियों, वास्तव में मानसिक तनाव एक जटिल एवं गूढ़ शब्द है जिसे समझने हेतु इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करना अनिवार्य हो जाता है। मानसिक तनाव के अर्थ एवं स्वरुप की व्याख्या करने के लिए भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञनिकों ने अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। इनमें से प्रमुख परिभाषाएँ निम्नवत् हैं-

1. कुछ मनोवैज्ञानिक तनाव को एक उद्दीपक कारक के रुप में परिभाषित करते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जीवन की कुछ ऐसी घटनाएँ अथवा परिस्थिति जो किसी मनुष्य को सामान्य के स्थान पर असामान्य अनुक्रियाएँ करने के लिए बाध्य करती हैं, तनाव कहलाते हैं। मानव जीवन में अनेक घटनाएँ जैसे नौकरी छूट जाना, भूकम्प आना, किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाना ऐसे उदाहरण हैं जो तनाव को उत्पन्न करते हैं। इन घटनाओं को मनोवैज्ञानिक तनाव के कारक कहते हैं।

2. कुछ मनोवैज्ञानिक तनाव को अनुक्रियाओं के रुप में परिभाषित करते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब शरीर की कुछ विशेष अनुक्रियाओं जैसे चिन्ता, क्रोध, रक्तचाप, शरीर का तापक्रम या नींद आदि में असामान्य रुप से वृद्धि होती है तब यह कहा जाता है कि यह मनुष्य तनाव से ग्रस्त है। इस प्रकार इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शरीर की कुछ विशेष अनुक्रियाओं में असामान्य रुप से वृद्धि होना ही तनाव कहलाता है।

3. कुछ मनोवैज्ञानिक उपरोक्त दोनों परिभाषाओं को मिलाकर तनाव की व्याख्या करते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार तनाव ना केवल घटनाओं का परिणाम होता है और ना ही अनुक्रियाओं में वृद्धि को तनाव कहा जा सकता है अपितु जब किसी भी मनुष्य के समक्ष कोई समस्या प्रकट होती है तब वह उसका सामना अपने पास उपलब्ध साधनों से करने का प्रयास करता है किन्तु जब घटना या समस्या अधिक गंभीर होती है और व्यक्ति के अहं को ही खतरा उत्पन्न हो जाता है तब वह अवस्था तनाव कहलाती है। उदाहरण से समझे तो सामान्य रोग होने पर व्यक्ति उसका उपचार उपलब्ध साधनों से आसानी से कर लेता है किन्तु वही मनुष्य जब किसी गंभीर रोग से ग्रस्त हो जाता है तब उसमें तनाव के लक्षण प्रकट होने लगते हैं अथवा वह तनाव से ग्रसित हो जाता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बेरॉन तनाव को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

''तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रुप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।''

मनोवैज्ञानिक बेरॉन की यह परिभाषा तनाव के सम्बन्ध में निम्न महत्वपूर्ण बिन्दुओं एवं तथ्यों को स्पष्ट करती है-

1. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया होती है जिसमें तनाव को उत्पन्न करने वाली घटनाओं, परिस्थितियों अथवा कारकों का मूल्यांकन करते हुए मनुष्य उनके प्रति अनुक्रियाएँ करता है।

2. तनाव मनुष्य के जीवन की नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों प्रकार की घटनाओं से उत्पन्न होता है। इसलिए तनाव नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार का होता है। उदाहरण के लिए व्यापार में घाटा होना या मनुष्य के रोग ग्रस्त होने पर नकारात्मक तनाव उत्पन्न होता है जबकि अच्छे पद पर पदोन्ति या बड़े पुरस्कार की प्राप्ति होने से सकारात्मक तनाव उत्पन्न होता है।

3. जिन घटनाओं अथवा कारकों से तनाव उत्पन्न होता है वह व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होती हैं। जबकि इन घटनाओं या कारकों पर नियंत्रण होने से तनाव का स्तर कम होने लगता है।

4. तनाव से ग्रसित होने पर मनुष्य शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की अनुक्रियाएँ करता है। अर्थात् तनाव से ग्रस्त होने पर व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक दोनों अनुक्रियाओं में परिवर्तन आते हैं।

5. तनाव की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है अर्थात् तनाव कम समय में भी समाप्त हो सकता है और लम्बे समय तक भी चल रहा है। तनाव की यह अवधि तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं पर निर्भर करता है।

इस प्रकार उपरोक्त बिन्दुओं से तनाव का स्वरुप स्पष्ट होता है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि तनाव छात्रों के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करता है और छात्रों में उत्पन्न तनाव का यौगिक प्रबन्धन किस प्रकार किया जा सकता है अत: अब छात्रों में तनाव प्रबन्धन पर विचार करते हैं–

11.3 छात्रों में तनाव प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, महर्षि मनु मानव जीवन को चार भागों में विभाजित करते हैं– बह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम। जीवन के इन चार भागों में ब्रह्मचर्य आश्रम का अपना विशिष्ट महत्व होता है क्योंकि इसमें एक बालक विद्या अध्ययन करता हुआ आपने भावी जीवन से परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए भविष्य की पृष्ठभूमि तैयार करता है वास्तव में विद्यार्थी जीवन ही किसी परिवार, समाज और राष्ट्र की आधारशिला होती है। विद्यार्थी ही एक परिवार, समाज और राष्ट्र का भविष्य होता है। जीवन का इस अवस्था को छात्र जीवन भी कहा जाता है, जिसमें स्वयं का स्वयं पर नियंत्रण करते हुए आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करता है। जीवन का यह काल त्याग, तपस्या और साधना के साथ जुड़ा होता है। इस अवस्था में एक बालक सांसारिक विषय भोगों का त्याग करता हुआ शांत–स्थिर और एकाग्र मन से विद्या अध्ययन में लगा रहता है। इस अवस्था में छात्र गुरू से प्राप्त श्रेष्ठ संस्कारों से संस्कारित होता हुआ चरित्र निर्माण और स्वयं का निर्माण करता है। यद्यपि एक विद्यार्थी का यह जीवन काल बहुत चुनौतियों से भरा होता है जिसमें उसके सम्मुख अनेक बाधाएँ, समस्याएँ और कष्ट उत्पन्न होते हैं किन्तु विनम्रता, धैर्य और श्रद्धा भाव के साथ इन कठिनाइयों का सामना वह अपने जीवन यात्रा को सुखद एवं श्रेष्ठ बनाने के लिए करता है। विद्यार्थी जीवन के संदर्भ में यह कहा गया है कि 'विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ

और सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ' अर्थात् विद्यार्थी जीवन त्याग और तपस्या से परिपूर्ण होता है किन्तु विद्यार्थी जीवन की यह तपस्या और अनुशासन विद्यार्थी के जीवन को विद्यार्थी के भावी जीवन और राष्ट्र की उन्नति की राह प्रशस्त करती है।

चित्र 11.1: छात्रों में तनाव

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि, मनुष्य के जीवन का निर्माण उसकी प्रथम वस्था छात्र जीवन से ही होता है। परन्तु यह भी स्पष्ट तथ्य है कि वर्तमान समय में स्थितियाँ परिस्थितियाँ पूर्व काल से पूर्णतया भिन्न हो चुकी है और मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चारों ओर वातावरण में आधुनिकता का समावेश हो गया है इस आधुनिकता का सीधा प्रभाव छात्र जीवन पर भी पड़ा है और वर्तमान समय में छात्र का जीवन अनेक प्रकार के तनाव से ग्रस्त हो गया। इस तनाव का सीधा प्रभाव विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और चारित्रिक विकास पर पड़ता है। तनाव के प्रभाव से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास एवं व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया बाधित होती है। तनाव से ग्रसित होने पर छात्र का शारीरिक विकास यथावत नहीं हो पाता है और मानसिक प्रक्रियाओं में बाधाएँ उत्पन्न होने लगती है। तनाव से ग्रसित होने पर विद्यार्थी की बौद्धिक क्षमता पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है और वह अपनी पूर्ण क्षमता का सदुप्रयोग करने में असमर्थ हो जाता है। तनाव का दुष्प्रभाव विद्यार्थी की समायोजन क्षमता, अनुकूलन क्षमता और सकारात्मक सोच-विचार पर भी पड़ता है। अर्थ यह है कि तनाव के परिणाम स्वरूप विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास बाधित हो जाता है और वह विभिन्न प्रकार की समस्याओं से घिर जाता है। अब प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि छात्र जीवन में तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारक कौन-कौन से होते हैं? अत: अब छात्र जीवन में तनाव उत्पन्न करने वाले महत्वपूर्ण कारकों पर विचार करते हैं-

1. **स्वास्थ्य की समस्या :** छात्र जीवन में तनाव का सबसे प्रमुख कारक छात्र का स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं से ग्रसित होना होता है। जैसा कि सर्वविदित तथ्य है कि छात्र जीवन

शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास का काल होता है। इस विकास यात्रा में समस्याएँ उत्पन्न होना बहुत स्वभाविक होती हैं। एक स्वस्थ छात्र ही विकास यात्रा या उन्नति में आने वाली इन समस्याओं का सामना एवं समाधान सरलता एवं बुद्धिमत्ता से करने की योग्यता रखता है। जबकि रोगावस्था में जीवन की समस्याएँ छात्र के लिए तनाव का कारण बन जाती हैं। रोगी होने पर इन समस्याओं के समाधान में छात्र स्वयं को सक्षम मानता हुआ तनाव से ग्रसित होने लगता है। वर्तमान समय में विकृत आहार-विहार के परिणामस्वरूप बढ़ती स्वास्थ्य समस्याओं ने छात्र जीवन को तनाव से ग्रस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन की है।

2. **दिनचर्या एवं अनुशासन का अभाव :** वर्तमान समय में मोबाइल फोन, इन्टरनेट, कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेबलेट आदि की प्रयोग ने मनुष्य की दिनचर्या पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है और छात्र जीवन भी इन इलेक्ट्रानिक उपकरणों की प्रयोग से अछूता नहीं रहा है। इन उपकरणों का प्रयोग करने से दिनचर्या पूर्णरूप से अव्यवस्थित हो चुकी है। जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों का रात्रिकाल में देर से सोना और प्रातः काल देर से उठने का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ा है। प्रातः काल देर तक सोने से विद्यार्थी की सम्पूर्ण दिनचर्या अव्यवस्थित हो जाती है और कार्यों व पढ़ाई का समय प्रबन्धन (Time Management) नहीं हो पाता है। इन सबका परिणाम अव्यवस्था और अनुशासनहीनता के रूप में प्रकट होता है। जबकि 'अनुशासन को छात्र जीवन की रीढ़' माना जाता है। अतः इस रीढ़ के कमजोर होने पर छात्र जीवन तनाव के चपेट में आ जाता है इसलिए वर्तमान समय में विद्यार्थी जीवन में बहुत तेजी से तनाव फैलता जा रहा है।

3. **परिवार, विद्यालय एवं समाज का वातावरण :** छात्र जीवन पर परिवार विद्यालय एवं समाज के वातावरण का सीधा प्रभाव पड़ता है। यह स्पष्ट तथ्य है कि छात्र अपने जीवन में केवल पुस्तकों से ही ज्ञान प्राप्त नहीं करता है अपितु, पुस्तकों से कहीं अधिक गुणा ज्ञान वह अपने अपने आस-पास के वातावरण, परिवार, विद्यालय एवं समाज के परिवेश को देखकर, सुनकर एवं अनुभवों से प्राप्त करता है इसीलिए छात्र के आस-पास का वातावरण सकारात्मक होने पर छात्र जीवन में श्रेष्ठता के गुणों का विस्तार होता है जबकि परिवार में कलह, विद्यालय में झगड़े और समाज में नकारात्मक गतिविधियों का दुष्प्रभाव छात्र जीवन पर पड़ता है और यह सभी नकारात्मक अवस्थाएँ छात्र जीवन में तनाव को उत्पन्न करती है। लम्बे समय तक नकारात्मक परिस्थितियों में रहने के पश्चात् कुछ परिस्थितियों में तो छात्र मादक और नशीले द्रव्यों का सेवन भी करने लगता है।

4. **पढ़ाई का अधिक दबाव एवं जिम्मेदारियों का बोझ :** यहाँ पर हमें इस प्रकार समझना चाहिए कि एक छात्र शारीरिक और मानसिक स्तर पर पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं होता है। अपितु, छात्र जीवन की यह अवस्था बहुत कोमल और संवेदनशील होती है। उम्र के इस चरण में छात्र ना शरीर से पूर्ण परिपक्व होता है और ना ही मानसिक व बौद्धिक स्तर पर विवेकज्ञान पूर्ण विकसित अवस्था में होता है। परन्तु छात्र की क्षमता से अधिक बोझ डालने

पर वह तनाव से ग्रसित होने लगता है। इसके साथ-साथ अधिकतर माता-पिता अपने बच्चों पर अपने सपने पूरा करने की बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियों का बोझ डाल देते हैं जिससे वह छात्र तनाव से ग्रसित होने लगता है।

5. **परीक्षा में सबसे अच्छा परिणाम प्राप्त करने की चिन्ता :** यद्यपि, प्रत्येक छात्र अच्छे परिणाम के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करता है परन्तु, फिर भी यह आवश्यक नहीं होता है कि उसे ही सबसे अच्छे अंक प्राप्त हो। परन्तु परीक्षा में सबसे अच्छे परिणाम को प्राप्त करने की चिन्ता विद्यार्थी को तनाव की ओर ले जाती है। वर्तमान समय में सहपाठियों के प्रति बढ़ती प्रतिस्पर्धात्मक भावना, परिवार की महत्वाकांक्षा एवं माता-पिता द्वारा पूर्व निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने का दबाव छात्र जीवन को तनाव की ओर ले जाता है।

6. **भविष्य में रोजगार प्राप्त करने की चिन्ता :** छात्र जीवन का उद्देश्य उच्चतम् शिक्षा प्राप्त करना होता है जिससे वह अच्छी आजीविका को प्राप्त करता हुआ अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस विषय में अधिकांश छात्र भविष्य में रोजगार को लेकर बहुत चिंतित रहते हैं और आगे चलकर छात्रों की यही चिन्ता तनाव का रूप ग्रहण करने लगता है।

इस प्रकार उपरोक्त कारक छात्र जीवन में तनाव को उत्पन्न करते हैं अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम किस प्रकार जाने कि यह छात्र तनाव से ग्रस्त है। अतः अब तनाव के प्रमुख लक्षणों पर विचार करते हैं।

11.3.1 छात्र के तनाव के लक्षण

छात्र के तनाव से ग्रस्त होने पर निम्न प्रमुख लक्षण प्रकट होते हैं-

1. तनाव का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण लक्षण विद्यार्थी की दिनचर्या में परिवर्तन होना होता है ऐसी अवस्था में विद्यार्थी की भूख में परिवर्तन हो जाता है और वह निश्चित समय पर एवं पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं करता है।
2. विद्यार्थी के सिर में दर्द, गला सूखना, बार-बार मूत्र का वेग होना आदि लक्षणों के साथ स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है और वह असामान्य अनुक्रियाएँ करने लगता है।
3. छात्र अपने किसी भी कार्य को रूचि लेकर एवं उत्साहपूर्ण होकर नहीं करता है।
4. छात्र अधिकतम समय छात्र में अकेलापन, डर, बेचैनी, व्याकुलता अथवा भ्रम उत्पन्न हो जाता है और उसकी प्रवृत्ति दबाव में रहने की हो जाती है।
5. छात्र अकेलापन को अधिक पसन्द करने लगता है और वह घर से बाहर जाना तथा अपने मित्रों से बात करना, मिलना और उनके साथ खेलना छोड़ देता है।
6. छात्र के चेहरे पर चिन्ता एवं नकारात्मक भाव प्रकट होने लगते हैं।
7. छात्र के स्वभाव में क्रोध, चिड़चिड़ापन और अधीरता आदि सांवेगिक परिवर्तन आने लगते हैं। छोटी-छोटी बातों में ही गुस्सा आने लगता है एवं स्वयं पर नियंत्रण कम हो जाता है।

8. छात्र की स्मरण शक्ति कमजोर होने के साथ भूलने की प्रवृत्ति होने लगती है।
9. छात्र में समायोजन शीलता एवं अनुकूलन की क्षमता का अभाव होने लगता है।
10. छात्र में आत्मविश्वास का अभाव होने लगता है और वह जिम्मेदारियों से बचने लगता है जिससे छात्र अपनी योग्यता के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर पाता है।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि, छात्र तनाव रुपी महामारी से ग्रस्त है। इस स्थिति में एक ओर जहाँ छात्र की शारीरिक-मानसिक क्रियाएँ अव्यवस्थित होने लगती है तो वहीं दूसरी ओर छात्र की प्रवृत्ति भी आक्रामक और नकारात्मक होने लगती है। यह अवस्था लम्बे समय तक रहने एवं गंभीर होने पर कुछ छात्र आहार-विहार से संबंधित दुर्गुण एवं दुर्व्यसनों (नशीले पदार्थों का सेवन) में फँस जाते हैं। ऐसी अवस्था में छात्र का जीवन पतन की ओर जाना प्रारम्भ हो जाता है। इस महत्वपूर्ण अवस्था में योग में शैली एवं यौगिक क्रियाओं का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है।

11.3.2 यौगिक प्रबन्धन

योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'युज' धातु से हुई है। जिसका अर्थ होता है मिलना या जुड़ना। यहाँ पर आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के अर्थ में योग शब्द को लिया गया है। इस संसार का सबसे सकारात्मक तत्व ईश्वर है और ईश्वर के साथ स्वयं को जोड़ना ही योग कहलाता है। चूंकि मानसिक तनाव का मूल नकारात्मकता से होता है अत: ईश्वर के साथ जुड़ने से शरीर, मन और आत्मा में नकारात्मकता का विनाश और सकारात्मकता का विस्तार होता है अत: इससे मानसिक तनाव समूल नष्ट होता है। योगांगों का पालन एवं यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में सन्तुलन की अवस्था उत्पन्न होती है जिससे मानसिक तनाव दूर होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। ईश्वर के साथ संयुक्त होने के लिए महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का उपदेश किया है। अष्टांग योग के आठ अंगों का पालन करने से छात्रों में विभिन्न परिस्थितियों एवं कारकों से उत्पन्न मानसिक तनाव का भलि-भांति प्रबन्धन हो जाता है जिससे छात्र तनाव से मुक्त होकर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में बिना किसी बाधा के अग्रसर होते है। योगाभ्यास द्वारा छात्रों का यौगिक प्रबन्धन इस प्रकार किया जा सकता है -

1. **यम-नियम पालन के द्वारा :** महर्षि पतंजलि अष्टांग योग का आरम्भ यम-नियम के साथ करते है। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, बह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का वर्णन आता है। जिस प्रकार योग साधना में यम-नियम के पालन से योग साधक की पृष्ठभूमि तैयार होती है उसी प्रकार छात्र जीवन को उन्नत बनाने में यम-नियम का पालन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। यम-नियम के पालन से छात्र में भावनाओं और संवेगों पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास होता है और मानसिक तनाव से मुक्ति प्राप्त होती है। यम-नियम के पालन से छात्र का आचरण और व्यवहार उन्नत बनने के साथ आत्मबल की प्राप्ति होती है और तनाव से मुक्ति मिलती है।

2. **योगासनों के अभ्यास द्वारा :** छात्र जीवन में तनाव मुक्त बनाने में योगासनों का अभ्यास महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। आसनों का अभ्यास करने से शरीर पर मस्तिष्क का नियंत्रण बढ़ता है और शरीर की क्रियाशीलता बढ़ने के साथ पाचक रसों का स्रावण अधिक होता है जिससे पाचन क्रिया उन्नत बनती है और भूख अच्छी व समय पर लगती है। विद्यार्थियों को नियमित रुप से प्रात:काल के समय सूर्यनमस्कार, ताड़ासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, ध्रुवासन, वज्रासन, पदमासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, सर्वांगासन, हलासल, चक्रासन, नौकासन और शीर्षासन आदि आसनों का अभ्यास करते हुए स्वास्थ्य को उन्नत बनाना चाहिए। इन आसनों के अभ्यास से शरीर और मन ऊर्जावान बनते हैं और तनाव समूल नष्ट होता है।

3. **प्राणायाम के अभ्यास द्वारा :** छात्रों के तनाव प्रबन्धन में प्राणायाम का अभ्यास बहुत लाभकारी भूमिका वहन करता है। तनाव की अवस्था में श्वसन क्रिया तीव्र और अव्यवस्थित हो जाती है जबकि, प्राणायाम के अभ्यास से श्वसन क्रिया पर नियंत्रण प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ प्राणायाम के अभ्यास से छात्रों की बौद्धिक क्षमता एवं स्मरण शक्ति का विकास होता है। अत: छात्रों को नियमित रुप से अनुलोम-विलोम, नाड़ी शोधन, सूर्यभेदी, उज्जायी, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण का अभ्यास स्थिर और एकाग्र मन से करना चाहिए। इसके साथ लम्बे गहरे श्वासों के साथ श्वसन क्रिया को दीर्घ बनाना चाहिए।

चित्र 11.2: तनाव का ध्यान के अभ्यास द्वारा यौगिक प्रबन्धन

4. **प्रत्याहार पालन के द्वारा :** छात्र जीवन में इन्द्रियाँ बहुत तेजी से बाहरी विषयों की ओर दौड़ती रहती है अत: इन्हे नियंत्रित करने के लिए प्रत्याहार पालन बहुत आवश्यक होता है। प्रत्याहार पालन के द्वारा छात्र अपनी इन्द्रियों और मन पर संयम स्थापित करते हुए सुव्यवस्थित

दिनचर्या, सात्विक आहार, समय प्रबन्धन एवं आत्म अनुशासन को अपनाता हुआ मानसिक प्रसन्नता और संतोष की अनुभूति करता है जिससे मानसिक तनाव समूल नष्ट होता है।

5. **धारणा-ध्यान के अभ्यास द्वारा :** छात्रों के द्वारा अपने मन में नकारात्मक चिन्तन मनन का त्याग करते हुए सकारात्मक विषयों एवं जीवन आर्दशों को धारण करने से मानसिक तनाव समूल नष्ट होता है। सकारात्मक चिन्तन के साथ ईश्वर का ध्यान और प्रार्थना का अभ्यास तनाव को पूर्णरुप से दूर करता है। ध्यान के अभ्यास से सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है और तनाव से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार छात्र जीवन को सकारात्मक धारणा एवं ध्यान के साथ जोड़कर तनाव प्रबंधन किया जा सकता है।

6. **समाधि की सकारात्मक अनुभूतियों द्वारा :** यहाँ पर समाधि से तात्पर्य सकारात्मक अनुभूतियाँ करते हुए अपने चारों ओर सकारात्मक वातावरण का निर्माण करने से होता है। नकारात्मक अनुभूतियाँ जीवन को तनाव की ओर लेकर जाती हैं जबकि इसके विपरित सकारात्मक अनुभूतियाँ जीवन को उल्लास, उमंग, हर्ष और प्रसन्नता प्रदान करती हैं। अपने चारों ओर सकारात्मक अनुभूतियाँ करने से व्यक्तित्व विकास होता है और छात्र को अपनी क्षमताओं को ज्ञान प्राप्त होने के साथ अधिकतम कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है जिससे वह पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए प्राप्त फल में पूर्ण प्रसन्नता की अनुभूति करता है और प्रतिस्पर्धा व ईर्ष्या की भावना से मुक्त रहकर सभी परिस्थितियों में और सर्वत्र सकारात्मकता की कामना करता है। इस भाव से छात्रों में मानसिक तनाव समूल नष्ट होता है।

इसके साथ-साथ हठयोग की शुद्धि क्रियाओं में नेति और त्राटक क्रियाओं का अभ्यास तनाव को दूर करता है। अत: छात्रों को समय-समय पर नेति क्रिया और त्राटक क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

इन यौगिक क्रियाओं के साथ-साथ छात्रों को पथ्य और अपथ्य आहार पर भी ध्यान देना चाहिए। छात्र जीवन में राजसिक और तामसिक आहार जैसे नमक, मिर्च-मसाले, नमकीन, ब्रेड, बिस्किट कोल्ड ड्रिंक्स आदि का त्याग करते हुए अंकुरित अन्न, मौसमीदार फल और सब्जियों के साथ दूध और दूध से बने पदार्थ एवं बादाम, अखरोट, किशमिश, अंजीर आदि पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए। इससे छात्रों का पूर्ण शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, बौद्धिक और नैतिक विकास होता है और इसके साथ-साथ मन सात्विक वृत्तियों के युक्त रहता हुआ स्थिर, शान्त एवं नियंत्रित रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि, योगांगों का पालन करते हुए नियमित यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम और ध्यान आदि का विधिपूर्वक अभ्यास करने से छात्रों के जीवन में तनाव का प्रबन्धन होता है और छात्र जीवन तनाव की महामारी से मुक्त रहता है। अब छात्र जीवन से अगला चरण गृहस्थ आश्रम का होता है जिसमें व्यक्ति अपनी आजीविका चलाते हुए पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का निर्वाहन करता है। अत: अब सामान्य जनों में तनाव प्रबन्धन पर विचार करते हैं-

यूनिटगत प्रश्न 11.1

सही/गलत बताइए :

(क) विद्यार्थी जीवन ही किसी परिवार, समाज और राष्ट्र की आधारशिला होती है। ( )

(ख) यम-नियम के पालन से छात्र में भावनाओं और संवेगों पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास होता है और मानसिक तनाव से मुक्ति प्राप्ति होती है। ( )

(ग) छात्रों को नोति क्रिया तथा त्राटक का अभ्यास नहीं करना चाहिए। ( )

11.4 सामान्यजनों में मानसिक तनाव का यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, यहाँ पर सामान्य जनों से अभिप्राय: गृहस्थ आश्रम द्वारा समाज का पालन पोषण कर रहे व्यक्तियों से है जिसमें जीवन की मध्यावस्था वाले पुरुष और महिलाएँ आती हैं। जीवन की यह अवस्था सबसे अधिक दायित्वों का निर्वाहन करने वाली अवस्था होती जिसमें स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ परिवार और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति का महत्वपूर्ण दायित्व निभाना होता है अत: जीवन की इस सबसें जिम्मेदार अवस्था में अनेक समस्याओं और चुनौतियों का आना अत्यन्त स्वभाविक होता है। किन्तु जब मनुष्य का इन समस्याओं और चुनौतियों से सामान्जस्य बिगड़ जाता है तब मानसिक तनाव उत्पन्न होता है और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वर्तमान समय में समाज के बहुत अधिक मनुष्य (स्त्रियाँ और पुरूष) इस तनाव के जाल में फसते जा रहें हैं। जिस कारण यह तनाव एक महामारी के रुप में फैलता जा रहा है। विषय में आगे बढ़ने से पूर्व हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौन-कौन से कारक सामान्य जनों के जीवन में तनाव उत्पन्न करते है जिससे इन कारणों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए इस समस्या का प्रबन्धन किया जा सके।

11.4.1 सामान्यजनों में मानसिक तनाव के कारक

सामान्य जनों में तनाव को उत्पन्न करने करने वाले प्रमुख कारक निम्न लिखित होते हैं-

1. **शारीरिक और मानासिक रुप से स्वस्थ रहने की समस्या :** वर्तमान समय में विकृत आहार-विहार और प्रदूषण के परिणाम स्वरुप सामान्य जनों के लिए अपने स्वास्थ्य को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती हो गया है। मशीनरी युग के कारण अधिकांश कार्य मशीनों से होने के कारण शारीरिक श्रम के अभाव ने इस समस्या को ओर अधिक बढ़ा दिया है। इसके साथ-साथ दायित्वों को पूरा करने की चिन्ता से वर्तमान समय में विभिन्न शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ जैसे सिर दर्द, कमर दर्द, कब्ज, मोटापा, रक्तचाप, थायरॉइड, मधुमेह और अनिद्रा आदि बहुत तेजी से समाज में फैलती जा रही हैं। इन व्याधियों से स्वयं से ग्रस्त होने पर अथवा स्वयं को बचाने के दबाव में मनुष्य बहुत तेजी से तनाव के जाल में फसते जा रहें हैं।

2. **अपने रोजगार को आगे बढ़ाने एवं दायित्वों को पूरा करने की समस्या :** मनोवैज्ञानिक युंग जीवन की मध्यावस्था की तुलना दोपहर के सूर्य के साथ करते है। जीवन की इस महत्वपूर्ण अवस्था में व्यक्ति अपने रोजगार को अधिकतम उन्नति के शिखर पर ले जाना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि इससे अगली अवस्था में शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ क्षीण होने वाली हैं अत: वह इस अवस्था में अपनी शक्ति, क्षमता और योग्यता का अधिकतम उपयोग करने के दबाव में रहता है। इसके साथ-साथ इस अवस्था में व्यक्ति के ऊपर घर-परिवार के अन्य सदस्यों और सदस्यों के साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वाहन का भार भी रहता है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरुप मनुष्य तनाव रुपी महामारी की चपेट में आ जाता है।

3. **जीवन की तनावपूर्ण घटनाएँ :** जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि इस अवस्था में व्यक्ति अपने रोजगार को उन्नति के शिखर पर ले जाने का अधिकतम प्रयास करता है तो वहीं वह अपने परिवार को भी अधिकतम् सुख और सही दिशा प्रदान करने का प्रयास करता है अत: इन कार्यों में कुछ ऐसी घटनाएँ जैसे व्यापार में घाटा, बच्चे का परीक्षा में फेल हो जाना, माता-पिता का बीमार पड़ जाना आदि उसे तनाव की ओर ले जाती हैं।

4. **कार्य में असफलता की चिन्ता का नकारात्मक चिन्तन :** मनुष्य के स्वभाव एवं मनन चिन्तन पर आहार-विहार एवं समाज के अन्य व्यक्तियों का प्रभाव पड़ता है। कुछ परिस्थितियों में समाज एवं परिवार के सदस्य किसी मनुष्य के मन में नकारात्मक भावनों की वृद्धि कर देते हैं जिस कारण मनुष्य अधिक चिन्ता से ग्रस्त होकर तनाव में फस जाता है। इसी प्रकार मन में चिन्ता के साथ अन्य नकारात्मक भावों की प्रधानता मानसिक तनाव को उत्पन्न करती है।

5. **संसाधनों का अभाव एवं आर्थिक कमजोरी की समस्या :** मानव जीवन की मध्यावस्था में मनुष्य को अपनी शक्ति, ज्ञान और योग्यता का अधिकतम उपयोग करने के लिए अनेक संसाधनो की आवश्यकता पड़ती है। इसके साथ-साथ आर्थिक धन सम्पदा भी बहुत आवश्यक होती है जिनके अभाव में मनुष्य तनाव की चपेट में आ जाता है।

6. **दूसरों पर निर्भरता की समस्या :** यद्यपि, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और दूसरों को सहयोग करना एवं दूसरों से सहयोग लेने की प्रवृत्ति मनुष्य के स्वभाव में निहित होती है। परन्तु इस प्रवृत्ति के कारण कुछ मनुष्य दूसरों पर बहुत निर्भर और अधिक आश्रित हो जाते हैं। मनुष्य की दूसरों पर यह निर्भरता उनके आत्मविश्वास में कमी का प्रमुख कारण बन जाती है और स्वयं के आत्मविश्वास के अभाव में ऐसे मनुष्य बहुत जल्दी तनाव की चपेट में आ जाते हैं।

प्रिय शिक्षार्थियों, इस प्रकार उपरोक्त कारक जन सामान्य को तनाव की समस्या के साथ जोड़ देते हैं। इस समस्या से ग्रस्त होने पर मनुष्य में विवेकशीलता का अभाव होने लगता है और वह तनाव से स्वयं को मुक्त करने के लिए दुर्व्यसनों का सहारा लेने लगता है। परन्तु दुर्व्यसनों से तनाव

समाप्त नहीं होता है अपितु, और अधिक जटिल रुप ग्रहण करने लगता है। अत: यहाँ पर तनाव का यौगिक प्रबन्धन एक श्रेष्ठतम् विकल्प होता है। सामान्यजनों में तनाव का यौगिक प्रबन्धन निम्नवत है।

11.4.2 यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, यहाँ पर योग से अभिप्राय: केवल शारीरिक व्यायाम से नहीं है अपितु, सम्पूर्ण योग का अर्थ सम्पूर्ण जीवन दर्शन से होता है जिसमें प्रात:काल सूर्योदयपूर्व सोकर उठने से लेकर दिनभर की समस्त क्रियाओं को आस्तिकता के साथ समत्वं के भावों से युक्त होकर बहुत अनुशासित रुप से किया जाता है। इस प्रकार स्वयं द्वारा स्वयं को अनुशासित बनाते हुए छल-कपट का त्याग करते हुए निष्काम कर्म करने से मनुष्य का जीवन तनाव जैसी महामारी से मुक्त रहता है। इसके साथ-साथ निम्न योगांगों का पालन करने से पूर्व वर्णित कारकों से उत्पन्न तनाव को समूल नष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामान्य जनों को निम्न योगांगों का पालन एवं यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते हुए तनाव प्रबन्धन करना चाहिए-

1. **यम-नियम पालन के द्वारा :** सामान्य जनों को अपने जीवन में पाँच यम- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, बह्मचर्य, अपरिग्रह और पाँच नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिाधन का व्रत के रुप में पालन करना चाहिए। ऐसा करने से नकारात्मक विचारों से मुक्ति प्राप्त होने के साथ सकारात्मक आत्मबल की प्राप्ति होती है और ईश्वर में आस्था व निष्ठा परिपक्व बनती है। ईश्वर में आस्था होने से मनुष्य में कर्तापन का भाव दूर होने लगता है जिससे अहंभाव नष्ट होता है और सभी परिस्थितियों में सम रहने की प्रवृत्ति प्रबल होता है। इससे मानसिक तनाव का प्रबन्धन होता है और सकारात्मक मनन चिन्तन एवं विवेकबुद्धि का उदय होता है। इस प्रकार अष्टांग योग में वर्णित यम और नियम का पालन करने से मनुष्य में मानसिक परिपक्वता आती है और सकारात्मक दूरदृष्टि प्राप्त होने के साथ तनाव दूर होता है।

2. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास द्वारा :** सामान्य जनों को रोगों से मुक्त बनाते हुए उनके स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बनाने में षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास बहुत लाभकारी एवं प्रभावशाली भूमिका निभाता है। षट्कर्म की शुद्धि क्रियाओं में धौति, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक और कपालभाति का वर्णन आता है। इन क्रियाओं को शरीर की आवश्यकतानुसार एवं क्षमतानुसार अभ्यास करना चाहिए। इसमें पाचन तंत्र को स्वस्थ, क्रियाशील और रोगमुक्त बनाने के लिए समय-समय पर वमन, वस्ति और शंखप्रक्षालन क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। जलनेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन प्रात:काल करना चाहिए। सामान्य जनों को शरीर में वात-पित्त, कफ दोष की अवस्थानुसार एवं शरीर की क्षमतानुसार शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए।

3. **आसनों के अभ्यास द्वारा :** सामान्य जनों को मोटापा, कमरदर्द, सिरदर्द, रक्तचाप, अनिद्रा और तनाव से मुक्त बने रहने के लिए प्रतिदिन योगासनों को अपनी दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए। योगासनों में प्रात:काल सूर्यनमस्कार, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन,

चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। अपनी क्षमतानुसार पहले सामान्य और अभ्यास होने पर कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहिए। इन आसनों का अभ्यास करने से शरीर लचीला, क्रियाशील, हल्का, सन्तुलित और निरोगी बना रहता है जिससे स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बना रहता है। स्वास्थ्य का स्तर उन्नत रहने से मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक क्रियाशीलता बनी रहती है तथा मानसिक तनाव दूर होता है। तनाव की गंभीर अवस्था में शीर्षासन का अभ्यास वर्जित होता है अर्थात् शीर्षासन नहीं करना चाहिए।

4. **प्राणायाम के अभ्यास द्वारा :** प्राणायाम का अभ्यास प्राण शक्ति में वृद्धि करने के साथ-साथ शरीर को हल्का बनाता है और मन में स्थिरता उत्पन्न करता है। सामान्य जनों तनाव रुपी महामारी से बचने के लिए नियमित रुप से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में अनुलोम-विलोम और नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर और मन के माध्य सन्तुलन स्थापित होता है। नाड़ियों का मल दूर होने के साथ चित्त निर्मल और मन प्रसन्न होता है। इनके साथ-साथ विधिपूर्वक उज्जायी, शीतली, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए। मानसिक तनाव की अवस्था में शीतली और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास विशेष लाभ प्रदान करता है। मानसिक तनाव से ग्रस्त होने पर प्रणव उच्चारण भी विशेष लाभ प्रदान करता है। तनाव की गंभीर अवस्था में ऊर्जा वृद्धि करने वाले प्राणायाम जैसे सूर्यभेदी और भस्त्रिका नहीं करने चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन द्वारा :** प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रियों पर संयम से होता है। तनाव का प्रारम्भ स्वयं पर असंयम से होता है अत: इन्द्रियों पर संयम करते हुए मन पर नियंत्रण स्थापित करने से मानसिक तनाव का बहुत कुशलतापूर्वक प्रबन्धन किया जा सकता है। प्रत्याहार का पालन करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या और शुद्ध सात्विक आहार-विहार करने से मानसिक तनाव को बहुत सरलता और सहजता से दूर कर सकता है।

6. **सकारात्मक धारणा द्वारा :** धारणा अर्थात् किसी विषय को दृढ़ता के साथ ग्रहण या धारण करना। नकारात्मक विषयों का चिन्तन-मनन करते हुए नकारात्मकता को ग्रहण करने से तनाव प्रारम्भ होता है जबकि इसके विपरित सकारात्मक विषयों को ग्रहण करते हुए पूर्ण तन्मयता एवं एकाग्रता के साथ अपना कार्य करने से तनाव दूर होता है। यहाँ किसी भी समस्या के उत्पन्न होने पर चिन्ता करने के स्थान पर चिन्तन करने का वर्णन किया जाता है क्योंकि सकारात्मक चिन्तन से करने से तनाव के स्थान पर गंभीर से गंभीर समस्या का भी हल प्राप्त हो जाता है जबकि, केवल चिन्ता मात्र करने से समस्याएँ गंभीर तनाव उत्पन्न कर देती हैं।

7. **ध्यान के अभ्यास द्वारा :** मानसिक तनाव और ध्यान दोनों एक दूसरे के विपरित अवस्था होती है। ध्यान करने से मानसिक तनाव समूल दूर होता है। अत: सामान्य जनों द्वारा ध्यान को अपनी दिनचर्या का अंग बनाने से उनका जीवन तनाव से मुक्त बनता है। इस सम्बन्ध में अनेक शोध अध्ययनों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि प्रात: अथवा सांय काल नियमित रुप से ध्यान का अभ्यास करने से मनुष्य का जीवन तनाव से मुक्त रहता है।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियों द्वारा :** यहाँ पर समाधि का अर्थ अपने चारों ओर के वातावरण में सकारात्मक अनुभूतियाँ करते हुए आनन्दपूर्वक जीवन जीने से लिया जाता है। यहाँ पर स्मरणीय तथ्य यह है कि, मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन की कठिनाईयों और समस्याओं का सामना अपनी पूरी क्षमता एवं योग्यता से करते हुए प्राप्त परिणामों को सहर्ष स्वीकार करें। इससे मनुष्य को सुख एवं सन्तोष की प्राप्ति होती है और वह प्राप्त फल में प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता है। इस प्रकार के आचरण से उसका जीवन सदैव तनावमुक्त बना रहता है।

प्रिय शिक्षार्थियों, इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि, वर्तमान समय में सामान्यजनों के लिय योगाभ्यास बहुत महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य हो गया है। योगागों का पालन करते हुए नियमित यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम और ध्यान आदि का विधिपूर्वक अभ्यास करने से समाज के जन स्वयं को शारीरिक और मानसिक रुप से स्वस्थ रखते हुए अपने जीवन को तनाव से मुक्त बनाए रख सकते हैं। अब विषय में आगे बढ़ते हुए कॉरपोरेट सेक्टर में सेवारत कर्मियों के तनाव प्रबन्धन पर विचार करते हैं-

11.5 कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर में मानसिक तनाव का यौगिक प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, यहाँ पर कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर से अभिप्राय: व्यवसाय एवं उद्योग धन्धों में कार्य करने वाले कर्मिकों एवं प्रबन्धकों से होता है। यह क्षेत्र किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का आधार या रीढ़ होती है जिसमें सभी घरेलू उत्पादों एवं राष्ट्र से बाहर निर्यात करने की वस्तुओं के निर्माण करने का कार्य होता है। इस क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व की दौड़ में स्वयं को बनाए रखने की चुनौती सामने रहती है। इस क्षेत्र में छोटी सी गलती या लापरवाही बहुत गंभीर परिणाम देने वाली होती है जिस पर एक साथ अनेक लोगों का भविष्य टिका होता है। अत: इस क्षेत्र में बहुत बुद्धिमत्ता, एकाग्रता, धैर्य और दूरदर्शिता से कार्य करने की आवश्यकता होती है एवं इस क्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मिकों एवं प्रबन्धकों में तनाव का होना बहुत सामान्य है। अब यहाँ पर इस क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रबन्धकों एवं कार्मिकों में तनाव को उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारकों पर विचार करना अनिवार्य है। इन कारकों को जानने के उपरान्त ही इनमें उत्पन्न तनाव की समस्या का यौगिक प्रबन्धन किया जा सकता है।

11.5.1 कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर में मानसिक तनाव के कारक

कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर में तनाव को उत्पन्न करने करने वाले प्रमुख कारक निम्न लिखित होते हैं-

1. **शारीरिक और मानासिक रुप से स्वस्थ रहने की समस्या :** इस क्षेत्र में मनुष्य की दिनचर्या एवं खान पान प्राय: अव्यवस्थित रहता है जिससे, इस क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों का बहुत समय अपने सेवा कार्यों में व्यतीत होता है जिस कारण वह अपने स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं। इसके साथ-साथ अव्यवस्थित दिनचर्या और शारीरिक-मानसिक श्रम में

असन्तुलन होने से भी इस क्षेत्र से जुड़े लोगों में मोटापा, सिरदर्द, माइग्रेन, कब्ज और रक्तचाप आदि रोग पाये जाते हैं जो आगे चलकर गंभीर रुप धारण करते हुए तनाव का रुप ग्रहण कर लेते हैं।

2. **प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में कम्पनी को आगे बढ़ाने की समस्या :** चूंकि कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर में बहुत प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण रहता है जिसमें स्वयं को स्थापित बनाए रखना बहुत चुनौतिपूर्ण कार्य होता है। इस क्षेत्र में प्रबन्धकों एवं कर्मिकों पर बहुत बडा दायित्व रहता है और दायित्व के साथ प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण की चुनौती इस क्षेत्र में मानसिक तनाव का प्रमुख कारण होता है।

3. **अनिश्चितता एवं जोखिमयुक्त वातावरण :** कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर बहुत अनिश्चितताओं और जोखिम से भरा हुआ क्षेत्र होता है जिसमें निरन्तर उतार-चढाव होते रहते हैं। इस क्षेत्र में आने वाले उतार-चढ़ावों का सम्बन्धित प्रबन्धकों एवं कर्मिकों पर सीधा प्रभाव पडता है। इस प्रकार इस क्षेत्र की अनिश्चितताएँ और जोखिमयुक्त वातावरण या उतार-चढ़ाव मानसिक तनाव को उत्पन्न करने में बहुत महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

4. **स्वार्थ एवं अहंभाव की अधिकता एवं आत्मसंवेदनाओं का अभाव :** इस क्षेत्र से जुड़े लोगों का अधिक ध्यान अपने व्यवसाय को ही जाता है जिस कारण, कुछ परिस्थितियों में उनके भीतर स्वार्थ और अहं भाव की अधिकता होने लगती है और व्यवसाय को अधिक महत्व देने की स्थिति में आत्म संवेदनाओं में कमी होने लगती है। यह कारक तनाव को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं।

5. **सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव :** इस क्षेत्र में सकारात्मक दृटिकोण की बहुत आवश्यकता होती है। सकारात्मक दृष्टिकोण रखने से विपरित परिस्थितियों में धैर्य की प्राप्ति होती है जबकि नकारात्मक दृष्टिकोण से तनाव उत्पन्न होने लगता है।

6. **स्वयं की क्षमताओं एवं आत्मविश्वास का अभाव :** इस क्षेत्र में स्वयं की क्षमताओं पर विश्वास करते हुए सही दिशा में उपयोग करना बहुत आवश्यक होता है और इसी से आत्मविश्वास की प्राप्ति होती है। जबकि इसके विपरित स्वयं की क्षमताओं पर विश्वास नहीं होने से मनुष्य तनाव की चपेट में आ जाता है। अर्थ यह है कि आत्मविश्वास का अभाव तनाव को उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कारक है।

इस प्रकार उपरोक्त कारकों से कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के लोगों में तनाव की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। अब इस समस्या के यौगिक प्रबन्धन इस प्रकार किया जा सकता है -

11.5.2 यौगिक प्रबन्धन

सर्वप्रथम तनाव को उत्पन्न करने वाले मूल कारक को जानना चाहिए। मूल कारण का निवारण करते हुए तनाव के जाल से समूल मुक्ति प्राप्त की जा सके। इसके साथ-साथ निम्न योगाभ्यास भी तनाव को दूर करने में लाभकारी प्रभाव रखता है-

1. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं के अभ्यास द्वारा :** शरीर के शोधन हेतु विधिपूर्वक वमन क्रिया, समय समय पर शंखप्रक्षालन करना चाहिए। प्रात:काल नमकीन गुनगुने जल से जलनेति क्रिया करनी चाहिए इसके साथ-साथ त्राटक क्रिया का अभ्यास करने से मन शान्त और एकाग्र होने के साथ तनाव रोग में शीघ्र लाभ मिलता है।

2. **आसनों के अभ्यास द्वारा :** तनाव से मुक्त बने रहने के लिए प्रतिदिन योगासनों को अपनी दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए। योगासनों में प्रात:काल सूक्ष्म अभ्यास से प्रारम्भ करते हुए शरीर की क्षमतानुसार सूर्यनमस्कार, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास करना चाहिए। नियमित आसन करने से शरीर के आन्तरिक अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है जिससे शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में सन्तुलन स्थापित होता है। इसके साथ-साथ शरीर का वजन कम होता है और शारीरिक स्वास्थ्य उननत होने के साथ मानसिक तनाव का प्रबन्धन होता है।

3. **मुद्रा और बन्धों के अभ्यास द्वारा :** यौगिक मुद्राओं जैसे योगमुद्रा, बह्ममुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, महामुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। इसके साथ-साथ शरीर की क्षमतानुसार मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध और जालंधर बन्ध का अभ्यास करने ऊर्जा सन्तुलित होती है और तनाव रोग दूर होता है।

4. **प्रत्याहार के पालन द्वारा :** प्रत्याहार पालन अर्थात् इन्द्रियों पर संयम करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या और शुद्ध सात्विक आहार-विहार करने से मानसिक तनाव दूर करने में बहुत सहायता मिलती है।

5. **प्राणायाम के अभ्यास द्वारा :** अनुलोम-विलोम, नाड़ी शोधन उज्जायी, शीतली, सीत्कारी, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए।

6. **ध्यान के अभ्यास द्वारा :** मन में सकारात्मक भावों को ग्रहण करते हुए सकारात्मक विषयों का चिन्तन एवं ध्यान करने से मानसिक तनाव समूल दूर होता है। कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के लोगों ध्यान का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए इससे नकारात्मकता दूर होती है और सकारात्मकता का विस्तार होता है।

7. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियों द्वारा :** समाधि अर्थात् सुखद आनन्दायक अनुभूतियों को ग्रहण करना। अपने चारों ओर के वातावरण में सकारात्मक अनुभूतियाँ करते हुए अपनी पूरी क्षमताओं का सदुपयोग करने से आत्मविश्वास का स्तर उन्नत बना रहता है और तनाव का पूर्ण रुप से प्रबन्धन होता है।

उपरोक्त योगांगों के पालन के साथ सुव्यवस्थित एवं अनुशासित दिनचर्या, समय प्रबन्धन, शुद्ध और सात्विक आहार एवं जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के लोगों

में तनाव प्रबन्धन का महत्वपूर्ण भाग होता है। इनका पालन करने से इस क्षेत्र के लोगों का आचरण और व्यवहार श्रेष्ठ होने के साथ जीवन सदैव तनावमुक्त बना रहता है।

यूनिटगत प्रश्न 11.2

1. रिक्त स्थान भरिए –

   (क) तनाव की गंभीर अवस्था में ..... करने वाले प्राणायाम नहीं करनाा चाहिए।

   (ख) सेवा सेक्टर में ..... दृष्टिकोण की अधिक आवश्यकता होती है।

2. कॉरपोरेट एवं सेवा क्षेत्र में मानसिक तनाव को कोई एक मुख्य कारण बताईये।

3. कॉरपोरेट एवं सेवा क्षेत्र में यौगिक प्रबंधन के अंतर्गत किये जाने वाले किन्हीं दो प्राणायामों के नाम लिखए।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, इस यूनिट में तनाव के स्वरुप को विस्तार से समझाया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तनाव को परिभाषित करते हुए जीवन में तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारकों एवं तनाव के प्रमुख लक्षणों को समझाया गया है। यूनिट में जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण काल छात्र जीवन के महत्व को समझाते हुए इस अवस्था में तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारकों और लक्षणों को समझाया गया है। यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि यौगिक क्रियाओं के नियमित अभ्यास और आहार-विहार पर संयम के साथ सुव्यवस्थित दिनचर्या के पालन से छात्र जीवन में बहुत आसानी से तनाव प्रबन्धन किया जा सकता है। यूनिट के अध्ययन से साररुप से स्पष्ट होता है कि सामान्य जनों के साथ कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के जन भी यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते हुए और सकारात्मक जीवन दर्शन से अपने जीवन को तनाव मुक्त बना सकते हैं।

यूनिटांत प्रश्न

1. तनाव के अर्थ एवं स्वरुप को विभिन्न परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट कीजिए।

2. छात्रों में तनाव के यौगिक प्रबन्धन की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

3. सामान्यजनों में बढते तनाव के प्रमुख लक्षणों एवं यौगिक प्रबन्धन की सविस्तार चर्चा कीजिए।

4. कॉरपोरेट एवं सेवा सेक्टर के लोगों के यौगिक तनाव प्रबन्धन की व्याख्या कीजिए।

5. वर्तमान काल में बढते मानसिक तनाव की समस्या का यौगिक प्रबन्धन लिखिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

(क) सही (ख) सही (ग) गलत

11.2

1. (क) ऊर्जा वृद्धि (ख) सकारात्मक

2. शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने की समस्या

3. (i) अनुलोम-विलोम (ii) नाड़ी-शोधन

12

श्वसन एवं हृदय (कॉर्डियोवेस्कुलर) सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने तनाव में यौगिक प्रबन्धन के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि महिलाएँ यौगिक प्रबन्धन को अपनाकर विभिन्न रोगों से मुक्त रहती हुई अपने जीवन को सुखमय और सार्थक बना सकती हैं। प्रस्तुत यूनिट श्वसन और हृदय से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा है। मुनष्य भोजन के बिना कुछ दिनों तक, जल के अभाव में कुछ घन्टों तक जीवित रह सकता है किन्तु श्वास के अभाव में कुछ पलों में ही जीवन पर प्रश्न चिन्ह स्थापित हो जाती है। अर्थात् श्वसन क्रिया संसार के प्रत्येक प्राणधारी जीव की सबसे प्रमुख और महत्वपूर्ण क्रिया है। मनुष्य जन्म के साथ इस क्रिया के साथ जुड़ जाता है और जीवन पर्यन्त बिना रुके इस क्रिया को सम्पन्न करता रहता है। मानव शरीर में इस क्रिया का होना जीवन और इस क्रिया का रुक जाना ही मृत्यु कहलाता है।

वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन करें तो श्वास के माध्यम से शरीर ऑक्सीजन नामक प्राणदायी गैस को ग्रहण करता है। इस ऑक्सीजन को फेफड़ों से रक्त में ग्रहण कर लिया जाता है। फेफड़ों से ऑक्सीजन लेकर रक्त हृदय नामक महत्वपूर्ण अंग में जाता है। हृदय का प्रमुख कार्य इस ऑक्सीजन युक्त रक्त को सम्पूर्ण शरीर में भेजना होता है अर्थात् हृदय रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन गैस को सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं में भेज देता है। कोशिकाओं में भोजन से प्राप्त ग्लूकोज होता है जिसका ऑक्सीजन की उपस्थिति में दहन (ऑक्सीकरण) होता है। इस ऑक्सीकरण से शरीर के भीतर ऊर्जा की उत्पत्ति होती है जिसका उपयोग विभिन्न आन्तरिक और बाह्य कार्यों को करने में किया जाता है। इस प्रकार श्वसन तंत्र और हृदय तंत्र मिलकर शरीर को ऊर्जा प्रदान करने का कार्य निरन्तर करते रहते हैं। इन दोनों तंत्रों के स्वस्थ और सक्रिय होने पर शरीर ऊर्जावान बना रहता है जबकि इन तंत्रों में विकार उत्पन्न होने पर शरीर ऊर्जाहीन हो जाता है। प्रस्तुत यूनिट में श्वसन तंत्र और हृदय से सम्बन्धित रोगों के प्रमुख लक्षणों एवं इनकी यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। अर्थात् श्वसन और हृदय से सम्बन्धित रोगों के क्या-क्या लक्षण होते हैं जिससे इन रोगों की पहचान (Diagnose) की जा सकती है और इन रोगों की यौगिक चिकित्सा किस

प्रकार की जा सकती है? प्रस्तुत यूनिट में इन्ही महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर सविस्तार विचार किया गया है।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धी रोगों के सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धी रोगों के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे;
- श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धी रोगों की यौगिक चिकित्सा को व्यवहार में ला सकेंगे।

12.1 श्वसन तंत्र के प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, आधुनिक समय में फैक्ट्रियों और यातायात के साधनों से निकलने वाले धुएँ, वातावरण में प्रयोग हो रहे रासायनिक कीटनाशक जहरों, जनसंख्या विस्फोट और अग्निहोत्र (हवन) नहीं करने आदि कारकों ने पर्यावरण असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। वर्तमान समय में वातावरण में प्रदूषण के स्तर को देखर प्रत्येक पर्यावरणीय वैज्ञानिक (Ecologist) के माथे पर चिन्ता की गहरी लकीरें उभर कर आती हैं। इसके साथ-साथ विकृत खान-पान और मानसिक तनाव के कारण मनुष्यों में श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की बाढ़ सी आयी हुई है। इन रोगों से ग्रस्त होने पर श्वसन क्रिया बाधित होने से शरीर में ऊर्जा उत्पादन की दर कम हो जाती है और शरीर ऊर्जाहीन और शक्तिहीन हो जाता है। मानव शरीर में श्वसन तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग निम्न होते हैं-

12.1.1 साइनोसाइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

यह श्वसन तंत्र का बहुत तेजी से बढ़ता रोग है जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में साइनस के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग में नासिका के चारों और सूजन के साथ तेज सिर दर्द होने लगता है जिसमें दर्दनिवारक दवाईयों से भी आराम नहीं मिल पाता है।

चित्र 12.1: साइनोसाइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. नासिका के भीतर की झिल्ली में बैक्टिरिया या फंगस के संक्रमण के कारण नासिका क्षेत्र में दर्द के साथ सूजन होना।
2. लगातार जुकाम के साथ श्लेष्मा का अधिक स्रावण होना।
3. नासिका के चारों ओर चेहरे पर सूजन आ जाना।
4. शरीर में शक्तिहीनता के साथ तेज सिरदर्द रहना।
5. नासिका में गन्ध ग्रहण करने की शक्ति क्षीण हो जाना।
6. नासिका में साइनस की जगहों पर दबाने से दर्द होना।
7. नाक की हड्डी बढ़ना अथवा टेढ़ी होने के कारण श्वास लेने में आवाज के साथ परेशानी होना।
8. खांसी के साथ नासिका में कफ जम जाना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण श्वसन तंत्र के साइनस रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.1.2 टॉन्सिलाइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर में गले के दोनों ओर दो टॉन्सिल नामक ग्रन्थियाँ उपस्थित रहती है जिनका कार्य बाह्य रोगाणु अथवा विषाणुओं से शरीर की सुरक्षा करना होता है। इन ग्रन्थियों को लिम्फ ग्रन्थियाँ कहा जाता है। अचानक मौसम परिवर्तन, ठण्डे पदार्थों का अधिक सेवन और अव्यवस्थित दिनचर्या के परिणाम स्वरुप जब इन ग्रन्थियों में संक्रमण हो जाता है तब इनके आकार में वृद्धि के साथ तीव्र वेदना होने लगती है जिसे टॉन्सिलाइटिस रोग कहा जाता है। श्वसन तंत्र का यह रोग पहले बच्चों में अधिक पाया जाता था परन्तु अब यह युवाओं को भी चपेट में ले रहा है।

चित्र 12.2: टॉन्सिलाइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. गले में स्थित टॉन्सिल ग्रन्थियों में संक्रमण के कारण इस क्षेत्र में दर्द के साथ सूजन होना।
2. गले में कफ की अधिकता के साथ खराश होना।

3. गले में तीव्र वेदना के साथ कुछ भी निगलने में बहुत परेशानी होना।
4. गले से लेकर कानों तक दर्द एवं खुजली होना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ बुखार से ग्रस्त हो जाना।
6. बोलने में परेशानी के साथ आवाज परिवर्तित हो जाना।
7. गर्दन में दर्द के साथ सिरदर्द होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण श्वसन तंत्र के टॉन्सिलाइटिस रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.1.3 ब्रोंकाईटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर की वक्षीय गुहा में दो फेफड़े उपस्थित होते हैं यह बहुत महत्वपूर्ण और कोमल रचनाएँ होती हैं जिनके भीतर श्वसनी और श्वसनिकाओं का जाल फैला होता है जिनके माध्यम से श्वास की वायु फेफड़ों तक जाती है। इन श्वसनी में बाह्य रोगाणु अथवा विषाणुओं से संक्रमण होने पर इनमें सूजन उत्पन्न हो जाती है जिसे ब्रोन्काईटिस (श्वसनी शोथ) रोग कहा जाता है।

चित्र 12.3: ब्रोंकाईटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. श्वसनियों में संक्रमण के कारण वक्ष प्रदेश में तीव्र दर्द होना।
2. कफ की अधिकता के साथ खांसी होना एवं खांसते समय बहुत परेशानी होना।
3. श्वसन क्रिया अव्यवस्थित होने के साथ श्वास फूलना।
4. श्वसन गति में वृद्धि के साथ नाड़ी दर बढ़ जाना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।
6. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ बच्चों में निमोनिया हो जाना।
7. लगातार नाक बहना और भूख नहीं लगना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण श्वसन तंत्र के ब्रोन्काईटिस रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.1.4 अस्थमा (दमा) रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

आधुनिक समाज में श्वसन तंत्र का यह रोग बहुत तेजी से बढ़ रहा है। पहले यह एक बुढ़ापे का रोग माना जाता है परन्तु मानसिक तनाव और रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने के कारण आजकल यह रोग बच्चों और युवाओं में भी बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है यह रोग विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में अधिक फैल रहा है। यह रोग व्यक्ति की जीवनी शक्ति को इतना कमजोर बना देता है कि एक बार शरीर में प्रवेश करने के बाद जीवन भर के लिए जुड़ जाता है।

चित्र 12.4: अस्थमा (दमा) रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. अचानक श्वसन क्रिया तीव्र होने के साथ अनियमित और अव्यवस्थित होना।
2. बहुत खाँसी उठना और खाँसते-खाँसते व्यक्ति का होश खो देना।
3. रात्रि में खाँसी आना और प्रात:काल नियमित रुप से लगातार खाँसी उठना।
4. सामान्य कार्य करने पर ही श्वास फूलना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।
6. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ आलस्य और भारीपन का बने रहना।
7. कफ के साथ खाँसी का लम्बे समय तक बने रहना।
8. वक्ष प्रदेश में दर्द के साथ शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण अस्थमा या दमा रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.2 श्वसन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, योग का प्रारम्भ अनुशासन से होता है अत: सर्वप्रथम सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं आहार-विहार पर नियंत्रण के साथ साफ-स्वच्छ वातावरण में वास करने से श्वसन तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ श्वसन तंत्र के रोगों में यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, मुद्रा-बंध, प्राणायाम एवं ध्यान आदि का अभ्यास रोग दूर करने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। इन यौगिक क्रियाओं का अभ्यास कराने से श्वसन रोगी को तुरन्त लाभ मिलने लगता

है तथा लम्बे समय तक इन क्रियाओं का नियमित अभ्यास कराने से रोगी के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होने लगता है। श्वसन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा इस प्रकार है–

1. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करना :** श्वसन तंत्र के रोगों का सम्बन्ध कफ दोष की विकृति से होता है अत: कफ दोष को सम बनाने के लिए षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। इन शुद्धिक्रियाओं में श्वसन रोगी को प्रात:काल नमकीन गुनगुने जल से वमन और कुंजल क्रिया का अभ्यास करना चाहिए। कुशल निर्देशन में वस्त्रधौति क्रिया का अभ्यास करने में अस्थमा रोगी को विशेष लाभ की प्राप्ति होती है। इसके साथ-साथ नियमित रुप से जलनेति और सूत्रनेति का अभ्यास करने से विकृत कफ शरीर से बाहर निकलता है और नासिका प्रदेश का शोधन होने के साथ रोगी को आराम की अनुभूति होती है। त्राटक क्रिया के अभ्यास से भी रोगी का तनाव दूर होकर मानसिक शान्ति प्राप्त होती है जिससे श्वसन दर कम होने के साथ रोग में आराम मिलता है। श्वसन तंत्र के रोगों में रोगी को नियमित रुप से कपालभाति क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

2. **आसनों का अभ्यास करना :** श्वसन रोगी को नियमित रुप से प्रात:कालीन भ्रमण और आसनों का अभ्यास करते हुए अपनी जीवन शक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने का प्रयास करना चाहिए। रोग की तीव्र अवस्था में सूक्ष्म अभ्यास और वार्म अप एक्सरसाईज करनी चाहिए और रोग की स्थिति सामान्य होने पर शक्ति और सार्मथ्य के अनुसार सूर्यनमस्कार, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, मरकटासन, चक्रासन, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। आसनों के उपरान्त शरीर शिथिलीकरण हेतु योग निद्रा का नियमित अभ्यास करना चाहिए।

3. **मुद्रा और बन्धों का अभ्यास करना :** श्वसन रोगी को आन्तरिक ऊर्जा जाग्रत करने के उद्देश्य से मुद्रा और बन्धों का अभ्यास करना चाहिए। इसमें यौगिक मुद्राओं जैसे योगमुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, काकी मुद्रा, महामुद्रा, तड़ाकी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। इनके साथ-साथ मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध और जालंधर बन्ध का अभ्यास करते हुए शरीर को रोगमुक्त और ऊर्जावान बनाना चाहिए।

4. **प्राणायाम का अभ्यास करना :** श्वसन रोगी को रोगमुक्त होने के लिए प्रतिदिन विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इससे प्राणशक्ति और जीवनी शक्ति का विस्तार एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर और मन के मध्य सन्तुलन स्थापित होता है और नाड़ियों का मल दूर होने के साथ चित्त निर्मल और मन प्रसन्न होता है। श्वसन तंत्र के रोगों में सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, भस्त्रिका और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। इसके साथ-साथ फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने के लिए दीर्घ प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का लम्बा जप करना चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन करना :** श्वसन तंत्र के रोगों में प्रत्याहार पालन अर्थात् अपनी इन्द्रियों पर संयम करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। प्रत्याहार का पालन करते हुए सुव्यवस्थित

दिनचर्या और शुद्ध सात्विक एवं शरीर के लिए हितकारी (कफदोष नाशक) उष्ण प्रकृति के आहार का सेवन करने से रोग में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। श्वसन रोगी को ठंडे जल का सेवन का त्याग करते हुए सदैव उष्ण जल का सेवन करना चाहिए।

6. **ध्यान का अभ्यास करना :** श्वसन तंत्र के रोगों में तनाव से ग्रस्त रहने पर रोग बहुत गंभीर रुप धारण कर लेता है और रोगावस्था बढ़ती चली जाती है जबकि इसके विपरीत इस अवस्था में सकारात्मक धारणा बनाते हुए ध्यान और प्रार्थना का अभ्यास करने से रोग में आराम मिलना प्रारम्भ हो जाता है। श्वसन रोगी को प्रतिदिन विधिपूर्वक ध्यान का अभ्यास एवं ईश्वर से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिए।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियों द्वारा :** श्वसन तंत्र के रोगी को सकारात्मक विषयों का ध्यान करते हुए अपने चारों ओर सकारात्मक वातारण का निर्माण करना चाहिए। अपने सभी कार्य पूर्ण मनोयोग से करते हुए जीवन की सभी समस्याओं का सामना धैर्य और चुनौति के साथ करते हुए उत्साह, उमंग, हर्ष और आनन्द की अनुभूतियाँ करते हुए सकारात्मक भावों के साथ जीवन यापन करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त योगांगों का पालन करते हुए यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करने से श्वसन तंत्र के सभी रोग समूल दूर होकर व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोगी को निम्न वर्णित अपथ्य आहार का त्याग करते हुए केवल पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए। श्वसन तंत्र के रोगी को निम्न पथ्य-अपथ्य आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए-

अपथ्य आहार: गरिष्ठ तेलयुक्त खाद्य पदार्थ, शीत प्रकृति के खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मिठाईयाँ, बर्फ-आईसक्रीम, दही-मठ्ठा एवं फ्रिज के ठंडे जल का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य आहार, उष्ण प्रकृति के खाद्य पदार्थ जैसे अदरक, सौंठ, इलायची, काली मिर्च, अजवायन, तुलसी, सब्जियों का गर्म सूप, विटामिन ए और सी युक्त ताजे फल, चोकर युक्त आटे की रोटिया एवं गर्म जल का सेवन करना चाहिए।

12.3 हृदय से सम्बन्धित प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राचीन काल में जब वातावरण प्रदूषण से मुक्त था और मनुष्य का आहार पूर्ण रुप से प्राकृतिक था। मनुष्य निश्चित दिनचर्या के अन्तर्गत समय पर उठने से लेकर सभी कार्य सुव्यवथित रुप से करता हुआ तनावमुक्त रहता था, उस समय मनुष्य का हृदय पूर्ण रुप से रोगों से मुक्त रहता था। परन्तु वर्तमान समय में प्रदूषित वातावरण के साथ, कृत्रिम रासायनों से युक्त आहार करना और अव्यवस्थित दिनचर्या के साथ मानसिक तनाव से ग्रस्त रहना, ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिनके कारण हृदय रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आ गयी है। वर्तमान समय में हृदय रोग सम्पूर्ण विश्व के समक्ष बहुत बड़ी चुनौति के रुप में उभर रहें है। विश्व में हृदय रोगों

के कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और रक्तचाप की समस्या को सबसे बडी महामारी घोषित किया गया है। इन रोगों से स्वयं को बचाने के लिए एवं रोगों के उपचार में नियमित योगाभ्यास एवं यौगिक चिकित्सा बहुत प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती है। प्रस्तुत यूनिट में यहाँ पर हृदय से सम्बन्धित प्रमुख रोगों एवं उनकी यौगिक चिकित्सा पर विचार करते हैं। मानव शरीर में हृदय से सम्बन्धित प्रमुख रोग निम्न होते हैं-

12.3.1 कोरोनरी आटरी रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

यह हृदय से सम्बन्धित ऐसा रोग है जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। विकृत आहार-विहार अथवा अन्य कारणों जब शरीर में हृदय से सम्बधित धमनियों में वसा जमने के कारण इनका आकार संकरा हो जाता है तब उस स्थिति में हृदय में रक्त का संचार की क्रिया बाधित होने लगती है और सीने में तीव्र चुभन के साथ दर्द उत्पन्न होता है जिसे कोरोनरी आटरी डिजीज कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी व्यक्ति की शल्य चिकित्सा एन्जियोप्लास्टी कराई जाती है किन्तु इससे भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं होता है। अपितु पुनः इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

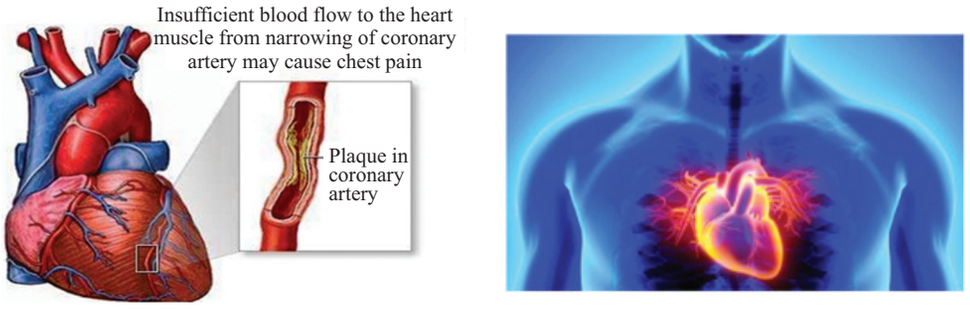

चित्र 12.5: कोरोनरी आटरी रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ सुई के समान चुभन का होना इस रोग का सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण लक्षण होता है।
2. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ दिल का दौरा भी पड जाता है।
3. दीर्घ श्वास में परेशानी होने के साथ छोटी श्वासें आना एवं श्वासों का फूलना।
4. सीने में दर्द के साथ जी मिचलाना।
5. असामान्य रुप से बिना कार्य किए हुए बहुत थकान होना।
6. वक्ष में सूजन के साथ ठंडा पसीना आना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण हृदय से सम्बन्धित कोरोनरी आटरी डिजीज रोग की ओर संकेत करते हैं। कुछ परिस्थितियों में मनुष्य इसे पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मानकर पाचन तंत्र

में जलन मान लेता है किन्तु ऐसी अवस्थाओं में बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि आगे चलकर यह गंभीर हृदयाघात (Heart attack) का कारण भी बन सकता है।

12.3.2 एंजाइना पेक्टोरिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर के वक्ष स्थल में बांयी ओर उठने वाले दर्द को कई बार पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मानकर इसे अनदेखा कर दिया जाता है जबकि कई बार मनुष्य इसे हृदयाघात मानकर बहुत परेशान हो जाता है जबकि वास्तव में यह हृदय का एंजाइना पेक्टोरिस रोग होता है जिसमें हृदय की मांसपेशियों को कम मात्रा में रक्त आपूर्ति होने कारण वक्ष के बायें भाग में दर्द के साथ श्वास लेने में परेशानी होती है।

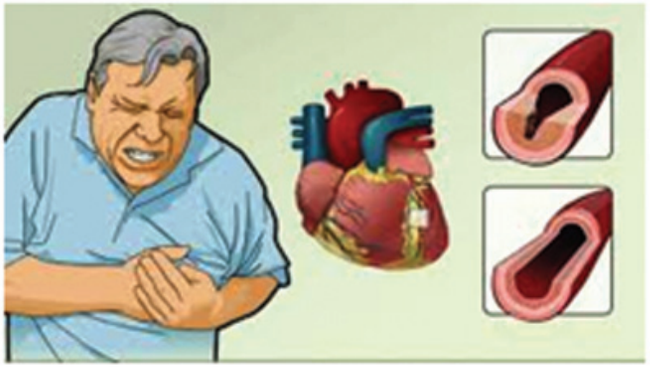

चित्र 12.6: एंजाइना पेक्टोरिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर में एंजाइना पेक्टोरिस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. सीने में बांयी ओर हल्का अथवा तेज दर्द होना इस रोग का सबसे प्रमुख मूल लक्षण होता है जो इस रोग की ओर संकेत करता है।
2. छाती में जलन के साथ बैचेनी महसूस होना।
3. सीने में जकड़न के साथ भारीपन महसूस होना।
4. सीने का दर्द कन्धों, गले और पीठ की ओर भी फैलना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ कार्य करने में रुचि का अभाव होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण हृदय के एंजाइना पेक्टोरिस रोग की ओर संकेत करते हैं। इस रोग की जांच के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम (ई.सी.जी.) कराया जाता है।

12.3.3 रक्तचाप रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर में सामान्यतया 5.5 लीटर रक्त उपस्थित होता है। इस रक्त की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि शरीर में रक्त किसी भी स्थान पर रुकता नहीं है अपितु प्रतिक्षण हृदय और

रक्तवाहिनियों में परिभ्रमण करता रहता है। शरीर में रक्त जिस दबाव के साथ हृदय से रक्तवाहिनियों में बहता है उसे रक्तचाप कहा जाता है। जब हृदय सिकुडता है तो 120 m.m. of Hg. का दबाव होता है जिसे सिस्टोलिक प्रेशर और जब हृदय फैलता है तो 80 m.m. of Hg. का दबाव होता है जिसे डायस्टोलिक प्रेशर कहा जाता है। इस प्रकार स्वस्थ मनुष्य का रक्त चाप 120-80 m.m. of Hg. होता है। जिसे स्फेग्मोमेनोमीटर नामक यंत्र की सहायता से मापा जाता है। परन्तु जब किन्ही कारणों या परिस्थितियों के प्रभाव से रक्तचाप इस सामान्य स्तर से अधिक अथवा कम होता है तब उस अवस्था को रक्तचाप रोग की संज्ञा दी जाती है। रक्तचाप सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़ी महामारी है जिससे ग्रस्त होने वाले रोगियों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

चित्र 12.7: रक्तचाप रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के दो प्रमुख प्रकार होते हैं। प्रथम उच्चरक्तचाप में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. तेज सिरदर्द के साथ पसीना आना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अचानक तेज हो जाना।
3. हाथों-पैरों में सूक्ष्म कम्पन होने के साथ श्वास फूलना।
4. संवेगों पर नियंत्रण का अभाव होने के साथ अधिक क्रोध और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना।
5. बैचेनी के साथ नींद में कमी होना और नाक से खून निकलना उच्चरक्तचाप के लक्षण हैं।

इस रोग का दूसरा प्रकार निम्न रक्तचाप होता है जिसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. सिर में हल्का दर्द के साथ हाथ-पैर ठंडे रहना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अनियमित हो जाना।
3. हाथों-पैरों में शक्तिहीनता के साथ कार्य में मन नहीं होना।
4. जी मिचलाना, उल्टी होना, धुंधला दिखलाई देना और बेहोशी होना निम्न रक्तचाप रोग के लक्षण हैं।

शरीर में उपरोक्त लक्षण रक्तचाप रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.3.4 इस्किमिक हृदय रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, जैसा कि यूनिट में हमनें हृदय से सम्बन्धित कोरोनरी आटरी डिजीज का अध्ययन किया है यह ठीक उसी के समान रोग है जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। अमेरिका जैसे विकसित देश में इस रोग के लाखों की संख्या में मामले आते हैं। इस रोग में भी जब शरीर में हृदय से सम्बंधित धमनियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं अथवा धमनियों में वसा जमने के कारण इनका आकार संकरा हो जाता है तब उस स्थिति में हृदय में रक्त का संचार की क्रिया बाधित होने लगती है और सीने में तीव्र चुभन के साथ दर्द उत्पन्न होता है जिसे इस्किमिक हृदय रोग कहा जाता है।

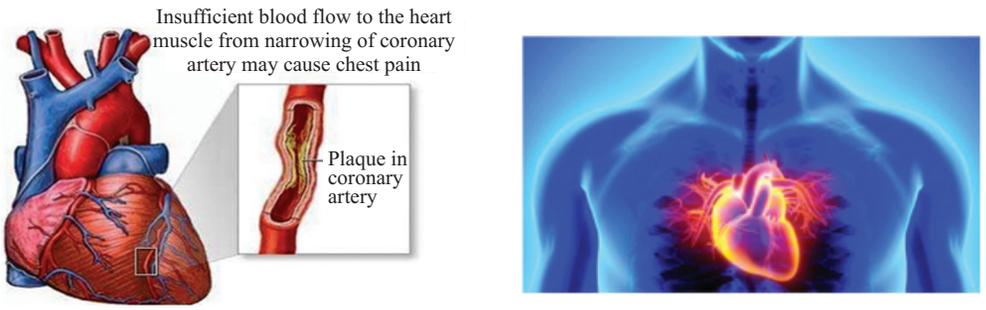

चित्र 12.8: इस्किमिक हृदय रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ सुई के समान चुभन का होना इस रोग का सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण लक्षण होता है।
2. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ दिल का दौरा भी पड़ जाता है।
3. दीर्घ श्वास में परेशानी होने के साथ छोटी श्वासें आना एवं श्वासों का फूलना।
4. सीने में दर्द के साथ जी मिचलाना।
5. असामान्य रुप से बिना कार्य किए हुए बहुत थकान होना।
6. वक्ष में सूजन के साथ ठंडा पसीने की अनुभूति होना।

इस प्रकार शरीर में उपरोक्त लक्षण इस्किमिक हृदय रोग की ओर संकेत करते हैं।

12.3.5 वेरिकोज शिरा रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, जैसा कि यूनिट में हमनें यह अध्ययन किया है कि मानव शरीर में हृदय से ऑक्सीजन युक्त रक्त सम्पूर्ण शरीर के अंगों, ऊतकों और कोशिकाओं तक जाता है जहाँ पर रक्त से ऑक्सीजन ऊतक ग्रहण कर लेते हैं और कार्बन-डाई ऑक्साईड रक्त को दे देते हैं। कार्बन-डाई ऑक्साईड को लेकर रक्त वेन्स के माध्यम से वापिस हृदय में आता है। इस अवस्था में रक्त गुरुत्वार्कषण बल के विरुद्ध ऊपर की ओर आता है अत: इसमें बल की आवश्यकता होती है। इस बल को पैरों में स्थित मांसपेशियों से प्राप्त किया जाता है। परन्तु बढती उम्र के प्रभाव से

अथवा अन्य कारणों से जब अशुद्ध रक्त वापिस हृदय में नहीं जा पाता है और वेनस् में ही एकत्र होने लगता है तब इस रोगावस्था को वेरिकोज शिरा (Varicose Veins) का नाम दिया जाता है। वर्तमान समय में यह रोग सम्पूर्ण विश्व में तेजी से फैलता जा रहा है जिसमें पैरों पर नीली और लाल रंग की नसें असामान्य रुप से उभार लिए हुए अगल से दिखलाई पड़ती हैं।

चित्र 12.9: वेरिकोज शिरा रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पैरों पर नीली और लाल रंग की नसें असामान्य रुप से उभार लिए हुए अलग से दिखलाई पड़ना इस रोग का सबसे प्रमुख एवं मूल लक्षण है।
2. पैरों के इन भागों में भारीपन के जलन की अनुभूति होती है।
3. लम्बे समय तक लगातार खड़े होकर कार्य करने से उपरोक्त समस्या बढ़ने लगती है।
4. रोग की गंभीर अवस्था में त्वचा के रंग में परिवर्तन, त्वचा में सूजन और नसों में कठोरता (स्टिफनेस) आने लगती है।
5. पैर के टखने के पास से इसका क्षेत्र फैलने लगता है और इस स्थान पर खुजली, जलन और बैचेनी होने लगती है।

इस प्रकार शरीर में उपरोक्त लक्षण वेरिकोज शिरा रोग की ओर संकेत करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 12.1

सही/गलत बताइए :

(क) साइनोसाइटिस श्वसन तंत्र का बहुत तेजी से बढ़ता रोग है। ( )

(ख) मानव शरीर में समान्यतया 5.5 लीटर रक्त उपस्थित होता है। ( )

(ग) सिर में हल्का दर्द के साथ हाथ-पैर ठंडे होना निम्न रक्तचाप का लक्षण है। ( )

12.4 हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय में हृदय रोग और रक्तचाप की समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए बहुत बडी चुनौति बनी हुई है। इस समस्या से निपटने के लिए अनेक अनुसंधान कार्य किए जा रहें हैं किन्तु इस समस्या का स्थाई समाधान अभी तक भी प्राप्त नहीं हो पाया है। विश्व में इन रोगों से ग्रस्त होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्य की संख्या सबसे अधिक है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इन रोगों को असाध्य रोगों की श्रेणी में रख दिया है जिनका स्थाई उपचार संभव नहीं होता है अपितु, एक बार इन रोगों की चपेट में आने के बाद मनुष्य दवाईयों के प्रभाव से केवल इन रोगों के लक्षणों को दबाए रख सकता है और इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करना संभव नहीं है। इसलिए विषय की गंभीरता को समझते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रतिवर्ष 29 सितम्बर को 'विश्व हृदय दिवस' घोषित किया हुआ है। इसका उद्देश्य हृदय रोगों के प्रति जागरुकता उत्पन्न करते हुए इससे सम्बन्धित रोगों पर नियंत्रण प्राप्त करना है।

इन रोगों का यौगिक चिकित्सा के माध्यम से बहुत कुशलतापूर्वक प्रबन्धन किया जा सकता है। योगमय जीवनशैली और यौगिक क्रियाओं के प्रभाव से हृदय रोगों एवं रक्तचाप के रोगों से बचा जा सकता है अपितु, इन रोगों के लक्षणों को स्थाई रुप से दूर करते हुए इनसे सदैव के लिए मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है। इसलिए सम्पूर्ण विश्व में अनेक लोग यौगिक क्रियाओं का नियमित अभ्यास करते हुए इन गंभीर रोगों से मुक्ति प्राप्त कर रहें हैं। चूंकि योग का प्रथम सूत्र– 'अथ योगानुशासनम।' अनुशासन के साथ जुड़ने की प्रेरणा प्रदान करता है अत: सर्वप्रथम सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं आहार–विहार पर नियंत्रण के साथ स्वयं को अनुशासित और सकारात्मक करने से हृदय रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ हृदय रोगों में यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, मुद्रा–बंध, प्राणायाम एवं ध्यान आदि का अभ्यास भी विधिपूर्वक पूर्ण श्रद्धा और विश्वासपूर्वक करने से यह रोग समूल नष्ट होते हैं। इन यौगिक क्रियाओं का अभ्यास एवं योगांगों का पालन करने से रक्तचाप एवं हृदय रोगों में तुरन्त लाभ मिलने लगता है तथा लम्बे समय तक इन क्रियाओं का नियमित दिनचर्या से विधिपूर्वक अभ्यास कराने से रोगी के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होने लगता है। हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा इस प्रकार है–

1. **षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगों का सम्बन्ध रक्त की अशुद्धि से होता है अत: रक्त को शुद्ध बनाने के लिए षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। इन शुद्धिक्रियाओं में पाचन तंत्र को स्वच्छ निर्मल बनाने के लिए शरीर की क्षमता और आवश्यकता अनुसार कुंजल और वमन क्रिया के साथ शंखप्रक्षालन का अभ्यास रोगी को करना चाहिए। यहाँ महत्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य यह है कि उच्च रक्तचाप की अवस्था में गर्म पानी में नमक का प्रयोग नहीं करना चाहिए अपितु, नमक के स्थान पर सौंफ को उबालकर और छानकर पानी का प्रयोग वमन, कुंजल, शंखप्रक्षालन अथवा नेति क्रिया में करना चाहिए। रोगी व्यक्ति को नित्य नेति क्रिया का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास परिपक्व होने पर विधिपूर्वक जलनेति के साथ सूत्रनेति का अभ्यास करने से इन रोगों में आराम मिलता है। त्राटक क्रिया का नियमित अभ्यास से भी रोगी का तनाव दूर होकर मानसिक शान्ति प्राप्त होती है जिससे हृदय को बल और आराम मिलता है। इस

अवस्था में कपालभाति क्रिया का तेजी से अभ्यास करना वर्जित होता है क्योंकि इससे हृदय पर दबाव पड़ने के साथ रक्तचाप में वृद्धि होती है और रोगी की समस्या बढ़ सकती है।

2. **आसनों का अभ्यास करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगी के लिए प्रात:कालीन भ्रमण और आसनों का अभ्यास बहुत लाभकारी होता है। प्रात:काल सूर्योदय पूर्व उठकर सकारात्मक मनन-चिन्तन करते हुए भ्रमण एवं आसनों का अभ्यास करने से रोग में लाभ प्राप्त होता है। रक्तचाप एवं हृदय रोगी को कठिन आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए अपितु, सूक्ष्म अभ्यासों और वार्म अप एक्सरसाईज अधिक करनी चाहिए। रोग की स्थिति सामान्य होने पर अपनी शक्ति और सार्मथ्य के अनुसार सूर्यनमस्कार एवं सामान्य आसनों जैसे ताड़ासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, पवनमुक्तासन, मरकटासन, भुजंगासन, वक्रासन, उष्ट्रासन, सिंहासन, शशांकासन, पद्मासन, सिद्धासन और स्वस्तिकासन आदि आसनों का अभ्यास नियमित रुप से करना चाहिए। महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि शशांकासन का अभ्यास बहुत लाभ प्रदान करता है एवं हृदयाघात की संभावना को कम करता है जबकि शीर्षासन का अभ्यास इन रोगों में वर्जित होता है। आसनों के उपरान्त शरीर शिथिलीकरण हेतु योग निद्रा का नियमित अभ्यास उच्चरक्तचाप एवं हृदय रोगी को अवश्य करना चाहिए।

3. **मुद्रा और बन्धों का अभ्यास करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगी को आन्तरिक ऊर्जा जाग्रत करने के उद्देश्य से मुद्रा और बन्धों का अभ्यास करना चाहिए। इसमें यौगिक मुद्राओं जैसे योगमुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, काकी मुद्रा, महामुद्रा, तड़ाकी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। इनके साथ-साथ मूल, उड्डियान और जालंधर बन्धों के अभ्यास करते हुए शरीर को रोगमुक्त और ऊर्जावान बनाना चाहिए।

4. **प्राणायाम का अभ्यास करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगी को रोगमुक्त होने के लिए प्रतिदिन विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इससे प्राणशक्ति और जीवन शक्ति का विस्तार एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम का अभ्यास क्रम में अधिकतम समय अनुलोम-विलोम और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इनके साथ-साथ रक्तचाप सामान्य होने की अवस्था में सूर्यभेदी प्राणायाम का अभ्यास एवं बहुत धीमी गति से भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास अतिरिक्त वसा को नष्ट करने के उद्देश्य से किन्तु बहुत सावधानी और ध्यानपूर्वक करना चाहिए। इनके साथ-साथ शान्त एवं स्थिर मन के साथ हृदय की कार्यक्षमता में वृद्धि करने के लिए दीर्घ प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का लम्बे स्वर में श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिए।

5. **प्रत्याहार के पालन करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगों में प्रत्याहार पालन अर्थात् अपनी इन्द्रियों पर संयम करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। प्रत्याहार का पालन करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या और शुद्ध सात्विक एवं शरीर के लिए हितकारी आहार का सेवन करने से रोग में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। उच्च रक्तचाप की अवस्था में इन्द्रियों पर संयम करते हुए नमक-मिर्च और मसाले का त्याग कर देना चाहिए। इन्द्रियों पर संयम करते हुए क्रोध एवं अन्य संवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

6. **ध्यान का अभ्यास करना :** रक्तचाप एवं हृदय रोगों में मानसिक तनाव बहुत नकारात्मक प्रभाव रखता है और तनाव से ग्रस्त रहने सम्बन्धित रोग बहुत गंभीर रुप धारण करते चले जाते हैं जिनका कोई उपचार भी संभव नहीं होता है अत: इस अवस्था में मानसिक तनाव का पूर्ण रुप से त्याग करते हुए सकारात्मक धारणा, ध्यान और प्रार्थना का अभ्यास करना चहिए। स्थूल विषयों पर ध्यान की प्रक्रिया को बढ़ाते हुए ज्योर्तिध्यान और सूक्ष्म ध्यान का अभ्यास करने से इन रोगों में स्थाई लाभ मिलना प्रारम्भ हो जाता है। हृदय रोगी को प्रतिदिन विधिपूर्वक ध्यान का अभ्यास एवं ईश्वर से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिए।

8. **समाधि की सकारात्मक अनुभुतियों द्वारा :** रक्तचाप एवं हृदय रोगी को सकारात्मक विषयों का ध्यान करते हुए अपने चारों ओर सकारात्मक वातारण का निर्माण करना चाहिए। अपने सभी कार्य पूर्ण मनोयोग से करते हुए और तनाव से मुक्त रहकर जीवन की सभी समस्याओं का सामना धैर्य और चुनौति के साथ करते हुए अपने जीवन को आर्दश बनाने का प्रयास करना चाहिए। नकारात्मक अनुभूतियों से रोग का प्रकोप बढ़ता है जबकि उत्साह, उमंग, हर्ष और आनन्द की अनुभूतियाँ करते हुए सकारात्मक भावों के साथ जीवनयापन करने से रोगवस्था से सदैव के लिए मुक्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार उपरोक्त योगांगों का पालन करते हुए यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करने से रक्तचाप एवं हृदय के सभी रोग समूल दूर होकर व्यक्ति को उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत रक्तचाप एवं हृदय रोगी को निम्न वर्णित अपथ्य आहार का त्याग करते हुए केवल पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए। रक्तचाप एवं हृदय रोगी को निम्न पथ्य-अपथ्य आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए-

अपथ्य आहार: नमक, मिर्च, मसाले, वसा, डालडा, घी-तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मलाई, मिठाईयाँ, बर्फ-आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स आदि का त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य आहार, गेहूँ-जौ और चना मिलाकर चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, दलिया, लौकी, तुरई, टमाटर, नींबू, विटामिन ए और सी युक्त ताजे फल जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, नारियल पानी आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 12.2

रिक्त स्थान भरिए -

(क) स्वस्थ मनुष्य का रक्तचाप ..... होता है।

(ख) रक्तचाप को ..... नामक यंत्र से मापा जाता है।

(ग) रक्तचाप व हृदय रोगियों के लिए शीर्षासन ..... होता है।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में श्वसन तंत्र के रोगों एवं हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में श्वसन तंत्र के चार महत्वपूर्ण रोगों : साइनोसाइटिस, टॉन्सिलाईटिस, ब्रोन्काइटिस और अस्थमा के सामान्य परिचय के साथ इन रोगों के प्रमुख लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् श्वसन तंत्र के रोगों में यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के इस भाग में रोगियों को कराए जाने वाले योगाभ्यास के साथ अन्य सावधानियों जैसे पथ्य आहार के स्वरुप को भी स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार यूनिट में आगे रक्त परिसंचरण तंत्र के रोगों को समझाते हुए उनकी यौगिक चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है।

यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि योगाभ्यास शरीर के लिए लाभकारी क्रियाएँ होती हैं किन्तु रोग विशेष की अवस्था में यौगिक क्रियाएँ बहुत सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता होती है। जैसे उच्चरक्तचाप एवं हृदय रोग से ग्रस्त होने पर नेति क्रिया में नमक के स्थान पर सौंफ के जल का प्रयोग करना चाहिए और इसी प्रकार ऐसी अवस्था में रोगी व्यक्ति के द्वारा शीर्षासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। यूनिट में यौगिक चिकित्सा के सभी महत्वपूर्ण अंगों को क्रमानुसार रोग के साथ जोड़कर समझाया गया है और अन्त में रोगावस्था में रोगी के लिए लाभकारी पथ्य और रोगी के लिए हानिकारक अपथ्य आहार का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यूनिट में श्वसन और हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन किया गया है।

यूनिटांत प्रश्न

1. श्वसन रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार व्याख्या कीजिए।
3. वेरिकोज शिरा रोग का समामान्य परिचय देते हुए इसकीं यौगिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
4. अस्थमा रोग के प्रमुख कारण समझाते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा लिखिए।
5. टिप्पणियाँ लिखिए–

   (क) साइनोसाइटिस रोग के लक्षण (ख) रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

(क) सही (ख) सही (ग) सही

12.2

(क) 120-80 mm of Hg (ख) स्फेग्मोमेनोमीटर (ग) वर्जित

13

पाचन एवं मूत्र-जनन सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने श्वसन तंत्र एवं हृदय से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि योगमय जीवनशैली अर्थात् आहार-विहार के साथ यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से मानव शरीर के इन महत्वपूर्ण संस्थानो को स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त बनाया जा सकता है। अब यहाँ पर महत्वपूर्ण तथ्य है कि जिस प्रकार श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धित रोगों का यौगिक चिकित्सा के द्वारा उपचार किया जा सकता है, उसी प्रकार पाचन और उत्सर्जन तंत्र के विकारों को भी किस प्रकार यौगिक चिकित्सा के द्वारा ठीक किया जा सकता है। प्रस्तुत यूनिट का विषय पाचन और उत्सर्जन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा है। मानव शरीर के सभी तंत्रों में पाचन तंत्र का स्थान सबसे विशिष्ट होता है क्योंकि शरीर के सभी तंत्रों को क्रियाशील रहने के लिए ऊर्जा पाचन तंत्र से ही प्राप्त होती है इसलिये 'सभी रोगों पेट से जन्म लेते हैं' और 'पेट स्वस्थ, शरीर स्वस्थ' जैसी लोकोक्ति प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं जो पाचन तंत्र के महत्व को स्पष्ट करती हैं।

परन्तु वर्तमान काल में आधुनिकता का बहुत अधिक प्रभाव मनुष्य के आहार पर पड़ा है। समय का अभाव कहें अथवा स्वाद के वशीभूत होना माने परन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि वर्तमान सभ्य समाज में शुद्ध-सात्विक आहार को छोड़कर फास्टफूड, जंकफूड, सीफूड, डिब्बाबंद आहार, कोल्डड्रिंक्स और अन्य रायासनों से युक्त आहार के सेवन का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार के आहार से पाचन तंत्र और इसके साथ उत्सर्जन तंत्र अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए रासायनिक दवाईयों का सेवन कुछ समय के लिए राहत अवश्य प्रदान कर देता है किन्तु रोग स्थाई रुप से दूर नहीं होता है। इसके साथ रासायनिक दवाईयों के दुष्प्रभाव से यकृत और किडनी की कार्यक्षमता भी क्षीण हो जाती है। अत: यहाँ पर यौगिक चिकित्सा एक श्रेष्ठ विकल्प है जिसे अपनाने से पाचन और उत्सर्जन तंत्र के

रोगों को दूर होकर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत यूनिट में पाचन और उत्सर्जन तंत्र के प्रमुख रोगों का परिचय और लक्षण समझाते हुए इनकी यौगिक चिकित्सा पर सविस्तार विचार किया गया है।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- पाचन एवं उत्सर्जन तंत्र सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- पाचन एवं श्वसन तंत्र सम्बन्धी रोगों के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे;
- पाचन एवं उत्सर्जन तंत्र सम्बन्धी रोगों की यौगिक चिकित्सा को व्यवहार में ला सकेंगे।

13.1 पाचन तंत्र के प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य को विभिन्न कार्य करने के लिए प्रतिक्षण ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसे मुनष्य भोजन से प्राप्त करता है किन्तु भोजन से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए उसे पहले सरल रुप में परिवर्तित करना होता है क्योंकि भोजन के सरल अणुओं को ही रक्त के द्वारा शरीर में अवशोषित किया जाता है। भोजन की इस प्रक्रिया को पाचन कहा जाता है। जिसमें सभी पाचन अंग मिलकर भाग लेते हैं। परन्तु वर्तमान समय में गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणामस्वरुप पाचन अंगों की क्रियाशीलता कम हो रही है जिस कारण पाचन क्रिया में बाधा उत्पन्न होने के साथ पाचन रोग उत्पन्न हो रहे हैं। मानव शरीर में पाचन तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग निम्न होते हैं।

13.1.1 अपच रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

अपच का अर्थ होता है पाचन नहीं होना। जैसा कि हमें ज्ञात है कि शरीर में पाचन तंत्र का मूल कार्य भोजन का पाचन करना अर्थात् उसे शरीरोपयोगी सरल रुप में परिवर्तित करना होता है किन्तु जब पाचन तंत्र में भोजन का पाचन नहीं हो पाता है और ग्रहण किया गया भोजन बिना पचा ही रहने लगता है, उस अवस्था को अपच रोग (Indiagestion) कहा जाता है।

चूंकि इस अवस्था में भोजन का पाचन नहीं हो पाता है अत: शरीर और पेट भारी रहता है। इसके साथ मनुष्य को कभी-कभी दस्त और कभी-कभी कब्ज की शिकायत होती है और कभी बिना पचे भोजन के कारण दस्त भी होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में भोजन करने के बाद जी मचलता है। खट्टी डकारें आने के साथ कभी-कभी उल्टीयाँ भी होने लगती हैं। इस अवस्था शरीर का बल और कार्यक्षमता बहुत क्षीण हो जाती है।

चित्र 13.1: अपच रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पेट में जलन होना और भारीपन के साथ खट्टी डकारें आना।
2. पेट में गैस बनते हुए पेट फूलना और दर्द होना।
3. भूख कम होने के साथ भोजन के प्रति अरुचि होना।
4. जी मिचलाना, मुँह में पानी आना और गले-कलेजे में जलन होना।
5. कभी कब्ज तो कभी दस्त होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में रुचि का अभाव होना।
7. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहने के साथ नींद कम हो जाना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के अपच रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.1.2 कब्ज रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

यह पाचन तंत्र का सबसे सामान्य किन्तु गंभीर होने के साथ बहुत तेजी से बढ़ता रोग है। यद्यपि, यह जीर्ण रोगों की श्रेणी में आता है जो एकदम उत्पन्न नहीं होता है अपितु धीरे-धीरे शरीर में आता है। मनुष्य जो आहार ग्रहण करता है उसके शरीरोगपयोगी अंश का आमाशय एवं आंतों द्वारा पाचन एवं अवशोषण होता है तथा शेष अनुपयोगी अंश मल के रूप में बड़ी आंत के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह शरीर की एक सामान्य प्रक्रिया है जो प्रतिक्षण चलती रहती है परन्तु जब यह भोजन से उत्पन्न मल सुचारू रूप से बाहर नहीं निकल पाता है और बड़ी आंत में ही एकत्र होने लगता है यह अवस्था कब्ज (Constipation) कहलाती है।

इस रोग के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कब्ज अनेक रोगों की जननी है। इससे ग्रस्त मनुष्य के शरीर में ऊर्जा का स्तर क्षीण हो जाता है और वह व्यक्ति बहुत जल्दी अनेक रोगों की चपेट में आ जाता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति शारीरिक और मानसिक स्तर पर ऊर्जाहीन एवं क्रियाहीन होने लगता है।

चित्र 13.2: कब्ज रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पेट में भारीपन के साथ शौच में कठिनाई होना और भलि प्रकार पेट साफ नहीं होना।
2. जीभ पर सफेद मैल की परत जमना और श्वासों में बदबू आना।
3. भूख कम होने के साथ अधिकतर समय पेट में हल्का दर्द रहना।
4. मुँह में छाले पड़ जाना और चेहरे पर फुन्सीयाँ निकलना।
5. सिरदर्द के साथ चक्कर आना और स्वभाव चिड़चिढ़ा होना।
6. चेहरे पर उदासीनता के भाव, शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में रुचि का अभाव होना।
7. पेट साफ नहीं होने के कारण दुर्गन्धयुक्त अपान वायु का निष्कासन होना।
8. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहने के साथ नींद कम हो जाना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के कब्ज रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.1.3 एसिडिटी रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

वर्तमान समय में मनुष्य की जीवनशैली में बदलाव के साथ भोजन में अम्लीय मिर्च-मसालों के अधिक प्रयोग, फास्ट फूड और जंक फूड का सेवन और बिना भूख बार-बार खाने जैसी आदतों ने अम्लता रोग को जन्म दिया है। यद्यपि, यह रोग शरीर में धीरे-धीरे आता है किन्तु आने के उपरान्त शरीर में ही ठहर जाता है और यदि समय पर इस रोग पर ध्यान देते हुए इसका उपचार नहीं किया जाता है तो आगे चलकर यह अल्सर का गंभीर रुप धारण कर लेता है। इस रोग को भी आधुनिक सभ्यता का रोग कहा जाता है क्योंकि प्राचीन काल में यह रोग बहुत कम होता था किन्तु वर्तमान समय में इस रोग ने बहुत तेजी से फैलते हुए समाज में गहरी जड़ें जमा ली हैं।

एसीडिटी रोग को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में गैस्ट्रोइसोफेजियल रिफलक्स डिजिज (GERD) के नाम से जाता है। इस रोग को आयुर्वेद शास्त्र में अम्लपित्त कहा जाता है। वास्तव

में भोजन के पाचन हेतु आमाशय में स्थित ग्रन्थियों से अम्ल का स्रावण किया जाता है किन्तु जब आमाशय में यह अम्ल अधिक होकर जलन उत्पन्न करता है, वह अवस्था एसिडिटी रोग कहलाती है।

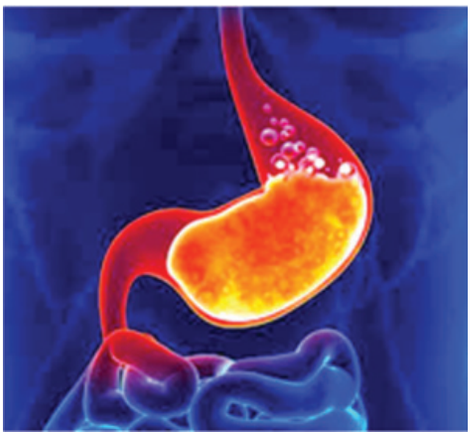

चित्र 13.3: एसिडिटी रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. गले से लेकर वक्ष तक के क्षेत्र में जलन एवं हृदय प्रदेश में दर्द महसूस होना ।
2. पेट में भारीपन के साथ बार-बार खट्टी डकारें आना।
3. भोजन के प्रति अरुचि होना और भूख नहीं लगना।
4. घबराहट होना, पसीना अधिक आना, जी घबराने के साथ हार्ट अटैक का सन्देह होना।
5. पेट में गैस बनना और जी मिचलाने के साथ उल्टियाँ होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता की अनुभूति के साथ श्वास फूलना।
7. बिना परिश्रम किए हुए शारीरिक और मानसिक थकावट होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के एसिडिटी रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.1.4 आई. बी. एस. रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

यह शरीर की बडी आंत से सम्बन्धित के पाचन तंत्र का रोग है जिसका पूरा नाम Irritable Bowel Syndrome (IBS) है। इसे हिन्दी भाषा में 'क्षोभी आंत विकार' कहा जाता है। वर्तमान समय में अनियमित दिनचर्या, असीमित आहार, विलासितापूर्ण जीवनशैली और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणामस्वरुप जब बडी आंत की क्रियाशीलता प्रभावित होकर आंतों में ऐंठन,

पेट दर्द, सूजन, गैस, दस्त और कब्ज आदि लक्षण उत्पनन होते हैं तब वह अवस्था इर्रिटेबल बाऊल सिंण्ड्रोम कहलाती है।

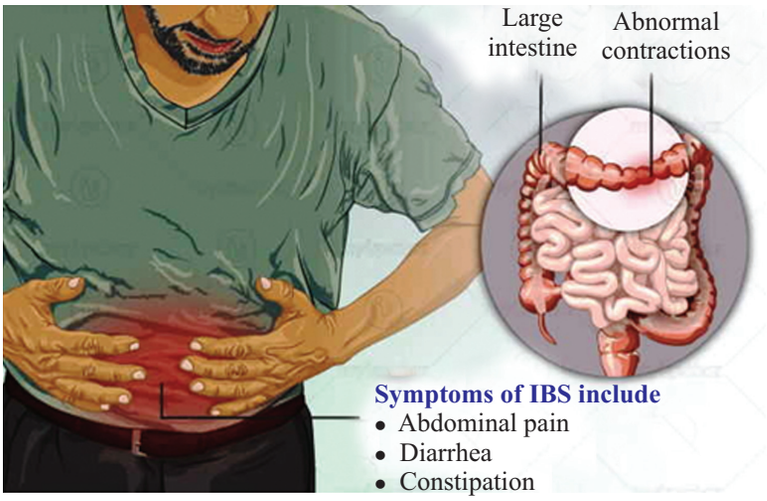

चित्र 13.4: आई. बी. एस. रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पेट में भारीपन के साथ दर्द और ऐंठन होना।
2. पेट में गैस अधिक बनना, जिसके कारण पेट फूला हुआ महसूस होना।
3. कभी कब्ज तो कभी दस्त होना।
4. मल का अधिक श्लेष्मायुक्त होना।
5. रोग की गंभीर अवस्था में शरीर का वजन कम हो जाना।
6. शरीर में कमजोरी की अनुभूति होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के आई. बी. एस. रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.1.5 पेप्टिक अल्सर रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

सामान्य रुप से समझे तो पाचन तंत्र में होने वाले घाव को अल्सर (Ulcer) कहा जाता है। पाचन तंत्र के विभिन्न अंगों जैसे आमाशय, छोटी आंत और बड़ी आंत के आन्तरिक भागों में होने वाले घावों को अल्सर के नाम से जाना जाता है। इसे ही गैस्ट्रिक अल्सर या पेप्टिक अल्सर या पेट के छाले भी कहा जाता है।

प्रिय शिक्षार्थियों, जैसा कि हमें ज्ञात है कि आमाशय में उपस्थित ऑक्जेन्टिक सैल्स हाईड्रोक्लोरिक अम्ल का स्रावण करती है जिसका कार्य भोजन के पाचन में मद्द करना होता है किन्तु जब अधिक

अम्लीय आहार का सेवन, अधिक समय तक एंटीबायोटिक दवाईयों का सेवन, दर्द निवारक पेन किलर का अधिक सेवन, धूम्रपान अथवा मद्यपान एवं मानसिक तनाव आदि कारकों के प्रभाव से आमाशय की दीवारों में अम्ल से छाले अथवा घाव उत्पन्न होने लगते हैं, वह अवस्था पेप्टिक अल्सर कहलाती है। वर्तमान समय में अल्सर रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है।

चित्र 13.5: पेप्टिक अल्सर रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. खाली पेट अथवा खाना खाने के कुछ समय बाद पेट में अचानक बहुत तेज दर्द होना।
2. पेट में बहुत गैस बनने के साथ खट्टी डकारें आना।
3. पेट के ऊपरी भाग में भारीपन के साथ दर्द और ऐंठन होना।
4. भूख में कमी आने के साथ भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न होना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ शरीर का वजन कम होते जाना।
6. कुछ परिस्थितियों में सुबह-सुबह के समय उल्टियाँ होती हैं और रोग की गंभीर अवस्था में उल्टियों में रक्तस्राव भी होता है।
7. अल्सर रोग की गंभीर अवस्था में मल के साथ भी रक्तस्राव होने लगता है।

वास्तव में एसीडिटी रोग आगे चलकर अल्सर का रुप ग्रहण कर लेता है और अल्सर रोग ही आगे चरण में कैंसर के रुप में परिवर्तित हो जाता है।

13.1.6 हर्निया रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रकृति ने मानव शरीर में प्रत्येक अंगों को एक निश्चित स्थान प्रदान किया है किन्तु जब शरीर का कोई अंग अपने मूल स्थान से हटकर बाहर निकल जाता है तब उस शारीरिक

अवस्था को 'हर्निया' कहा जाता है। यहाँ पर उदर भाग में स्थित बडी आंत के किसी भाग का अपने मूल स्थान से हटकर बाहर की ओर निकलने के अर्थ में हर्निया रोग को लिया जाता है।

वास्तव में विकृत आहार-विहार, अव्यवस्थित दिनचर्या और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के फलस्वरुप जब उदर की मांसपेशियाँ कमजोर और शिथिल हो जाती है और भारी वजन उठाने के अवस्था में बडी आंत का कोई भाग नाभि के पास से बाहर निकल जाता है, वह अवस्था हर्निया रोग कहलाता है।

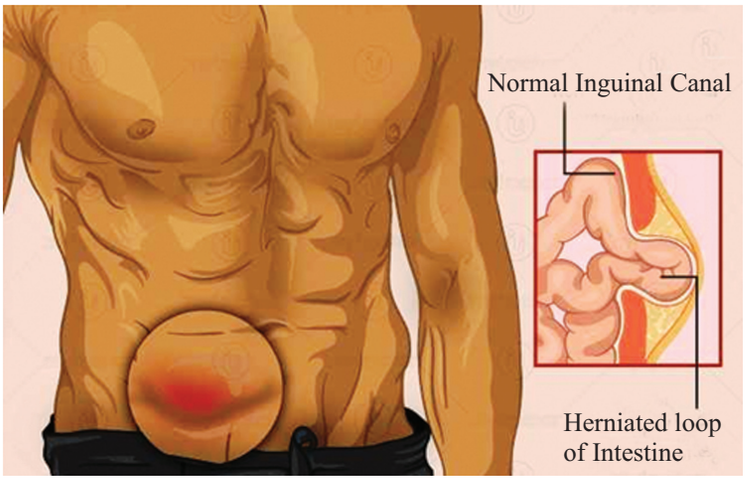

चित्र 13.6: हर्निया रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. नाभि के पास के क्षेत्र में आंत का कोई भाग उभर कर बाहर की ओर निकल जाना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है।
2. नाभि के पास उभरे स्थान पर सूजन के साथ दर्द होना, विशेष रुप से वजन उठाने पर पेट के इस भाग में बहुत तेज दर्द होना।
3. पेट के ऊपरी भाग में दर्द के साथ उल्टियाँ होना।
4. पेट में उभरे स्थान पर दर्द के साथ बुखार आ जाना।
5. रोग की गंभीर अवस्था में पेट के सूजन वाले भाग में गांठ बन जाना, जिसे छूने पर दर्द होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के हर्निया रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.1.7 गुदा रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य का पाचन तंत्र 28 से 32 फिट लम्बी एक जटिल रचना होती है। यह मुख से प्रारम्भ होकर गुदा तक फैली होती है। इस रचना में विभिन्न पाचन अंगों का समावेश

होता है और प्रत्येक अंग का अपना विशिष्ट कार्य होता है। इस प्रकार पाचन तंत्र का सबसे अन्तिम भाग गुदा होती है जिसके द्वारा भोजन का अनुपयोगी भाग शरीर से बाहर उत्सर्जित किया जाता है। यह शरीर का एक संवेदनशील अंग है जिसमें रक्तवाहिनियों द्वारा रक्त की तीव्र आपूर्ति की जाती है।

मनुष्य के खान-पान सम्बन्धी गलत आदतों, धूम्रपान-मद्यपान, अव्यवस्थित दिनचर्या, मानसिक तनाव और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के फलस्वरुप जब गुदा अपने मूल कार्य- (मल भाग का उत्सर्जन) भलि-भांति नहीं कर पाता है तब उस अवस्था को गुदा रोग की संज्ञा दी जाती है। ऐसी अवस्था में इस भाग में पीड़ा, सूजन, संक्रमण, बावासीर और गुदा कैन्सर जैसे रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इन रोगों का मूल लक्षण इस भाग में पीड़ा का होना होता है। मल त्याग की स्थिति में इस भाग में पीड़ा ओर अधिक बढ़ जाती है। इस अवस्था को गुदा रोगों की संज्ञा दी जाती है।

प्रिय शिक्षार्थियों, इस प्रकार अपच, कब्ज, एसीडिटी, आईबीएस, पप्टिक अल्सर, हर्निया और गुदा रोग पाचन तंत्र के प्रमुख विकार होते हैं जिनका प्रकोप दिन-प्रतिदिन समाज में बढ़ता जा रहा है। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में यौगिक चिकित्सा बहुत लाभकारी एवं प्रभावशाली भूमिका वहन करती है अत: अब पाचन तंत्र के रोगों में यौगिक चिकित्सा का अध्ययन करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 13.1

सही/गलत बताइए :

(क) अपच का अर्थ है पाचन ठीक से होना। ( )

(ख) पेट में भारीपन के साथ खट्टी डकार एसीडिटी का लक्षण है। ( )

(ग) हर्निया रोग बड़ी आँत से संबंधित रोग है। ( )

13.2 पाचन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, योग का प्रारम्भ शुद्ध सात्विक आहार से होता है। इस सन्दर्भ में गीता में योगीराज श्रीकृष्ण उपदेश करते हैं

युद्राहारविहारस्य युद्रचेष्टस्य कर्मसु।
युद्रस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

(गीता 6/17)

अर्थात् जिस व्यक्ति का आहार-विहार ठीक है, जिसके कार्यो की निश्चित दिनचर्या है। जिसका सोना और जागना निश्चित है, ऐसे योगी व्यक्ति को किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता है। अर्थ

यह है कि जो व्यक्ति अपने जीवन को योगमय शैली में व्यतीत करता है वह सभी प्रकार के दु:खों, कष्टों व बीमारियों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है। यौगिक ग्रन्थों में विद्वानों ने अत्याहार (अधिक आहार का सेवन करना) को योग साधना का एक बाधक तत्व माना है तथा इसके स्थान पर मिताहार का उल्लेख किया गया है। मिताहार की व्याख्या करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है कि यदि आमाशय के चार भाग किये जाते तो दो भाग अन्न के लिए एक भाग जल के लिए तथा एक भाग वायु संचालन के लिए खाली रखना 'मिताहार' कहलाता है। अर्थात् योग के ग्रन्थों में भरपेट भोजन के स्थान पर केवल आधे पेट भोजन सेवन को निर्देशित किया गया है। यदि वर्तमान समय के अनुसार विचार करें तो इस विषय में आधुनिक चिकित्सक भी अपने चिकित्सकीय अनुभवों के आधार पर इस तथ्य को सहर्ष स्वीकारते हैं कि अधिक मात्रा में और असन्तुलित आहार लेने से अपच, कब्ज, गैस, एसिडिटी, अम्लपित्त तथा अल्सर जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। वहीं कम में सन्तुलित आहार ग्रहण करने से पाचन तंत्र भली-भाँति सक्रिय, स्वस्थ और क्रियाशील बना रहता है।

पाचन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं का अभ्यास भी बहुत सकारात्मक प्रभाव डालते है। यौगिक क्रियाओं के प्रभाव को इस प्रकार समझ सकते हैं -

13.2.1 पाचन तंत्र पर षट्कर्मो का प्रभाव

षट्कर्म के अन्तर्गत धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति, नामक छ: शोधन क्रियाओं का वर्णन आता है। ये शोधन क्रियायें सम्पूर्ण शरीर के साथ-साथ पाचन तंत्र की भी सफाई करती है।

धौति क्रिया का सम्बन्ध आमाशय से है। यह क्रिया आमाशय अर्थात् पेट की सफाई करती है। इस क्रिया के अन्तर्गत वमन तथा वस्त्र के माध्यम से पाचन संस्थान की सफाई की जाती है। वमन करने से अम्लपित्त, एसीडिटी, पेट में गैस बनना, पेट में जलन, पेट में भारीपन आदि रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है। वस्त्र धौति के अभ्यास से पाचन नली की सफाई होती है तथा आमाशय में पाचक रसों के स्राव की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे भूख भली-भाँति लगती है तथा भोजन का पाचन भी अच्छी प्रकार होने लगता है। धौति क्रिया के अन्तर्गत ही शंखप्रक्षालन क्रिया का वर्णन भी यौगिक शास्त्रों में किया गया है। इस क्रिया के अन्तर्गत गर्म नमकीन पानी को पीने के उपरान्त कुछ निश्चित आसन किये जाते है, जिन्हें करने से यह पानी पूरे पाचन संस्थान की सफाई करता हुआ अधोमार्ग से बाहर निकल जाता है। इस क्रिया के अभ्यास से पूरे पाचन तंत्र की सफाई तथा कब्ज जैसा खतरनाक रोग दूर होता है।

षट्कर्म की दूसरी क्रिया बस्ति क्रिया है। इस क्रिया का पाचन संस्थान पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद में वात का मुख्य स्थान बड़ी आँत माना गया है यहाँ पर स्थित वायु यदि कुपित हो जाती है तो भिन्न-भिन्न प्रकार के वात रोग पैदा होते है। इस वात को वस्ति कर्म के अभ्यास से बड़ी आसानी से शान्त किया जा सकता है। अत: पेट में गैस बनना, डकारे आना, पेट में दर्द,

अफरा तथा कब्ज आदि रोग में भी वस्ति क्रिया लाभ पहुँचाती है। यह उदर की वायु मस्तिष्क में जाकर सिर दर्द का कारण बनती है। वस्ति क्रिया के अभ्यास से इस रोग में भी लाभ मिलता है, तथा अल्सर, बवासीर आदि रोग नहीं होते।

नेति क्रिया का पाचन तंत्र से सीधा-सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। नौलि क्रिया का पाचन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। नौलि क्रिया से पेट के आन्तरिक अंग हष्ट-पुष्ट तथा मजबूत होते है। नौलि क्रिया में जब पेट की मांसपेशियों का संचालन किया जाता है। तब पेट की अच्छी तरह मालिश होती है तथा जठराग्नि, प्रदिप्त होती है। परिणाम स्वरूप भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होने लगता है तथा भूख भली-भाँति लगने लगती है।

त्राटक कर्म का सम्बन्ध मानसिक एकाग्रता से है, जिसका प्रभाव तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है तथा इससे शरीर के सभी तंत्र सुव्यवस्थित होते है।

कपालभाति का अभ्यास प्रश्वास के साथ शरीर के हानिकारक पदार्थो को बाहर निकालता है। कपालभाति के अभ्यास से सभी पाचन अंगों जैसे आमाशय, आँत, लीवर, पेन्क्रियाज आदि पर प्रभाव पड़ता है तथा ये अंग क्रियाशील बनते हैं।

13.2.2 पाचन तंत्र पर आसनों का प्रभाव

प्रिय शिक्षार्थियों, आसनों का सीधा प्रभाव पाचन तंत्र पर पड़ता है। यद्यपि आसन में यह सावधानी विशेष रूप से रखी जाती है कि आसन सदैव खाली पेट ही किये जाने चाहिये, किन्तु वज्रासन का प्रभाव अभ्यास भोजन करने के तुरन्त बाद किये जाने से भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है। आसन करते समय पाचन अंगों पर पॉजेटिव और निगेटिव दबाव (दबाव और खिंचाव) उत्पन्न होता है। जिस समय इन अंगों पर दबाव पड़ता है उस समय इन अंगों की ओर रक्त संचार बन्द हो जाता है तथा जैसे ही यह दबाव हटता है उस समय बहुत तेजी के साथ रक्त उस अंग में भर जाता है, जिससे उस अंग की गन्दगियाँ हटती है तथा उसे ज्यादा मात्रा में शुद्ध ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थो की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ऐसे आसनों का अभ्यास करने से पाचन तंत्र स्वस्थ सक्रिय एवं मजबूत होता है।

सूक्ष्म अभ्यास से प्रारम्भ करते हुए स्थिर मनोभाव के साथ पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन, भुजंगासन, धुनरासन, योग मुद्रासन, मण्डूकासन, उष्ट्रासन, अर्द्धमत्सेन्द्रासन, सुप्त वज्रासन, शंशाकासनतथा मयूरासन आदि आसनों का विधिपूर्वक और नियमित रुप से अभ्यास करने पर सम्पूर्ण पाचन तंत्र स्वस्थ्य एवं सक्रिय बनते हैं। इन आसनों का नियमित अभ्यास करने से अपच, कब्ज, गैस, भूख ना लगना, एसिडिटी, अल्सर, आईबीएस, हर्निया और गुदा सम्बन्धी रोग नहीं होते है। इसके साथ-साथ इन आसनों का अभ्यास पाचन तंत्र को वज्र के समान मजबूत बना देता है। योग शास्त्रों में स्पष्ट किया गया है कि मयूरासन का अभ्यास विष को पचाने की क्षमता प्रदान करने वाला होता है। इस प्रकार आसनों का अभ्यास पेट की मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करते हुए पाचन तंत्र को स्वस्थ, सक्रिय एवं मजबूत बनाता है। आसनों के क्रम में बारह

(12) आसनों को सम्मिलित अभ्यास 'सूर्यनमस्कार' कहलाता है। सूर्यनमस्कार का अपने शरीर की क्षमतानुसार अभ्यास करने से पाचन तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय बनाता है और पाचन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

13.2.3 पाचन तंत्र पर मुद्राओं व बन्धों का प्रभाव

पाचन तंत्र पर विभिन्न मुद्राओं एवं बन्धों का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि मुद्राओं का मूल प्रभाव शरीर को स्थिरता प्रदान करता है। किन्तु तड़ाकी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, अश्वनी मुद्रा, पाशिनि मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा पाचन तंत्र को विशेष रूप से प्रभावित करती है। बन्धों का भी पाचन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मूल बन्ध का अभ्यास बड़ी आंत को विशेष रूप से सक्रिय एवं क्रियाशील बनाता है तथा पाचन तंत्र के रोगों को भी दूर करता है। उड्डियानबंध उदर प्रदेश में विपरीत दबाव पैदा करता है। उड्डियानबंध का अभ्यास पेट की मांसपेशियों को लचीली तथा क्रियाशील बनाता है। यह लीवर, आमाशय तथा आंतों को क्रियाशील बनाता है। उड्डियान बंध के अभ्यास से विभिन्न पाचक रस अधिक मात्रा में स्रावित होते है, जिससे भोजन का पाचन भली-भाँति होता है। तीनों बन्धों का एक साथ अभ्यास अर्थात् महाबंध का अभ्यास करने से पेट के आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। इसका अभ्यास करने से सम्पूर्ण पाचन तंत्र उत्तेजित क्रियाशील एवं विकार रहित होता है।

13.2.4 पाचन तंत्र पर प्राणायाम का प्रभाव

प्राणायाम से तात्पर्य प्राण तत्व का विस्तार करने से है। प्राणायाम का अभ्यास करने से शुद्ध प्राण वायु (ऑक्सीजन) अधिक मात्रा में शरीर को प्राप्त होती है, जिससे शरीर की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। इसी कारण प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर की चयापचय दर (मैटाबोलिक रेट) संतुलित होता है तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। शरीर का शोधन करने वाले एवं शरीर में उष्मा उत्पन्न करने वाले प्राणायाम का पाचन तंत्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से नाड़ियों की शुद्धि होती है। भूख अच्छी लगती है, कब्ज आदि रोग नहीं होते एवं पाचन तंत्र भली-भाँति क्रियाशील रहता है।

सूर्यभेदी, उज्जायी तथा भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास पाचन तंत्र को सक्रिय एवं ऊर्जावान बनाता है। इन प्राणायामों के अभ्यास से पाचन तंत्र सक्रिय एवं ऊर्जावान होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है एवं पाचन तंत्र सम्बन्धित रोग नहीं होत हैं। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। जिसका सकारात्मक प्रभाव पाचन तंत्र पर भी पड़ता है।

13.2.5 पाचन तंत्र पर प्रत्याहार का प्रभाव

प्रत्याहार से तात्पर्य इंद्रियो पर संयम करने से है। प्रत्याहार का पालन करने से पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रूप में कार्य करता है। जबकि इंद्रियों पर असंयम भिन्न-2 प्रकार के रोगों एवं व्याधियों को पैदा

करता हैं। प्रत्याहार के अन्तर्गत व्यक्ति राजसिक एवं तामसिक आहार के स्थान पर केवल सात्विक आहार ही ग्रहण करता है। साथ ही साथ अत्यधिक मिर्च मसाले एवं नमक का त्याग करता हुआ प्राकृतिक आहार का सेवन करता है। जिसका सकारात्मक प्रभाव पाचन तंत्र पर पड़ता है। प्रत्याहार का अभ्यासी साधक मिताहार का भी पालन करता है अर्थात् वह निश्चित समय पर अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करता है, ऐसा करने से कब्ज, एसीडिटी, अल्सर तथा गैस आदि रोग नहीं होते एवं पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रूप में अपना कार्य करता है।

13.2.6 पाचन तंत्र पर ध्यान का प्रभाव

ध्यान से तात्पर्य शरीर एवं मन की एक रूपता से होता है। ध्यान का अभ्यास मानसिक एकाग्रता को उत्पन्न करता है, यह एकाग्रता अन्त:स्रावी तंत्र को प्रभावित करती है। ध्यान के अभ्यास से पिटयूटरी ग्रन्थि प्रमुख रूप से प्रभावित होती है। जिसका प्रभाव पाचन तंत्र पर भी पड़ता है। ध्यान के अभ्यास से वे पाचक रस एवं अन्त:स्रावी हार्मोन्स प्रभावित होते हैं जो भोजन के अच्छी प्रकार पाचन के लिए आवश्यक होते है। ध्यान की प्रक्रिया के फलस्वरूप आमाशय का आकार, आंतो का आकार, लीवर तथा पैन्क्रियाज पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत क्रोध, आवेश, भय तथा चिन्ता आदि का पाचन तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ता है। भोजन के पाचन में बाधा उत्पन्न होती है तथा कब्ज, एसीडिटी, अपच, अल्सर आदि रोगों की उत्पत्ति होती है अत: इन सभी रोगों में ध्यान करने से बहुत अच्छे परिणाम की प्राप्ति होती है और इन रोगों में लाभ मिलता है।

13.2.7 पाचन तंत्र पर समाधि का प्रभाव

समाधि से तात्पर्य समवातावरण की अनुभूति से है। अपने चारों ओर समवातावरण की अनुभूति करना ही समाधि है। इस सम वातावरण की अनुभूति का अच्छा प्रकार प्रभाव सम्पूर्ण शरीर एवं पाचन तंत्र पर पड़ता है। यह सुखद भावना पाचक रसों के स्रावों को सुव्यवस्थित करती है। अन्त: स्रावों को सन्तुलित बनाती है, वात-पित्त कफ आदि दोषों को सम अवस्था प्रदान करती है अर्थात् समाधि का अभ्यास पाचन तंत्र को स्वस्थ, सुव्यस्थित एवं रोग मुक्त बनाता है।

इसके साथ-साथ पाचन तंत्र की रोगावस्था में निम्न अपथ्य आहार का त्याग और पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए-

अपथ्य आहार: नमक, मिर्च, मसाले, वसा, डालडा, घी-तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मलाई, मिठाईयाँ, बर्फ-आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स आदि का त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य आहार, गेहूँ-जौ और चना मिलाकर चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, दलिया, लौकी, तुराई, टमाटर, नींबू, विटामिन्स और खनिज लवणों युक्त ताजे फल-सब्जियाँ जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, नारियल पानी आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

13.3 मूत्रवह तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर की सात धातुओं में रक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण धातु है जिसे जीवन रस कहा जाता है। यह जीवन रसरुपी धातु सम्पूर्ण शरीर में प्रतिक्षण परिभ्रमण करती हुई सभी अंगों को पोषक तत्व प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य करती रहती है। शरीर की इस महत्वपूर्ण धातु का स्वच्छ और निर्मल होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसे साफ-स्वच्छ बनाने के लिए शरीर की उदरीय पार्श्व गुहा में दो वृक्क प्रतिक्षण क्रियाशील रहते हुए इसे छानकर स्वच्छ बनाने का कार्य करते रहते हैं। इन वृक्कों का कार्य रक्त को छानकर अशुद्धियों को अलग करना होता है। इन रक्त से प्राप्त अशुद्धियों को जल के साथ मिलाकर मूत्र का निर्माण किया जाता है और मूत्र को समय-समय पर शरीर से बाहर उत्सर्जित किया जाता है। शरीर के इस तंत्र को मूत्रवह संस्थान की संज्ञा दी जाती है जिसका महत्वपूर्ण कार्य रक्त को स्वच्छ बनाना होता है। इस तंत्र के स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त रहने पर रक्त स्वच्छ और निर्मल बना रहता है जिससे शरीर की सभी क्रियाएँ सुचारु रुप से चलती रहती है। परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की खान-पान सम्बन्धी गलत आदतों, अव्यवस्थित दिनचर्या, शारीरिक श्रम का अभाव, मानसिक तनाव और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के कारण मानव शरीर का यह महत्वपूर्ण तंत्र विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो रहा है। इस तंत्र के प्रमुख रोग इस प्रकार हैं-

13.3.1 नेफ्राइटिस का सामान्य परिचय एवं लक्षण

वृक्क का निर्माण लाखों सूक्ष्म कोशिकाओं के मिलने से होता है। इन वृक्क का निर्माण करने वाली कोशिकाओं को नेफ्रान कहा जाता है। इन नेफ्रान को वृक्क की रचनात्मक और क्रियात्मक यूनिट कहा जाता है क्योंकि इनके मिलने से ही वृक्क का निर्माण होता है और यही वृक्क में रक्त छानने की प्रक्रिया में लगी रहती हैं। किन्तु विकृत आहार-विहार और रासायनिक एंटी बायोटिक या पेनकिलर दवाईयों के सेवन से जब इन कोशिकाओं को क्षमता से अधिक कार्य करना पड़ता है तब इनमें दर्द और सूजन उत्पन्न हो जाती है जिसे नेफ्राइटिस रोग कहा जाता है।

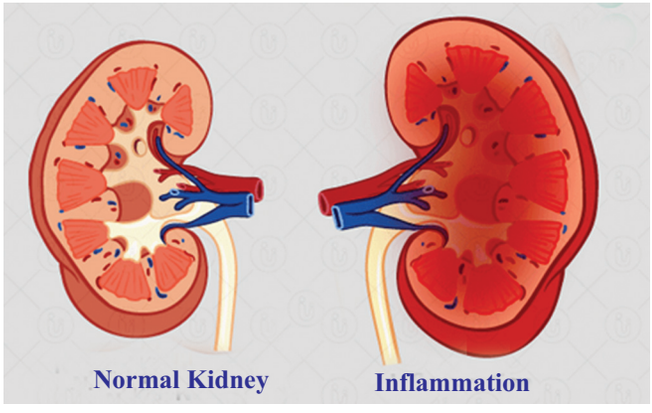

चित्र 13.7: नेफ्राइटिस का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. वृक्कों के आस-पास दर्द होना एवं इस भाग में सूजन होना।
2. बार-बार और अधिक मात्रा में मूत्र आना।
3. मूत्र के रंग में परिवर्तन होना और पस आना।
4. ठंड लगना एवं बुखार आना।
5. असामान्य थकान के साथ मितली होना।
6. मूत्र में जलन होना एवं रक्तचाप बढ़ जाना।
7. शरीर के किसी हिस्से जैसे हाथ, पैर अथवा चेहरे पर सूजन आ जाना।
8. मानसिक स्थिति में बदलाव जैसे बैचेनी अथवा उलझन में रहना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण मूत्रवह संस्थान के नेफ्राइटिस रोग की ओर संकेत करते हैं।

13.3.2 मूत्रदाह रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मूत्रवह संस्थान के किसी भाग में संक्रमण के परिणाम स्वरुप मूत्र त्याग में जलन होने लगती है और बार-बार मूत्र त्याग होने लगता है। इस अवस्था को मूत्रदाह रोग कहा जाता है। इसे चिकित्सकीय भाषा में यू.टी.आई. अर्थात् Urinary Track Infection कहा जाता है। इस रोग से ग्रसित होने पर मूत्र का रंग गहरा पीला हो जाता है और मूत्र त्याग में पीड़ा होने के साथ-साथ जलन होती है। इस अवस्था में रोगी व्यक्ति को रात के समय बार-बार मूत्र त्याग के लिए उठना पडता है और मूत्र त्याग में जलन होती है। शरीर के उदरीय पार्श्व भागों में दर्द और जलन होना, मूत्र की मात्रा बढ़ जाना, मूत्र त्याग में दर्द-जलन के साथ रक्त का आना इस रोग के प्रमुख लक्षण होते हैं।

13.3.3 किडनी स्टोन का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर में वृक्क का सबसे मुख्य कार्य रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित उत्सर्जित पदार्थों को अलग करना होता है। मनुष्य के दोनों वृक्क प्रतिदिन (24 घन्टों में) 150 से 180 लीटर रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित शरीर के लिये अनुपयोगी पदार्थो को मूत्र के रुप में अलग करने का कार्य करते हैं। परन्तु जब वृक्क कैल्शियम के सल्फेट, क्लोराइड एवं फास्फेटों को रक्त से छानकर अलग तो कर देते हैं किन्तु उन्हें मूत्र के साथ उत्सर्जित नहीं कर पाते तब ये अकार्बनिक पदार्थ वृक्क में ही इकठ्ठा होकर एक पथरी के समान रचना बना लेते हैं, इसे वृक्क की पथरी (किडनी स्टोन) कहा जाता है। इस अवस्था में वृक्क में बहुत तीव्र सुई की चुभन के समान दर्द की अनुभूति होती है। प्रारम्भिक अवस्था में दर्द हल्का होता है किन्तु आगे चलकर यह दर्द असहनीय हो जाता है जिसमें दर्दनिवारक दवाईयों के सेवन से भी कोई आराम नहीं मिलता है। व्यक्ति को बार-बार मूत्र त्याग की इच्छा होती है और मूत्र का रंग भी गहरा पीला होने लगता है।

13.3.4 मूत्र रोगों का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, सामान्य और स्वस्थ अवस्था में एक मनुष्य प्रतिदिन 1 से 1.8 लीटर स्वच्छ, पारदर्शी, हल्के पीले रंग के द्रव मूत्र का उत्सर्जन करता है। इस मूत्र का हल्का पीला रंग यूरेबिलिन नामक रंजक पदार्थ के कारण होता है। मूत्र में अपनी एक विषेश एरोमेटिक गन्ध होती है। मूत्र की पी. एच. 5.0 से 8.0 के बीच होती है, यह पी. एच. ग्रहण किये आहार के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। शाकाहारी एवं सात्विक आहार लेने वाले मनुष्यों का मूत्र उदासीन अथवा हल्का क्षारीय प्रकृति का जबकि मांसाहारी एवं मिर्च मसाले युक्त अम्लीय प्रकृति का आहार लेने वाले व्यक्तियों में मूत्र अम्लीय प्रकृति का होता है। मूत्र में सबसे अधिक मात्रा में जल होता है जबकि शेष पदार्थो में कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ होते हैं।

परन्तु विकृत आहार-विहार, अव्यवस्थित दिनचर्या और अन्य कारकों के परिणामस्वरुप उपरोक्त रोगों की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त कम मात्रा में मूत्र निर्माण होना, अधिक मूत्र उत्सर्जन होना, मूत्र मे शरीरोपयोगी तत्वों का आना भी ऐसे लक्षण हैं जिनका सम्बन्ध मूत्रवह संस्थान के रोगों से होता है।

13.4 मूत्ररोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, यौगिक क्रियाओं का अभ्यास मुख्य रूप से शरीर शोधन और मन को स्वच्छ-निर्मल बनाने का कार्य करता है। अर्थात् ये क्रियाएँ शरीर और मन में स्थित गन्दगियों, विषाक्त पदार्थो एवं अविशिष्ट पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करती है, जबकि उत्सर्जन तंत्र का भी मूल कार्य शरीर में स्थित इन उत्सर्जित पदार्थो को बाहर निकालने का होता है अर्थात् इन क्रियाओं का उत्सर्जन तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओं के अभ्यास से उत्सर्जन तंत्र पर वंर्ज्य पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने का भार कम होता है। जिससे इस तंत्र की क्रियाशीलता और कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इन क्रियाओं के अभ्यास से यूनिट में वर्णित मूत्र रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। मूत्रवह संस्थान पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव को इस प्रकार समझा जा सकता है -

13.4.1 षट्कर्मो का अभ्यास

धौति, बस्ति, नेति, नौली एवं त्राटक नामक षट्कर्म मूत्रवह तंत्र को भली-भाँति प्रभावित करते हैं। इन षट्कर्मो की दूसरी संज्ञा शोधन कर्म ही है। अर्थात् ये क्रियाऐं शरीर की शुद्धि करती है, जिनका सकारात्मक प्रभाव मूत्रवह तंत्र पर पड़ता है। धौति क्रिया में अधिक जल का सेवन किया जाता है। अधिक जल पीने से वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है एवं मूत्र निर्माण की क्रिया भी तीव्र होती है। इस क्रिया के तीव्र होने से मूत्र रोग भी दूर होते है। बस्ति क्रिया बड़ी आंत से सम्बन्धित है चूँकि बड़ी आंत शरीर के ठोस मल पदार्थो को उत्सर्जित करती है। अत: यह क्रिया इसकी क्रियाशीलता बढ़ाती हुई उत्सर्जन तंत्र को स्वस्थ एवं मजबूत बनाती है। नेति कर्म का अच्छा प्रभाव

उत्सर्जन तंत्र पर पड़ता है। नौली कर्म से वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। नौली क्रिया के अन्तर्गत उदर में स्थित आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। अत: इससे वृक्क की कोशिकाएँ (वृक्काणु) भी प्रभावित होती है एवं अधिक क्रियाशील होकर अपना कार्य करती हैं। त्राटक कर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्सर्जन पर नहीं पड़ता। कपालभाति क्रिया वायु एवं जल के द्वारा शरीर का शुद्धिकरण करती है, जिससे शरीर में स्थित विषाक्त उत्सर्जित पदार्थ बाहर निकालते है। इससे मूत्र रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ बनता है।

13.4.2 आसनों का प्रभाव

यद्यपि मूत्र रोगों की तीव्र अवस्था में कठिन आसनों का अभ्यास निषेध होता है किन्तु रोगावस्था सामान्य होने पर आसन उत्सर्जन तंत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव रखते हैं। सामान्य अवस्था में उष्ट्रासन, शलभासन, मत्यस्य आसन, धुनरासन, भुजंग आसन, उत्तानमण्डुक आसन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन और पद्मासन लाभकारी आसन हैं। अर्थात् ये आसन वृक्कों को स्वस्थ, मजबूत, क्रियाशील एवं विकार मुक्त बनाते हैं।

सूर्यनमस्कार के अभ्यास का भी उत्सर्जन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि सूर्यनमस्कार का अभ्यास करने से पहले एक गिलास गुनगुना अथवा गर्म पानी पीने से वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है एवं कम मूत्र की उत्पत्ति, वृक्क शोथ (किडनी में सूजन), वृक्क प्रदाह (किडनी में जलन), किडनी स्टोन (पथरी) आदि रोगों पर नियन्त्रण प्राप्त होता है।

13.4.3 मुद्रा एवं बन्धों का प्रभाव

वृक्कों पर मुद्रा एवं बंध का अभ्यास सकारात्मक प्रभाव रखते हैं। मुद्राओं में महामुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, माण्डूकी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा एवं अश्वनी मुद्रा मुख्य रूप से उत्सर्जन तंत्र को प्रभावित करती है। इन मुद्राओं के नियमित अभ्यास से वृक्कों की क्रियाशीलता बनी रहती है तथा उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ रहता है। इसी प्रकार बन्धों के अभ्यास से वृक्कों की आन्तिरिक क्रियाशीलता में वृद्धि होती है।

13.4.4 प्राणायाम का प्रभाव

प्राणायाम के संदर्भ में महर्षि मनु, मनुस्मृति में लिखते हैं –

दहयन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला:।
तथेन्द्रियाणां दह्यान्ते दोषा: प्राणस्य निग्रहात॥

अर्थात् जैसे अग्नि आदि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल, विकार नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों एवं मन के दोष दूर होते हैं। प्राणायाम का अभ्यास शरीर एवं मन को

स्थिर करता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्रॉस्ट्रेट ग्लैण्ड एवं किडनी आरोग्यता को प्राप्त होती है नियमित प्राणायाम का अभ्यास वृक्कों को ऊर्जावान बनाए रखता है एवं बहुमूत्र, अल्पमूत्र, किडनी फेल, किडनी में सूजन एवं किडनी में जलन आदि रोग दूर होते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास क्रम में अनुलोम-विलोम, नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, भ्रामरी एवं शीतली आदि प्राणायामों का विधिपूर्वक और नियमित रुप से अभ्यास करने का अच्छा प्रभाव वृक्कों की क्रियाशीलता पर पड़ता है।

13.4.5 प्रत्याहार का प्रभाव

प्रत्याहार से अर्थ इन्द्रियों एवं मन पर संयम से है। इन्द्रियों एवं मन पर संयम से आहार-विहार में अनुशासन शीलता एवं सात्विकता बढ़ती है जिसके प्रभाव से शरीर में कम उत्सर्जी पदार्थो की उत्पत्ति होती है। रक्त के स्वच्छ होने का सकारात्मक प्रभाव वृक्कों पर पड़ता है।

13.4.6 ध्यान का प्रभाव

ध्यान का सीधा सम्बन्ध अत: स्राव से है ध्यान के अभ्यास से वृक्कों के ऊपर स्थित एड्रिनल ग्रथियों के स्राव (हारमोन्स) व्यवस्थित एवं सन्तुलित होते हैं, जिससे वृक्कों की क्रियाशीलता भी सुव्यवस्थित होती है और सम्बन्धित रोग दूर होते हैं।

13.4.7 समाधि का प्रभाव

सामाधि से तात्पर्य सकारात्मक भाव से है। सकारात्मक भाव का प्रभाव शरीर के सभी तंत्रों पर पड़ता है। समाधि के अभ्यास में शरीर के सभी तंत्र सभी रोगों से रहित होकर पूर्ण क्रियाशीलता के साथ अपना कार्य करते हैं। समाधि में साधक चारों ओर सकारात्मक वातावरण की अनुभूति करता है, जिससे शरीर में बहुत अल्प मात्रा में उत्सर्जित पदार्थों की उत्पति होती है तथा उत्पन्न हुए उत्सर्जी पदार्थ भली-भाँति शरीर से बाहर निकलते हैं।

उपरोक्त योगाभ्यास के साथ रोगी व्यक्ति को निम्न अपथ्य आहार का त्याग और पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए-

अपथ्य आहार: नमक, मिर्च, मसाले, वसा, डालडा, घी-तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मलाई, मिठाईयाँ, बर्फ-आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स, सोडा वाटर आदि क्रत्रिम खाद्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य आहार, गेहूँ-जौ और चना मिलाकर चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, लौकी, तुराई, टमाटर, नींबू, विटामिन्स और खनिज लवणों युक्त ताजे फल-सब्जियाँ जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, नारियल पानी, रसदार फल जैसे तरबूज, खरबूजा आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 13.2

रिक्त स्थान भरिए –

(क) धौति क्रिया का संबंध ..... से है।

(ख) मनुष्य के दोनों वृक्क प्रतिदिन ..... लीटर रक्त छानते हैं।

(ग) स्वस्थ अवस्था में मनुष्य प्रतिदिन ..... लीटर स्वच्छ पारदर्शी हल्के पीले रंग का मूत्र उत्सर्जन करता है।

13.5 प्रजनन रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रजनन तंत्र के रोगों में शरीर की क्षमतानुसार षट्कर्म की शुद्धिक्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। प्रात:काल सूर्योदयपूर्व उठकर नियमित रुप से योगासनों का अभ्यास करते हुए सूर्यनमस्कार का अभ्यास करना चाहिए। यौगिक मुद्राओं और बन्धों के अभ्यास से आन्तरिक ऊर्जा को जाग्रत करना चाहिए। इसके साथ-साथ इन्द्रियों पर संयम करते हुए राजसिक और तामसिक आहार का त्याग करते हुए शुद्व-सात्विक और पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए। भोजन में मिर्च-मसालों का त्याग करते हुए जीवन शक्ति युक्त अंकुरित अन्न और फल-सब्जियों का सेवन करना चाहिए। नियमित रुप से पर्याप्त समय तक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। नाड़ीशोधन और अनुलोम-विलोम प्राणायाम से प्रारम्भ करते हुए उज्जायी, भस्त्रिका और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास पूर्ण सार्मथ्य के साथ करना चाहिए। नियमित रुप से पूर्ण श्रद्धा और निष्ठा के साथ ईश्वर का ध्यान करते हुए सकारात्मक ऊर्जा की प्रार्थना करनी चाहिए। इनके साथ-साथ सभी प्रकार के नकारात्मक विचारों का त्याग करते हुए सकारात्मकता के साथ पूर्ण प्रसन्नता और आनन्द की अनुभूति करने से प्रजनन तंत्र के सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होने के साथ उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

यूनिटगत प्रश्न 13.3

उत्तर दीजिए –

(क) आयुर्वेद में वात का मुख्य स्थान किसे माना गया है।

(ख) पाचन तंत्र के रोगों में लाभ प्राप्त किए जाने वाले तीन आसनों के नाम बताइए।

(ग) मूत्र का पी.एच. बताइए।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में पाचन तंत्र एवं मूत्र सम्बन्धी रोगों की यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में पाचन तंत्र के प्रमुख रोगों का सामान्य परिचय देते हुए उनकी यौगिक चिकित्सा का उल्लेख किया गया है और इसके उपरान्त मूत्र सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय देते हुए उनकी यौगिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि यौगिक अभ्यासों का पाचन तंत्र एवं वृक्कों की क्रियाशीलता पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नियमित रूप से इन क्रियाओं का अभ्यास करने से मनुष्य का पाचन तंत्र एवं वृक्क सदैव स्वस्थ बने रहते हैं। जबकि रोगावस्था में भी यौगिक अभ्यास पाचन एवं वृक्क से सम्बन्धित रोगों को दूर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यौगिक क्रियाओं में यौगिक षट्कर्म के साथ विभिन्न आसनों के साथ-साथ प्राणायामों का अभ्यास पाचन तंत्र एवं वृक्कों को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाते हैं। इन क्रियाओं का अभ्यास पाचन तंत्र से सम्बन्धित अंगों एवं वृक्कों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। इससे भोजन का पाचन, अवशोषण एवं मलों का निष्कासन सुव्यवस्थित होता है। यौगिक क्रियाओं का नियमित अभ्यास करने से भूख अच्छी लगती है तथा ग्रहण किया गया आहार अच्छी प्रकार पचता है। पचे हुए भोजन का अवशोषण भली प्रकार होता है तथा शेष मल पदार्थों का शरीर से अवशोषण भी अच्छी प्रकार होता है। पाचन तंत्र के अनुरूप इन यौगिक अभ्यासों का प्रभाव वृक्कों पर भी पड़ता है। इन क्रियाओं के अभ्यास से वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है, जिससे उत्सर्जित पदार्थों का निष्कासन अच्छी प्रकार होता है तथा सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ रहता हुआ अपने कार्यों को भली प्रकार करता है। अत: हमें चाहिए कि हम चित्त को काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से मुक्त रखते हुए सात्विक आहार-विहार के साथ अनुशासित जीवनचर्या को अपनाते हुए रोगमुक्त रहकर सुख-शान्ति और आनन्द की अनुभूति करें।

यूनिटांत प्रश्न

1. पाचन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. मूत्र रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार व्याख्या कीजिए।
3. कब्ज रोग के प्रमुख लक्षण लिखते हुए इसकीं यौगिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
4. मूत्र प्रदाह रोग के प्रमुख लक्षण समझाते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा लिखिए।
5. टिप्पणियाँ लिखिए-

   (क) अपच रोग के लक्षण

   (ख) पाचन तंत्र रोगी का पथ्य आहार

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

(क) गलत (ख) सही (ग) सही

13.2

(क) अमाशय (ख) 150 से 180 (ग) 1 से 1.8

13.3

(क) बड़ी आँत

(ख) पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, सर्वांगासन

(ग) 5.0 से 8.0 के बीच

14

मस्कुलो-स्केलेटल संबंधी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा के विषय में जाना और ज्ञान प्राप्त किया कि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते हुए सुव्यवस्थिति दिनचर्या के साथ पथ्य आहार का सेवन और अपथ्य आहार का त्याग करने से मानव शरीर के पाचन और उत्सर्जन संस्थानो को स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त बनाया जा सकता है। अब यहाँ पर महत्वपूर्ण तथ्य है कि जिस प्रकार पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र को योगाभ्यास के द्वारा रोगमुक्त और सक्रिय बनाया जा सकता है क्या उसी प्रकार अस्थि और मासंपेशिय तंत्र को भी यौगिक चिकित्सा के प्रभाव से स्वस्थ बनाया जा सकता है। प्रस्तुत यूनिट का विषय शरीर के अस्थि और पेशीय तंत्र से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा है। मानव शरीर की मूलभूत संरचना का निर्माण विभिन्न आकार की 206 अस्थियों के मिलने से होता है। इसी प्रकार अस्थियाँ आपस में मिलकर मानव शरीर का आधारभूत ढांचा तो बना देती है परन्तु वह यह ढांचा तब तक गतिहीन रहता है जब तक इसके साथ मांसपेशियाँ नहीं जुड़ती हैं। अर्थात् मांसपेशियाँ शरीर को गतिशील बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं।

इस प्रकार अस्थियाँ और मांसपेशियाँ आपस में मिलकर मानव शरीर की मूल संरचना का निर्माण करती हैं और शरीर को गति प्रदान करने में सहायता करती हैं। इन दोनों तंत्रों के सहयोग से मानव शरीर गतिशील बनकर सभी सरल से लेकर जटिल कार्य करने में सक्षम बनता है। परन्तु इन तंत्रों में विकार उत्पन्न होने पर शरीर की गतिशीलता प्रभावित होती है और इसी से ही आगे चलकर मांसपेशियों में दर्द, जकड़न, आर्थराइटिस, सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, कमर दर्द और स्लिप डिस्क आदि रोग उत्पन्न होते है। वर्तमान समय में विकृत आहर-विहार, असंयमित जीवनचर्या, शारीरिक श्रम में कमीं, योगाभ्यास की कमी, कम्प्यूटर-टी.वी. पर अधिक समय बैठना, गलत मुद्राओं में कार्य करने और मानसिक तनाव जैसे कारकों के परिणाम स्वरुप समाज में इन रोगों का प्रभाव

बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था में इन रोगों की पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं परन्तु आगे चलकर यह रोग गंभीर रुप धारण कर लेते हैं। इन रोगों में पेनकिलर दवाईयों के प्रयोग से कुछ समय के लिए राहत तो प्राप्त हो जाती है किन्तु समस्या का स्थाई समाधान नहीं हो पाता है। अत: इन रोगों में यौगिक चिकित्सा उत्तम विकल्प होती है। प्रस्तुत यूनिट में पेशीय और अस्थि तंत्र के प्रमुख रोगों का परिचय और लक्षण समझाते हुए इनकी यौगिक चिकित्सा पर सविस्तार विचार किया गया है।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मांसपेशियों एवं अस्थि तंत्र सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- मांसपेशियों एवं अस्थि तंत्र सम्बन्धी रोगों के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे;
- मांसपेशियों एवं अस्थि तंत्र सम्बन्धी रोगों की यौगिक चिकित्सा को व्यवहार में ला सकेंगे।

14.1 पेशीय तंत्र के प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर को गतिशील बनाने के लिए ऐच्छिक, अनैच्छिक और हृद् नामक तीन प्रकार की पेशियाँ शरीर में उपस्थित होती हैं। इन पेशियों में संकुचन और विस्तार क्रिया (Contraction & Extension) करने का गुण होता है जिस कारण यें पेशियाँ शरीर को आन्तरिक और बाह्य स्तर पर गतिशील बनाने का कार्य करती रहती हैं। इन पेशियों की गतिशीलता के कारण शरीर विभिन्न कार्यों को करने में सक्षम होता है। इस प्रकार शरीर को क्रियाशील बनाने में मांसपेशियाँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं। परन्तु गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव, योगाभ्यास का अभाव और गलत मुद्राओं में कार्य करने के कारण इन पेशियों में दर्द और जकड़न की रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है जिससे शारीरिक कार्यों को करने में बाधा उत्पन्न होने के साथ रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

14.1.1 मांसपेशियों में दर्द एवं जकड़न का सामान्य परिचय एवं लक्षण

शरीर की मांसपेशियों में दर्द और जकड़न का होना आजकल बहुत सामान्य रोग बनता जा रहा है। पहले वृद्धावस्था में शरीर की मांसपेशियों की क्रियाशीलता कम होने पर यह समस्या उत्पन्न होती थी किन्तु वर्तमान समय में बच्चों से लकर युवाओं और वृद्धों अर्थात् सभी आयु वर्ग के लोगों में यह रोग बहुत तेजी से बढता जा रहा है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ इस रोग की चपेट में अधिक आ रही हैं।

यद्यपि, अधिक कार्य करने के उपरान्त शरीर की मांसपेशियों में दर्द और भारीपन होना एक स्वभाविक प्रक्रिया है जो दैनिक जीवन में प्रायः अनुभव होती है और रात्रिकाल में आराम करने से ठीक हो जाती है। परन्तु जब शरीर के विभिन्न भागों की मांसपेशियों में दर्द, भारीपन और जकड़न लगातार बनी रहती है और उसमें आराम करने से भी लाभ प्राप्त नहीं होता है बल्कि, दर्द के कारण आराम करने में भी बाधा (नींद नहीं आना) उत्पन्न होने लगती है तब वह रोगावस्था कहलाती है। इस अवस्था में शरीर के सम्बन्धित भाग की पेशियों में दर्द के साथ जकड़न भी उत्पन्न होती है।

चित्र 14.1: मांसपेशियों में दर्द एवं जकड़न का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पेशियों में दर्द, ऐंठन के साथ जकड़न उत्पन्न होना।
2. पेशियों में भारीपन के साथ उस भाग में लालीपन और सूजन आना।
3. आराम करने पर दर्द में आराम के स्थान पर समस्या बढ़ जाना।
4. शरीर के भागों का मूवमेन्ट कम हो जाना और मूवमेन्ट करने पर तीव्र दर्द होना।
5. पेशियों में जकड़न और दर्द के कारण रात्रि की नींद में बाधा उत्पन्न होना और नींद नहीं आना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पेशियों में दर्द एवं जकड़न की ओर संकेत करते हैं।

14.2 मांसपेशियों में दर्द और जकड़न की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, जब शरीर के किसी भाग की मांसपेशी में सिकुड़न उत्पन्न हो जाती है तब उस स्थान पर पेशियों में रक्त संचार बाधित हो जाता है। रक्त संचार बाधित होने से पेशियों को पोषण प्राप्त नहीं होता है जिससे पेशियों में दर्द और जकड़न उत्पन्न हो जाती है। योगाभ्यास करने से शरीर की पेशियों में क्रियाशीलता उत्पन्न होने के साथ रक्त संचार में वृद्धि होती है। प्राण ऊर्जा और जीवन शक्ति उन्नत बनती है जिससे पेशियों की जकड़न और दर्द में आराम मिलते हुए इनसे सम्बन्धित रोग समूल नष्ट होते हैं। यौगिक चिकित्सा का प्रारम्भ अनुशासित दिनचर्या और सन्तुलित

आहार-विहार से होता है। अत: सर्वप्रथम प्रात:काल सूर्योदय पूर्व उठकर प्रात:कालीन भ्रमण करते हुए यौगिक क्रियाओं जैसे आसन, प्राणायाम और ध्यान आदि नियमित अभ्यास करने से पेशियों सम्बन्धित रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। पेशियों में दर्द और जकड़न की रोगावस्था में निम्न यौगिक चिकित्सा से लाभ प्राप्त होता है-

14.2.1 षट्कर्मो का अभ्यास

धौति, बस्ति, नेति, नौली एवं त्राटक नामक षट्कर्म की शोधन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर की पेशियों से विषाक्त विजातीय द्रव्य बाहर निकलता है। इससे शरीर के भीतर पेशियों में आन्तरिक स्वच्छता उत्पन्न होती है और पेशियों में हल्कापन आने के साथ इनकी क्रियाशीलता में अभिवृद्धि होती है। पेशियों को स्वस्थ बनाने एवं वात-पित्त, कफ धातु में सन्तुलन स्थापित करने के उद्देश्य से शरीर की आवश्यकता और क्षमता के अनुसार प्रात:काल खाली पेट गुनगुने नमकीन जल से नेति, धौति और वस्ति क्रिया का अभ्यास करना चाहिए। इससे उदर और शीर्ष प्रदेश की पेशियाँ स्वस्थ बनती हैं। इसी प्रकार नौली क्रिया के अभ्यास से उदर की मांसपेशियाँ स्वस्थ्य और क्रियाशील बनती हैं। त्राटक क्रिया का अभ्यास नेत्र की मांसपेशियों को बल प्रदान करता है। षट्कर्म की कपालभाति नामक शुद्धिक्रिया का अभ्यास करने से अनुपयोगी विजातीय पदार्थों का शरीर से निष्कासन होता है और कफ दोष का शमन होता है। जिसके फलस्वरुप सम्पूर्ण शरीर में पेशियों की जकडन और दर्द दूर होने के साथ हल्कापन और क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। अर्थ यह है कि षट्कर्म की शोधन क्रिया के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर की पेशियों को लाभ प्राप्त होता है और पेशियों से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं।

14.2.2 आसनों का प्रभाव

योगासनों का अभ्यास शरीर की पेशियों पर सीधा प्रभाव डालता है। आसन करने से पेशियों की क्रियाशीलता में अभिवृद्धि होती है जिससे इनसे सम्बन्धित रोगों में लाभ प्राप्त होता है। यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आसनों का अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिए एवं सूक्ष्म अभ्यासों से प्रारम्भ करते हुए पहले सरल आसनों और इसके उपरान्त कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहिए। इससे पेशियों के आकार और क्रियाशीलता में धीरे-धीरे वृद्धि होती है।

यद्यपि, सभी आसन शरीर की पेशियों पर प्रभाव डालते हैं किन्तु पेशियों से सम्बन्धित दर्द एवं जकड़न को दूर करने के लिए पहले हाथों और पैरों के सूक्ष्म अभ्यास करने चाहिए। तत्पश्चात् शरीर के विभिन्न भागों जैसे हाथों, पैरों, उदर और वक्ष आदि भागों की पेशियों को प्रभावित करने वाले अभ्यास करने चाहिए। आसनों के क्रमों ताड़ासन, त्रिकोणासन, गरुड़ासन, वातायनासन, वृक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, वक्रासन, भुजंगासन, शलभासन, मत्यस्य आसन, धुनरासन, उत्तानमण्डुक आसन (सुप्त वज्रासन), सिद्धासन, स्वस्तिकासन और पद्मासन आदि आसनों का नियमित रुप से अभ्यास करना चाहिए। इनके साथ-साथ सूर्यनमस्कार का अभ्यास शरीर की क्षमतानुसार करने से मांसपेशियों में बल और शक्ति के साथ लचीलेपन का विस्तार होता है।

14.2.3 मुद्रा एवं बन्धों का प्रभाव

घेरण्ड संहिता ग्रन्थ में उपदेश किया गया है कि मुद्राओं के अभ्यास से शरीर में स्थिरता का विकास होता है। यहाँ पर स्थिरता से अभिप्राय: शरीर की मांसपशियों पर नियंत्रण प्राप्त करने से है। अर्थात् मुद्राओं का अभ्यास करने से पेशियाँ स्वस्थ्य एवं सक्रिय बनती हैं। वृक्कों पर मुद्रा एवं बंध का अभ्यास सकारात्मक प्रभाव रखते हैं। मुद्राओं में महामुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, माण्डूकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, तड़ाकी मुद्रा एवं अश्वनी मुद्रा का अभ्यास पेशियों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। मुद्राओं के साथ मूल, उड्डियान और जालंधर बन्धों का अभ्यास करने से मानव शरीर की पेशियाँ स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त बनती हैं।

14.2.4 प्राणायाम का प्रभाव

शरीर की मांसपेशियों को स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त बनाने के लिए प्रतिदिन विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। चूंकि पेशियों में प्राण तत्व का अभाव होने पर भारीपन, जकड़न और दर्द आदि की उत्पत्ति होती है इसलिए प्राणशक्ति का विस्तार एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से नियमित प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास क्रम में लम्बे गहरे श्वासों से प्रारम्भ करते हुए, अनुलोम-विलोम, नाड़ीशोधन, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी और प्रणव उच्चारण अर्थात् ओउम् का जप करना चाहिए। इस अभ्यासक्रम का पेशिय विकारों में अच्छा प्रभाव पड़ता है।

14.2.5 प्रत्याहार का प्रभाव

प्रत्याहार से अर्थ इन्द्रियों एवं मन पर संयम से है। इन्द्रियों एवं मन पर संयम से आहार सम्बन्धित नियमों में अनुशासन शीलता एवं समय प्रबन्धन के साथ दिनचर्या सुव्यवस्थित बनती है। इससे मन में स्थिरता के साथ चित्त में एकाग्रता बढ़ती है और पेशियों में तनाव दूर होकर स्वास्थ्य का विस्तार होता है।

14.2.6 ध्यान का प्रभाव

ध्यान की क्रिया का शरीर की पेशियों पर सीधा एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ध्यानात्मक आसन में स्थिर होकर ईश्वर का ध्यान करते हुए सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त करने से सम्पूर्ण शरीर में हल्कापन आता है। इससे पेशियाँ ऊर्जावान एवं रोगमुक्त बनती हैं।

14.2.7 समाधि का प्रभाव

सामाधि से तात्पर्य सकारात्मक भावों की अनुभूति करने से होता है। सकारात्मक भावों की अनुभूति का बहुत अच्छा प्रभाव शरीर के सभी तंत्रों पर पड़ता है। सकारात्मक अनुभूतियों से पेशियों का तनाव सन्तुलित होता है और चेहरे पर झुर्रियाँ और अन्य विकार उत्पन्न नहीं होते हैं। जीवन की समस्त सम-विषम परिस्थितियों का सामना धैर्यपूर्वक और बुद्धिमत्ता के साथ करते हुए आत्मसन्तोष

के आनन्द में लीन होकर जीवनयापन करने से समस्त शारीरिक और मानसिक दुखों एवं रोगों का नाश होता है और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त योगाभ्यास के साथ शरीर की मांसपेशियों के विकारग्रस्त होने पर रोगी व्यक्ति को निम्न अपथ्य आहार का त्याग और पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए-

अपथ्य आहार: नमक, मिर्च, मसाले, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, खट्टी दही, मठ्ठा, बर्फ-आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स, सोडा वाटर, फ्रिज का ठंडा पानी आदि कृत्रिम खाद्य पदार्थो का त्याग कर देना चाहिए। पेशिय विकारों में बर्फ, फ्रिज और कोल्ड स्टोर में रखे खाद्य पदार्थ, वातवर्धक खाद्य पदार्थ और ए.सी. में वास को पूर्णरुप से त्याग देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य एवं पौष्टिक आहार, अंकुरित चना, गेहूँ-जौ और चना मिलाकर चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, दूध एंव दूध से बने पदार्थ, घी-मक्खन, मौसमी फल-सब्जियाँ जैसे लौकी, तुराई, टमाटर, नींबू, विटामिन्स और कैल्शियम और फास्फोरस खनिज लवणों युक्त ताजे फल-सब्जियाँ जैसे आलू, प्याज, चुकन्दर, गाजर, सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थो का सेवन करना चाहिए।

उपरोक्त यौगिक चिकित्सा से पेशियों में दर्द और जकड़न रोग समूल देर होते हैं और पेशियों की क्रियाशीलता में वृद्धि के साथ उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

14.3 अस्थि तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर के मूल ढाँचे का निर्माण विभिन्न आकार की 206 अस्थियों के मिलने से होता है। शरीर में अस्थियाँ सन्धियों के रुप में जुड़कर मानव रुपी रचना का निर्माण करती हैं। भारतवर्ष में जब तक व्यक्तियों का आहार-विहार शुद्ध सात्विक एवं दिनचर्या सुव्यवस्थित थी एवं इसके साथ-साथ वह नियमित यौगिक क्रियाओं के अभ्यास के अलावा पर्याप्त शारीरिक श्रम करता था तब तक भारतीय समाज में अस्थि तंत्र के रोगियों की संख्या बहुत कम अथवा नगण्य थी किन्तु जैसे-जैसे भारतीय समाज के खान-पान एवं रहन सहन में आधुनिकता का प्रवेश हुआ तभी से अस्थि तंत्र के रोगों नें भी समाज में अपना स्थान बनाया। खान पान में फास्ट फूड (पीज्जा, बर्गर, मैगी), चाइनीज फूड (चाउमिन, मोमो) व जंक फूड (पेप्सी, कोक) के प्रचलन ने अस्थि तंत्र के रोगियों की संख्या तेजी से बढाई है। इससे वृद्ध व्यक्ति ही नहीं अपितु बच्चें भी अस्थि तंत्र के रोग से ग्रस्त हो रहे है। इसके साथ-साथ विलासितापूर्ण श्रमहीन जीवनशैली एवं दिनचर्या में यौगिक आसन-प्राणायाम के अभाव ने भी अस्थि तंत्र रोगों के फैलानें में प्रमुख भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में विकृत खान-पान अनियमित दिनचर्या के अभाव में अस्थि तंत्र के रोगों एवं रोगियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मानव अस्थि तंत्र के प्रमुख रोगों का वर्णन इस प्रकार हैं-

14.3.1 आर्थराइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, आर्थराइटिस अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है। आर्थराइटिस ग्रीक भाषा के दो शब्दों आथ्रो (Arthro) और आइटिस (Itis) से मिलकर बनता है। ग्रीक भाषा में आथ्रो (Arthro) का अर्थ जोड़ अर्थात् सन्धियाँ तथा आइटिस (Itis) का अर्थ सूजन होता है अर्थात् शाब्दिक अर्थ में वह रोग जिसमें जोड़ों अथवा सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है, आर्थराइटिस (Arthroitis) कहलाता है। चूंकि आर्थराइटिस रोग में सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है अत: हिन्दी भाषा में इसे **सन्धि शोथ** के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में आर्थराइटिस रोग को **आमवात** का नाम दिया गया है।

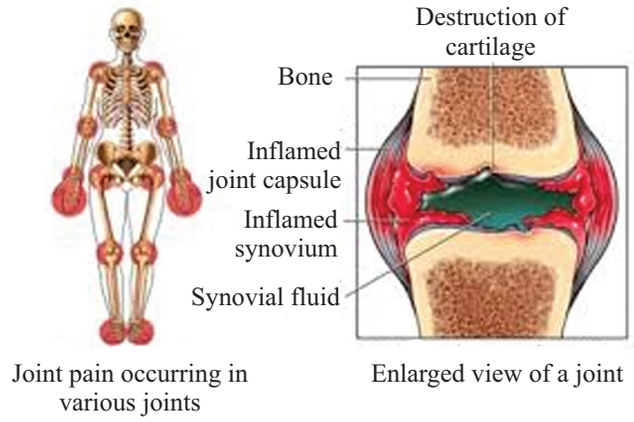

चित्र 14.2: आर्थराइटिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग का प्रारम्भ जोड़ों में सूजन के साथ होता है, जोडों में सूजन के साथ जोड़ लाल होने लगते हैं एवं इन जोड़ों में सुई सी चुभन उत्पन्न होने लगती है। यही आगे चलकर गठिया में एवं गठिया आगे चलकर आर्थराइटिस रोग का रुप ले लेता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आर्थराइटिस रोग के सौ से भी अधिक प्रकारों को वर्णित किया गया है। आर्थराइटिस रोग के प्रकारों में सबसे अधिक व्यापक **रुमेटोयड आर्थराइटिस (आमवातिक संधिशोथ)** है। इसके अतिरिक्त ऑस्टियो आर्थराइटिस, सेप्टिक आर्थराइटिस, सोरियाटिक आर्थराइटिस तथा रिएक्टिव आर्थराइटिस भी आर्थराइटिस रोग के अन्य प्रकार हैं।

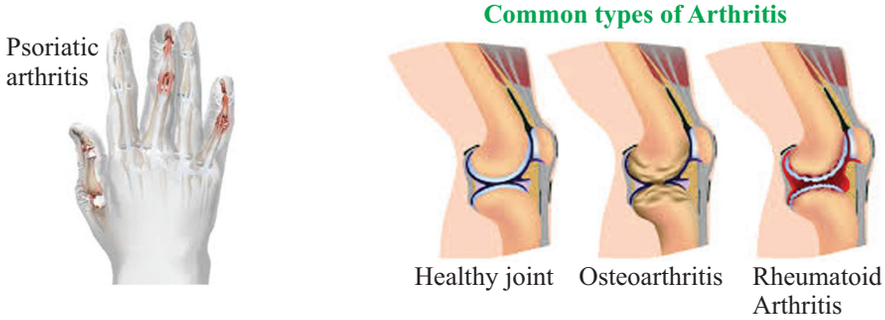

चित्र 14.3

भारत के अतिरिक्त पश्चिमी विकसित देशों में जहाँ अधिकाशं कार्य मशीनों से होता है एवं शारीरिक श्रम का अधिक अभाव है, उन देशों में अस्थि तंत्र के जोडों के दर्द से सम्बन्धित रोगियों की संख्या और भी अधिक है। भारत की तुलना में इन देशों में आर्थराइटिस रोगियों की संख्या और भी अधिक है। एक गणना के अनुसार अमेरिका देश में आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या 20 लाख से भी अधिक है। इसी प्रकार कनाडा, इग्लैंण्ड एवं आस्ट्रेलिया आदि ठंडे वातावरण के विकसित देशों में भी आर्थराइटिस रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। दुनिया भर में आर्थराइटिस रोग के बढ़ते प्रभाव को दूर करने के उद्देश्य से एवं आर्थराइटिस के प्रति जागरुकता फैलाने के उद्देश्य से 12 अक्टूबर को 'विश्व आर्थराइटिस दिवस' मनाया जाता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. शरीर के जोडों में सूजन के साथ तीव्र वेदना होना इस रोग का मूल लक्षण होता है।
2. जोडों में कठोरता आने के साथ अस्थियों का टेढ़ा हो जाना।
3. शरीर का तापक्रम बढ़ना एवं शरीर में हल्का बुखार बने रहना।
4. त्वचा पर रेशेज, झुर्रियाँ पड़ना और खुरदरी होना।
5. शरीर में भारीपन के साथ हाथ-पैर मोड़ने में दर्द एवं पीड़ा होना।
6. शरीर में हर समय कष्ट और पीड़ा रहने के साथ शरीर का वजन कम हो जाना।
7. निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।
8. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिढ़ापन, क्रोध, बैचेनी आदि उत्पन्न होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण अस्थि तंत्र के आर्थराइटिस रोग की ओर संकेत करते हैं।

14.3.2 सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य की रीढ़ का निर्माण छोटी-छोटी विशेष आकार एवं संरचना की अस्थियों (कशेरुकाओं) के मिलने से होता है। रीढ़ में इन कशेरुकाओं की कुल संख्या 26 होती है। इनमें से ऊपर की (सिर की ओर की) प्रथम सात कशेरुकाओं को सर्वाइकल की संज्ञा दी जाती हैं। जिन्हे अग्रेंजी भाषा के अक्षर सी-1 से लेकर सी-7 तक से प्रर्दशित किया जाता है। रीढ़ की इन सी-1 से लेकर सी-7 तक की कशेरुकाओं के मूल स्थान, आकृति अथवा संरचना में विकसित ही **सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस (Cervical Spondolytis)** नामक रोग के नाम से जाना जाता हैं।

शरीर की गलत मुद्रा अपनाकर देर तक कार्य करने से रीढ की उपरोक्त कशेरुकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा यह रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार लम्बे समय तक झुककर बैठने से भी यह रोग उत्पन्न होता है। टेढ़े-मेढ़े होकर सोने, अधिक गहरे व लचीले गद्दों पर सोने एवं सोते समय मोटे तकिये को सिराहने के रुप में प्रयोग करने की आदत भी इस रोग को जन्म देती है। इस रोग में गर्दन के भाग में बहुत तीव्र सुई की चुभन के समान वेदना होती है जिसमें दर्द निवारक दवाईयों का सेवन भी प्रभावहीन होता है।

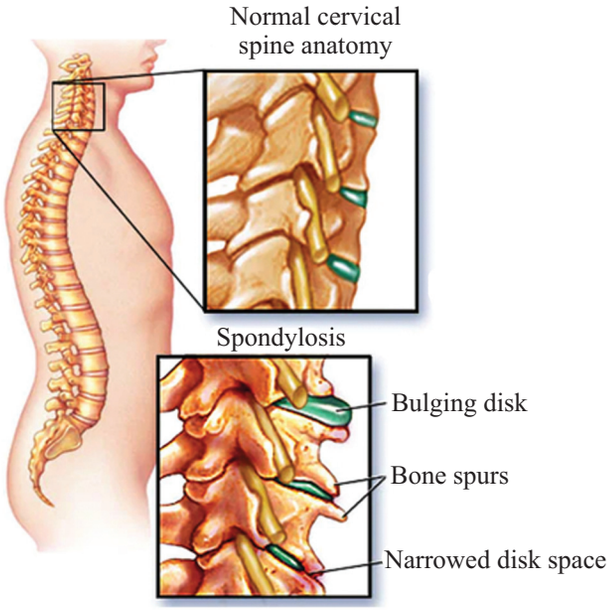

चित्र 14.4: सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. गर्दन में तीव्र वेदना और जकडन के साथ गर्दन का जाम हो जाना एवं गर्दन घुमाने में बहुत तेज दर्द होना।
2. गर्दन दर्द बढ़ते हुए कन्धों में दर्द और जकडन होना।
3. कमर दर्द के साथ आगे को झुकने में तीव्र दर्द होना।
4. हाथों व अंगुलियों में सुन्नपन होना और इन्द्रिय बोध कम होना।
5. आंखों के सामने अंधेरा छाते हुए चक्कर आना एवं सिरदर्द बने रहना ।
6. गर्दन में दर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।
7. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिढ़ापन, क्रोध, बैचेनी आदि उत्पन्न होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण अस्थि तंत्र के **सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस** रोग की ओर संकेत करते हैं।

14.3.3 पीठदर्द एवं कटिस्नायुशूल रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर के आधर के रुप में रीढ़ का वर्णन आता है। रीढ़ का निर्माण कुल 26 कशेरुकाओं के मिलने से होता है। इसके साथ-साथ रीढ़ से ही 31 जोड़ी मेरुतंत्रिकाएँ निकलती हैं। यह मेरुतंत्रिकाएँ रीढ़ से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैलकर संवेदनाओं को ग्रहण करने का

कार्य करती है। परन्तु शरीर की गलत मुद्राओं में देर तक कार्य करने (भारी सामान उठाने अथवा वातवर्द्धक ठंडी प्रकृति के आहार का अधिक सेवन अथवा अधिक गहरे व लचीले गद्दों पर सोने या चोट आदि कारकों के परिणास्वरुप रीढ़ की उपरोक्त कशेरुकाओं एवं तंत्रिकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा पीठ दर्द एवं कटिस्नायुशूल रोग उत्पन्न होता है।

चित्र 14.5: पीठदर्द एवं कटिस्नायुशूल रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. पीठ की रीढ़ के मध्य भाग में बहुत तेज दर्द होना।
2. पीठ दर्द बढ़ते हुए रीढ़ में जकडन होना।
3. कमर दर्द के साथ आगे को झुकने में तीव्र दर्द होना।
4. कार्य करने में असुविधा एवं दर्द होना।
5. विश्राम करने पर भी दर्द में आराम प्राप्त नहीं होना।
6. पीठदर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।
7. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिढ़ापन, क्रोध, बैचेनी आदि उत्पन्न होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण अस्थि तंत्र के पीठदर्द एवं कटिस्नायु शूल रोग की ओर संकेत करते हैं।

14.3.4 स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, पीठ दर्द ऐसा सामान्य एवं व्यापक रोग है जिसका सामना प्रायः अधिकांश लोगों को अपने जीवन में करना ही पड़ता है। इनमें से जहाँ कुछ व्यक्तियों को यह दर्द कभी-कभी

सताता है जो कुछ समय के उपरान्त ठीक हो जाता है किन्तु कुछ व्यक्ति इस पीठदर्द से स्थाई रुप से ही ग्रस्त रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आगे चलकर यह पीठदर्द 'स्लिप डिस्क' नामक रोग में परिर्वतित हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर इस दर्द की गंभीरता इतनी होती है कि इन लोगों का घूमना फिरना एवं कार्य करना लगभग बंद सा हो जाता है और ये लोग बिस्तर पकड लेते हैं।

स्लिप डिस्क अग्रेंजी भाषा का शब्द है जिसमें स्लिप का अर्थ फिसलने से और डिस्क का अर्थ मेरुदण्ड की कशेरुका से होता है अर्थात् वह अवस्था जिसमें मेरुदण्ड की कशेरुका अपने स्थान से फिसल जाती है, स्लिप डिस्क रोग के नाम से जाना जाता है। इस रोग का सीधा सम्बन्ध हमारी रीढ अर्थात् मेरुदण्ड से होता है जिसमें रीढ़ की कशेरुकाएँ अपने मूल स्थान से फिसल जाती हैं।

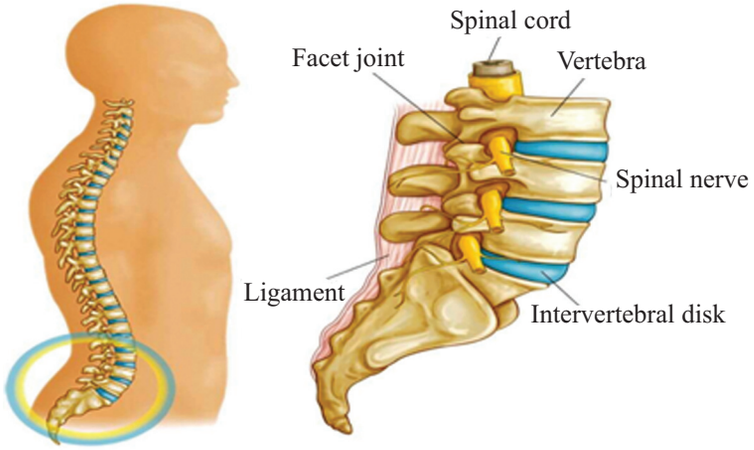

चित्र 14.6: स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. कमर के निचले भाग में तेज दर्द (लोवर बैक पेन) होना।
2. रीढ से निकलने वाली तंत्रिकाओं (नाडियों) का दब जाना।
3. शरीर का असन्तुलित होकर एक दिशा में झुक जाना और चलते समय एक ओर झुककर चलना।
4. दैनिक कार्य करने में असुविधा एवं दर्द होना।
5. रोग की गंभीर अवस्था में मल-मूत्र पर नियंत्रण का अभाव होना।
6. पीठदर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण अस्थि तंत्र के स्लिप डिस्क रोग की ओर संकेत करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 14.1

सही/गलत बताइए :

(क) पेशीय तंत्र के रोग पुरूषों के तुलना में महिलाओं में अधिक पाए जाते हैं। ( )

(ख) आर्थराइटिस को सन्धि शोथ के नाम से जाना जाता है। ( )

(ग) लोअर बैक पेन स्लिप डिस्क का लक्षण है। ( )

14.4 अस्थि रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, अस्थि तंत्र के रोगों में यौगिक क्रियाओं जैसे आसन, मुद्रा-बंध एवं प्राणायाम का अभ्यास रोग दूर करने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। इन क्रियाओं का अभ्यास कराने से रोगी को तुरन्त लाभ मिलने लगता है तथा लम्बे समय तक इन क्रियाओं का नियमित अभ्यास कराने से रोग के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होने लगता है। इनके साथ योगमय जीवनशैली का पालन करते हुए प्रात:काल सूर्योदयपूर्व उठते हुए नित्य यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने एवं सकारात्मक मनन चिन्तन करते हुए तनाव से मुक्त रहने पर अस्थि तंत्र के सभी रोग समूल ठीक होते है। अस्थि तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा इस प्रकार है –

14.4.1 षट्कर्म का प्रभाव

प्रिय शिक्षार्थियों, षट्कर्मों की छ: क्रियाओं धौति, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति का रोग की स्थिति एवं रोगी की क्षमतानुसार अभ्यास कराने से रोगी के शरीर का शोधन होता है। इसके साथ-साथ वात-पित्त और कफ नामक त्रिदोषों में सन्तुलन स्थापित होता है जिससे अस्थि तंत्र के सभी रोगों में लाभ मिलता है। बस्ति क्रिया के अभ्यास से शरीर में कुपित वात दोष पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद में वात का मुख्य स्थान बड़ी आँत माना गया है यहाँ पर स्थित वायु यदि कुपित हो जाती है तो भिन्न-भिन्न प्रकार के वात रोग पैदा होते है। इस वात को वस्ति

चित्र 14.7: जलनेति

कर्म के अभ्यास से बड़ी आसानी से शान्त किया जा सकता है। अत: बस्ति क्रिया के अभ्यास से कमर दर्द, आर्थराइटिस और सर्वाइकल आदि अस्थि तंत्र के रोगों में बहुत लाभ मिलता है। त्राटक क्रिया का मानसिक स्थिरता और एकाग्रता उत्पन्न करता है। इसके साथ निम्न अथवा मध्यम गति से कपालभाति क्रिया का अभ्यास करने से विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

14.4.2 आसन का प्रभाव

अस्थि तंत्र के रोगों का उपचार करने में आसनों का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव देता है। आसनों के अभ्यास से अस्थि तंत्र के रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। यहाँ महत्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य यह है कि यद्यपि, रोग की तीव्र अवस्था में रोगी व्यक्ति आसनों का अभ्यास करने में असक्षम होता है तथा रोगी को बलपूर्वक आसन कराने से रोगी का दर्द तेजी से बढ़ जाता है अत: रोगी को अत्यन्त सावधानीपूर्वक हल्के हल्के आसनों और विशेष रुप से संधि संचालन के सूक्ष्म अभ्यासों को कराना चाहिए। रोगी को पैर की उगुलियों, पंजों, घुटनों, कुल्हे, हाथ की उंगुलियों, कलाई, कोहनी, कन्धों एवं गर्दन को गतिशील बनाने वाले अभ्यासों को बार बार सुबह और शाम दोनों समय अभ्यास कराने से रोग में लाभ मिलता है।

उपरोक्त सूक्ष्म अभ्यासों से रोग की तीव्रता कम होने पर रोगी को आसनों के क्रम पर लाते हुए धीरे-धीरे एवं सावधानीपूर्वक आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण सावधानी यह होती है कि अस्थि तंत्र के रोगों में आगे की ओर झुकने वाले आसन जैसे पश्चिमोत्तानासन, योगमुद्रा आदि पूर्ण रुप से निषेध होते हैं अत: अस्थि तंत्र के रोगों में रोगी को रीढ़ के पीछे एवं पार्श्व में मुड़ने वाले आसनों जैसे सर्पासन, भुजँगासन, मकारासन, पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, मत्स्यासन, मरकटासन, गोमुखासन, उष्ट्रासन, वक्रासन, अर्द्धचन्द्रासन, वातायन आसन एवं शवासन आदि आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। भुजंगासन का अभ्यास अस्थि तंत्र के सभी रोगों में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। इसी प्रकार मरकट आसन का अभ्यास रीढ़ की सभी कशेरुकाओं पर बहुत लाभकारी प्रभाव डालता है। रोग की अवस्था सामान्य होने पर व्यक्ति की क्षमतानुसार चक्रासन का अभ्यास रीढ़ को सशक्त और बलवान बनाता है। अस्थि तंत्र के रोगों में आसनों के महत्व को देखते हुए वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत अस्थि तंत्र के रोगों की फिजीयोथैरेपी का प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है जिसमें चिकित्सक सहायता देकर रोगी को आसनों का अभ्यास करवाता है।

14.4.3 मुद्रा एवं बन्ध का प्रभाव

अस्थि तंत्र के रोगों का सम्बन्ध वात दोष की विकृति से होता है। शरीर में वात दोष को सम बनाने के लिए मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। रोगी को उसकी क्षमतानुसार काकी, शाम्भवी तथा महामुद्राओं आदि मुद्राओं का अभ्यास कराना चाहिए। इसके साथ साथ मूल, उड्डियान एवं जालंधर बन्धों का अभ्यास भी रोगी को कराना चाहिए।

14.4.4 प्रत्याहार का प्रभाव

अस्थि तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रिय संयम अपनी एक विशेष भूमिका का वहन करता है। प्रत्याहार के अर्न्तगत सुव्यवस्थित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का अनुशासन से पालन करने से रोग समूल नष्ट होता है। इसके साथ खानपान सम्बन्धित बुरी आदतों पर नियंत्रण करने से भी रोगों में स्वत: स्थाई लाभ प्राप्त होने लगता है।

14.4.5 प्राणायाम का प्रभाव

अस्थि तंत्र के रोगों में रोगी को प्राणायाम के अभ्यास से प्राण शक्ति को जाग्रत करना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में नाड़ी शोधन, अनुलोम विलोम, सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी आदि प्राणायामों का नियमित अभ्यास कराने से रोगों में स्थाई लाभ मिलता है। रोगी को साफ स्वच्छ वातावरण में एकान्त स्थान पर बैठकर स्थिर मन से एवं नियमित रुप से प्राणायामों का अभ्यास करने से अस्थि तंत्र के रोग ठीक होने लगते हैं।

14.4.6 ध्यान एवं समाधि का प्रभाव

ध्यान के द्वारा रोगी अपने मन की नकारात्मक वृत्तियों पर विजय प्राप्त करता है और सम्पूर्ण ऊर्जा को केन्द्रित करता है। रोग की नकारात्मकता से हटकर सकारात्मक विचारों एवं भावों का चिन्तन मनन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवन शक्ति उन्नत बनती है और अस्थि तंत्र के सभी रोग दूर होते हैं। इसी प्रकार ईश्वर में आस्था को दृढ बनाते हुए समाधिरुपी सकारात्मक अनुभूतियों को धारण करने से अस्थि तंत्र के सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है और समग्र स्वास्थ्य का विकास होता है।

उपरोक्त योगाभ्यास के साथ रोगी व्यक्ति को निम्न अपथ्य आहार का त्याग और पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए-

अपथ्य आहार: नमक, चीनी, चाय, मिर्च, मसाले, खट्टी दही, वसा, डालडा, घी-तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, धूम्रपान, एल्कोहल, फास्ट फूड, जंक फूड, बर्फ-आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स, सोडा वाटर आदि कृत्रिम खाद्य पदार्थों का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य आहार: हल्का सुपाच्य आहार, अंकुरित चना, गेहूँ-जौ और चना मिलाकर चोकर युक्त आटे की रोटियाँ, दूध एंव दूध से बने पदार्थ, घी, मख्खन, मौसमी फल-सब्जियाँ जैसे प्याज, लहसुन, चुकन्दर, गाजर, लौकी, तुरई, टमाटर, नींबू, विटामिन्स और खनिज लवणों (कैल्शियम और फास्फोरस) युक्त ताजे फल- जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, बादाम, मुनक्का, खजूर आदि सुपाच्य एवं पोषक तत्वों युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 14.2

रिक्त स्थान भरिए :

(क) रीढ़ में कशेरूकाओं की कुल संख्या ..... है।

(ख) रीढ़ से ..... जोड़ी मेरुतंत्रिकाएँ निकलती है।

(ग) मेरूदंड की कशेरूका अपने स्थान से फिसल जाती है, ... रोग के नाम से जाना जाता है।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में पेशिय तंत्र एवं अस्थि तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में शरीर की मांसपेशियों के प्रमुख रोगों का सामान्य परिचय देते हुए उनकी यौगिक चिकित्सा का उल्लेख किया गया है और इसके उपरान्त अस्थि तंत्र के रोगों का सामान्य परिचय देते हुए उनकी यौगिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि यौगिक अभ्यासों का शरीर कर मांसपेशियों और अस्थियों की क्रियाशीलता पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नियमित रूप से इन क्रियाओं का अभ्यास करने से मानव शरीर की सभी अस्थियाँ और मांसपेशियाँ सदैव स्वस्थ बनी रहती हैं। जबकि अस्थियों और मांसपेशियों में रोग उत्पन्न होने पर भी यौगिक अभ्यास इनसे सम्बन्धित रोगों को दूर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यौगिक क्रियाओं में षट्कर्म शरीर का शोधन करने के साथ वात-पित्त और कफ दोषों को सम बनाते हैं जिससे इन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। योगासनों का अभ्यास रक्त संचार में वृद्धि करने के साथ रीढ़, अस्थियों और मांसपेशियों को लचीला और दृढ बनाते हैं। इनके दृढ और लचीला बनने से इनके समस्त रोग समूल नष्ट होते हैं। मुदा और बन्धों के अभ्यास से आन्तरिक ऊर्जा की उत्पत्ति होती है और प्राणायाम का अभ्यास प्राण तत्व को सबल बनाता है। इससे शरीर की रोग प्रतिधक क्षमता और जीवनी शक्ति उन्नत बनती है और रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त होती है। इन्द्रियों पर संयम से अच्छी आदतों का विकास होता है और दिनचर्या एवं आहार सम्बन्धी अनुशासन की प्राप्ति होती है। ध्यान और समाधि के अभ्यास से सम-विषम परिस्थितियों में अनुकूलन क्षमता का विकास होता है और ईश्वर में आस्था दृढ होने के साथ श्रेष्ठ आत्मबल प्राप्त होता है। यह रोगावस्था पर विजय प्राप्त करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। इसके साथ-साथ अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करने से अस्थि और पेशियों के रोगों से पूर्ण मुक्ति प्राप्त होती है।

यूनिटांत प्रश्न

1. मांसपेशिय रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. स्लिप डिस्क रोग के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए यौगिक चिकित्सा लिखिए।
3. सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस रोग के प्रमुख लक्षण लिखते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा का वर्णन किजिए।
4. पीठदर्द रोग की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

(क) सही (ख) सही (ग) सही

14.2

(क) 26 (ख) 31 (ग) स्लिप डिस्क

टिप्पणियाँ

15

तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी बीमारियाँ एवं यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व यूनिट में आपने मस्कुलोस्केलेटल तंत्र से सम्बन्धित रोगों की यौगिक चिकित्सा के विषय में अध्ययन किया और ज्ञान प्राप्त किया कि अस्थियों के साथ-साथ पेशियों के गतिशील होने पर हमारा शरीर विभिन्न कार्यों को करने में सक्षम होता है अथवा दूसरे शब्दों में हमारे शरीर को क्रियाशील एवं गतिमान बनाने में अस्थियों के साथ-साथ मांसपेशियाँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं। मांसपेशियों में विकृति उत्पन्न होने पर शरीर भारी होकर एक गतिहीन पुतला बन जाता है जबकि मांसपेशियों के सही प्रकार क्रियाशील होने पर शरीर हल्का, गतिशील एवं कार्य करने में सक्षम बना रहता है। पूर्व के यूनिट से यह भी स्पष्ट हुआ कि गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव, योगाभ्यास का अभाव और गलत मुद्राओं में कार्य करने के कारण शरीर की अस्थियों और पेशियों में दर्द और जकड़न की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे शारीरिक कार्यों को करने में बाधा उत्पन्न होने के साथ रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है इसी से जोड़ों में दर्द, गठिया, आर्थराईटिस आदि रोग जन्म लेते हैं जबकि इसके विपरित योगमय जीवनशैली को अपनाते हुए नियमित षट्कर्म की शोधन क्रियाओं का अभ्यास करते हुए योगासन, प्राणायाम और ध्यान आदि का अभ्यास करने एवं सम्यक श्रम करने से एवं आहार-विहार पर संयम करने से शरीर की पेशीयाँ स्वस्थ्य एवं क्रियाशील बनी रहती हैं। अब यहाँ पर महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन शरीर की पेशीयों का मनुष्य के तंत्रिका तंत्र के साथ भी सीधा सम्बन्ध होता है और शरीर की समस्त ऐच्छिक एवं अनैच्छिक पेशीयों पर तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है अत: प्रस्तुत यूनिट में तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोगों एवं उनके यौगिक उपचार पर विचार करते हैं।

मानव शरीर के सभी 11 तंत्रों में तंत्रिका तंत्र का अपना विशिष्ट स्थान होता है क्योंकि तंत्रिका तंत्र ही अन्य सभी तंत्रों पर नियंत्रण करता है। इसलिए तंत्रिका तंत्र के स्वस्थ होने पर शरीर के

सभी तंत्र अपना कार्य सुचारु रुप से करने में सक्षम बने रहते हैं जबकि तंत्रिका तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर शरीर के अन्य तंत्र भी अपना कार्य सही प्रकार करने में सक्षम नहीं रह पाते हैं। वास्तव में यह तंत्रिका तंत्र ही होता है जो मनुष्य को श्रेष्ठ चिन्तन प्रदान करता हुआ इस संसार के सभी जीवों में सबसे उच्च कोटि की पदवी पर स्थापित करता है। इस प्रकार तंत्रिका तंत्र का मनुष्य के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तुत यूनिट में तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि का परिचय और लक्षण समझाते हुए इनकी यौगिक चिकित्सा पर सविस्तार विचार किया गया है।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों के सामान्य परिचय पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों की यौगिक चिकित्सा को व्यवहार में ला सकेंगे।

15.1 तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य शरीर में अनेक स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियाएँ प्रतिक्षण चलती रहती हैं। इन क्रियाओं में कुछ ऐच्छिक से सम्पन्न होती हैं तो कुछ क्रियाएँ अनैच्छिक रुप से चलती रहती हैं। शरीर की इन सभी क्रियाओं का नियंत्रण और नियमन तंत्रिका तंत्र के द्वारा किया जाता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख अंग होते हैं। इसके साथ-साथ मस्तिष्क और सुषुम्ना से निकलकर अनेक तंत्रिकाएँ सम्पूर्ण शरीर में एक अविच्छन्न जाल के रुप में फैली होती है। इन सभी रचनाओं के मिलने से तंत्रिका तंत्र का निर्माण होता है। जिससे शरीर की सभी क्रियाओं का नियंत्रण होता है।

वर्तमान समय में मनुष्य का तनावपूर्ण एवं प्रतिर्स्पधात्मक चिन्तन, गलत जीवनशैली, विकृत आहार का सेवन एवं नकारात्मक सोच-विचार आदि कारक तंत्रिका तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव रखते हैं, जिनके परिणामस्वरुप तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। वर्तमान समय में तंत्रिका तंत्र से ग्रसित रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग निम्न होते हैं-

15.1.1 माइग्रेन रोग (Migrane)

माइग्रेन तंत्रिका तंत्र का एक जटिल रोग है। माइग्रेन रोग से ग्रस्त होने पर मनुष्य के सिर के आधे भाग में बहुत तीव्र वेदना रहती है इसलिए इसे हिन्दी भाषा में **अधकपारी** रोग भी कहा जाता है। इस अवस्था में सिर के किसी एक स्थान पर अथवा आधे भाग में बहुत तेज दर्द अथवा

छनछनाहट रहता है। यह दर्द 2 घंटे से लेकर 72 घंटों तक लगातार बना रहता है और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस अवस्था में दर्द निवारक दवाईयों का प्रयोग भी प्रभावहीन रहता है। कुछ समय यह दर्द रहने के उपरान्त स्वत: ही ठीक हो जाता है, इस अवस्था को माइग्रेन रोग कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर निश्चित समयावधि पर रोगी व्यक्ति को तीव्र सिरदर्द होने लगता है जो स्वत: ही ठीक होता है।

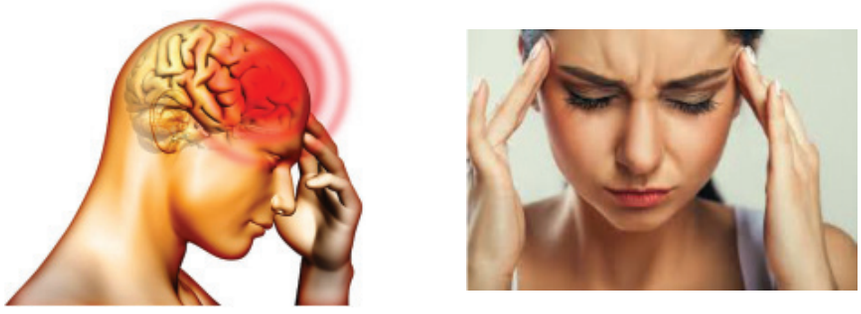

चित्र 15.1: माइग्रेन रोग

हमें इस प्रकार समझना चाहिए कि सिर दर्द तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक सामान्य (Common Disorder) विकृति है जिससे ग्रसित मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक है। वास्तव में यह एक बीमारी अथवा रोग नहीं हैं अपितु यह शरीर में हो रही किसी असहज अथवा प्रतिकूल घटना या क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जो यह सूचना देती है कि कुछ ऐसा घटित हो रहा है ''जो शरीर अथवा मन के लिये प्रतिकूल, अनुपयुक्त, असामान्य एवं अस्वाभाविक है और जिसके प्रभाव से शरीर की सामान्य क्रियाएँ बाधित हो रही हैं''। इस अवस्था का परिणाम **सिरदर्द** के रुप में प्रकट होता है। कभी यह सिरदर्द कम समय के लिए होता है तो कभी यह लम्बे समय तक चलता रहता है जिसे माइग्रेन की संज्ञा दी जाती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

माइग्रेन रोग के प्रमुख लक्षण

1. सिर में भारीपन अथवा तेज दर्द होना।
2. शरीर की चयापचय दर, रक्तचाप, हृदय गति एवं श्वसन दर सामान्य से अधिक होने के साथ बैचन एवं उग्र रहना।
3. सदैव स्वयं को तनावग्रस्त, समस्याओं एवं कठिनाइयों से घिरा अनुभव करना।
4. स्वभाव असामान्य रुप से चिड़चिड़ा, क्रोधी, परेशान एवं ईर्ष्यायुक्त हो जाना।
5. अधिक समय नकारात्मक चिन्तन, उलझनों और तनाव से ग्रस्त रहने के साथ रात्रि की नींद बाधित हो जाना।
6. समस्याओं के समक्ष स्वयं को असहज एवं असक्षम अनुभव करना और निर्णय क्षमता कमजोर हो जाना।
7. शरीर तेजहीन एवं ऊर्जाहीन होने के साथ शरीर का वजन कम हो जाना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण माइग्रेन रोग के लक्षण होते हैं।

15.1.2 वर्टिगो रोग (Vertigo)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक गंभीर रोग किन्तु सामान्य रोग है। गंभीर से अर्थ है कि, इस रोग से ग्रस्त होने पर मस्तिष्क की क्रियाविधि बाधित हो जाती है और मस्तिष्क का शरीर पर नियंत्रण कम हो जाता है। जबकि सामान्य से अभिप्राय यह है कि, चिकित्सकों की मान्यता के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत व्यक्ति अपने जीवन में इस अवस्था को अनुभव करते हैं। इस प्रकार इस रोग की समाज में व्यापकता बहुत है। वर्टिगो लैटिन भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है घूमना अथवा चक्कर आना। अर्थात् वह अवस्था जिसमें रोगी व्यक्ति को चक्कर आने लगते हैं और दिमागी असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, वर्टिगो रोग कहलाता है।

चित्र 15.2: वर्टिगो रोग

यद्यपि यह रोग वृद्धावस्था में अधिक पाया है किन्तु वर्तमान समय में अधिक चिन्ता, तनाव, उच्चरक्तचाप, अनिद्रा और तनाव आदि कारकों के फलस्वरुप कम उम्र के व्यक्तियों और विशेष रुप से शिक्षार्थियों में भी यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

वर्टिगो रोग के प्रमुख लक्षण

1. चक्कर आने के साथ मस्तिष्क घूमने लगता और आँखों के सामने अंधेरा छा जाना।
2. शरीर में अचानक बहुत अधिक पसीना आना।
3. मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करना और चेतनाहीन हो जाना।
4. व्यक्ति का स्वयं को असन्तुलित एवं अस्थिर अनुभव करना।
5. अचानक भय से ग्रस्त हो जाना।
6. आवाज देने पर भी सुनाई ना देना और प्रतिउत्तर नहीं करना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण वर्टिगो रोग का संकेत करते हैं।

15.1.3 अनिद्रा (Insomnia)

निद्रा को मनुष्य के लिए ईश्वर का दिया एक वरदान माना जाता है। रात्रि में भली प्रकार निद्रा का आना एक स्वस्थ्य व्यक्ति की प्रमुख पहचान होती है। निद्रा इस संसार के किसी भी प्राणी के लिए थकान से मुक्ति प्राप्त करने का सबसे सरल किन्तु प्रभावशाली साधन होता है। मनुष्य भी निद्रा के द्वारा दिनभर की समस्याओं और थकान से मुक्ति प्राप्त करते हुए एक नई ऊर्जा प्राप्त करता है। किन्तु अत्यधिक मानसिक तनाव, मन में दबी हुई इच्छाएँ, कुंठा अथवा दिनभर के कटु अनुभव के कारण जब रात्रिकाल में मनुष्य गहरी निद्रा से वंचित होने लगता है अथवा उसकी निद्रा में बार-बार बाधा उत्पन्न होती है, वह अवस्था 'अनिद्रा रोग' कहलाती है।

वर्तमान समय में यह रोग बहुत तेजी से समाज में फैलता जा रहा है। इस रोग को उत्पन्न करने में एवं बढ़ाने में उत्तेजक आहार का सेवन, पाचन अथवा तंत्रिका तंत्र की विकृति, प्रतिकूल स्थान जैसे बहुत गर्मी-सर्दी, ध्वनि, दुर्गन्ध आदि, मानसिक तनाव, दबी इच्छाएँ एवं कुंठा आदि महत्वपूर्ण कारण होते हैं। इस रोग से ग्रस्त होने पर सिरदर्द, तनाव, थकान, उच्चरक्तचाप और मधुमेह आदि गंभीर रोगों की संभावनाएँ बढ़ जाती है। इस रोग से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य नशीली दवाईयों अथवा पदार्थों का सेवन भी करने लगता है किन्तु इनके सेवन से समस्या अधिक जटिल और गंभीर हो जाती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. रात्रिकाल में निश्चित समय पर गहरी निद्रा न आना।
2. एक बार निद्रा आने पर जल्दी ही निद्रा टूट जाना और पुनः प्रयास करने पर भी निद्रा नहीं आना।
3. प्रातःकाल उठने पर ताजगी, स्फूर्ति और ऊर्जा की कमी अनुभव करना।
4. दिनभर थकान, कमजोरी, सुस्ती और आलस्य बना रहना।
5. एकाग्रता का अभाव, सिरदर्द, स्मरण शक्ति कमजोर होना और कार्यों में अरुचि उत्पन्न होना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण अनिद्रा रोग की ओर संकेत करते हैं।

15.2.4 आत्मकेन्द्रिता, स्वलीनता (Autism)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक विकार है जो प्रमुख रुप से शिक्षार्थियों और छात्र जीवन में अधिक होता है। इसे आत्मविमोह और स्वपरायणता आदि नामों से भी जाना जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार बहुत सीमित हो जाता है और वह अणिक समय स्वयं में ही खोया रहता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर मस्तिष्क की रचनात्मक क्रियाविधि बाधित हो जाती है और बुद्धि का रचनात्मक विकास रुक जाता है। इस रोग के प्रति जागरुकता बढ़ाने के लिए प्रतिवर्ष 2 अप्रैल को विश्व स्वलीनता जागरुकता दिवस मनाया जाता है।

World Autism Awareness Day

2nd April

चित्र 15.3: आत्मकेन्द्रिता, स्वलीनता

यह रोगावस्था आगे चलकर गंभीर रुप धारण करने लगती है जिसमें व्यक्ति स्वयं की बात दूसरों से कह पाने में असक्षम होने लगता और ना ही दूसरों के बात सही प्रकार समझ पाता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति दूसरों से सही प्रकार संवाद नहीं कर पाता है और अजीब क्रियाएँ करने लगता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

आत्मकेन्द्रिता रोग के प्रमुख लक्षण :

1. अधिक समय तक स्वयं में ही खोया रहना।
2. सामाजिक निष्क्रियता होना।
3. अपनी समस्याओं को दूसरों के साथ साझा नहीं करना।
4. बौद्धिक क्रियाशीलता कम होने के साथ रचनात्मकता का अभाव होना।
5. अर्थहीन क्रियाएँ करना और उन्हें दोहराते रहना।
6. आवाज देने पर भी सुनाई ना देना और प्रतिउत्तर नहीं करना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण आत्मकेन्द्रिता रोग का संकेत करते हैं।

15.1.5 पक्षाघात या लकवा रोग (Paralysis)

यह तंत्रिका तंत्र और मांसपेशियों से सम्बन्धित रोग है। इस रोग में शरीर के किसी एक भाग अथवा अधिक भागों की मांसपेशियाँ क्रियाहीन होकर कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं जिसके कारण शरीर का वह भाग कार्य करने अथवा घूमने-फिरने में असमर्थ हो जाता है।

वर्तमान समय में यह रोग समाज में बहुत तेजी से फैल रहा है जिसमें अचानक शरीर के किसी एक भाग अथवा सम्पूर्ण शरीर पर मस्तिष्क का नियंत्रण समाप्त हो जाता है। यद्यपि कुछ अवस्था एवं कुछ सीमा तक यह नियंत्रण पुनः प्राप्त भी हो जाता है किन्तु पूर्णरुप से नियंत्रण प्राप्त नहीं होता है, यह रोगावस्था पक्षाघात अथवा लकवा कहलाती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

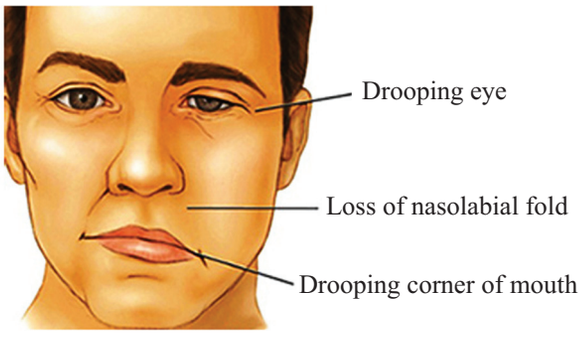

चित्र 15.4: पक्षाघात या लकवा रोग

पक्षाघात या लकवा रोग के प्रमुख लक्षण :

1. शरीर के किसी भाग में सुन्नपन होना और उस भाग पर मस्तिष्क का नियंत्रण हट जाना।
2. सिर में तेज दर्द के साथ किसी भाग में अजीब अनुभूति होना।
3. सांस लेने में कठिनाई और मुँह से लार टपकना।
4. सोचने-समझने, पढ़ने-लिखने और देखने-बोलने में कठिनाई होना।
5. व्यवहार में बदलाव के साथ असामान्य व्यवहार करना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण पक्षाघात अथवा लकवा रोग का संकेत करते हैं।

15.1.6 पार्किंसन रोग (Peralysis)

पार्किंसन रोग तंत्रिका और पेशीय तंत्र से जुड़ा एक गंभीर रोग होता है। इस रोग का आरम्भ बहुत धीरे-धीरे होता है जिससे रोगी को यह पता ही नहीं चल पाता है कि, कब वह इस रोग की चपेट में आ गया है। जब चिकित्सक रोगी से पूर्व की घटनाओं के विषय में पूछते हैं तो उन्हें लगता है कि रोग के लक्षण उनमें पिछले काफी समय से आ रहें हैं परन्तु इन पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए इस रोग को चुपके से आने वाला रोग (Silent Disease) की संज्ञा दी जाती है।

चित्र 15.5: पार्किंसन रोग

इस रोग का आरम्भ कम्पन से होता है जो पहले यदा-कदा ही होता है और धीरे-धीरे बढ़ता हुआ गंभीर रुप धारण कर लेता है। इस रोग की चपेट में आने के उपरान्त रोगी व्यक्ति का शरीर के अंगों पर नियंत्रण कम हो जाता है और अंगों में प्रतिक्षण तीव्र कम्पन बना रहता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

पार्किंसन रोग के प्रमुख लक्षण

1. इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण हाथों-पैरों व शरीर के अन्य अंगों में सूक्ष्म कम्पन होना होता है जो धीरे-धीरे बढ़ता हुआ शरीर के अन्य अंगों में फैलने लगता है।
2. लिखने में कठिनाई होना, सुई में धागा पिरोने में कठिनाई होना और हाथों को स्थिर करने में कठिनाई होना।
3. शरीर के अन्य भागों की मांसपेशियों में सूक्ष्म कम्पन प्रारम्भ होने के साथ इन अंगों पर मस्तिष्क का नियंत्रण कम होना।
4. पाचन क्रिया अवयवस्थित होने के साथ लम्बे समय तक कब्ज रोग से ग्रस्त होना।
5. शरीर की कार्यक्षमता में कमी आने के साथ श्रम करने में श्वास फूलना, चक्कर आना और खड़े होने पर अचानक आँखों के सामने अंधेरा छा जाना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण शरीर में पार्किंसन रोग का संकेत करते हैं।

15.1.7 अल्जाइमर रोग (Vertigo)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक ऐसी बीमारी जिसमें व्यक्ति की स्मरण शक्ति बहुत कमजोर हो जाती है और उसे कुछ भी स्मरण नहीं रह पाता है, एल्जाइमर रोग कहलाता है। यद्यपि पूर्वकाल में इसे वृद्धावस्था का लक्षण माना जाता था किन्तु वर्तमान समय में दिनचर्या का असंभव, विकृत खान-पान और तनाव आदि कारकों के फलस्वरुप यह रोग शिक्षार्थियों और युवाओं में भी बहुत तेजी से बढ़ रहा है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

अल्जामर रोग के प्रमुख लक्षण :

1. स्मरण शक्ति बहुत कमजोर होना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण है।
2. समय प्रबंधन का अभाव अर्थात् किसी भी कार्य करने में समय का ध्यान न रहना।
3. किसी भी कार्य के परिणाम का सही अनुमान नहीं कर पाना।
4. बौद्धिक एवं सामाजिक क्रियाशीलता कम हो जाना।
5. नये कार्य को सीख पाने में असमर्थ होना।
6 असामान्य व्यवहार करना जैस अचानक रोना, हँसना अथवा क्रोधित होना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण अल्जाइमर रोग का संकेत करते हैं।

15.1.8 मेनिन्जाइटिस रोग

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक गंभीर रोग होता है जिसे सामान्य भाषा में **दिमागी बुखार या मस्तिष्कावरणशोथ** कहा जाता है। चिकित्सकीय मान्यता के अनुसार जब बैक्टीरिया, वायरस अथवा अन्य सूक्ष्म जीवों के संक्रमण के कारण मस्तिष्क एवं मेरुरज्जू को ढ़कने वाली झिल्लीयों में सूजन आरम्भ हो जाती है, वह अवस्था **मेनिन्जाइटिस रोग** अथवा मस्तिष्कावरण शोथ अथवा दिमागी बुखार कहा जाता है।

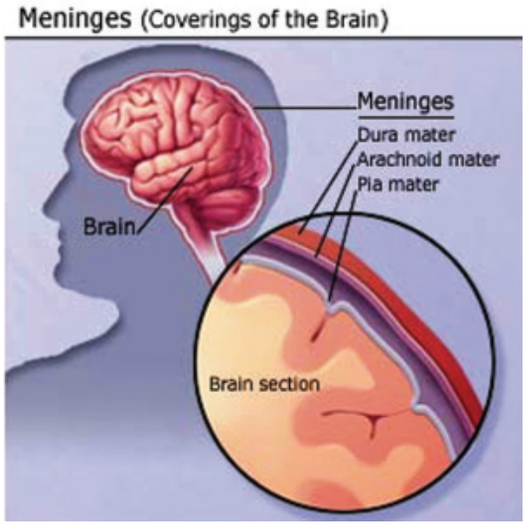

चित्र 15.6: मेनिन्जाइटिस रोग

चूंकि मस्तिष्क मानव शरीर का सबसे महत्वर्पूण एवं कोमल अंग होता है अत: यह अवस्था शरीर के लिए बहुत गंभीर हाती है। इस अवस्था में व्यक्ति का स्वयं पर नियंत्रण नहीं रह पाता है और ग्रसित मनुष्य के लिए भ्रम की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

मेनिन्जाइटिस रोग के प्रमुख लक्षण :

1. गर्दन में जकड़न के साथ सिर में भारीपन के साथ तेज दर्द होना।
2. शरीर का तापक्रम बढ़ने के साथ बुखार आना।
3. मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करना और भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना।
4. ऊँची ध्वनि एवं प्रकाश को सहन करने में असक्षम होना।
5. स्वभाव में चिड़चिड़ापन, बैचेनी एवं अनिद्रा उत्पन्न होना।
6. शारीरिक कमजोरी के साथ मानसिक शिथिलता उत्पन्न होना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण मेनिन्जाइटिस रोग का संकेत करते हैं।

15.1.9 मिर्गी रोग (Epilepsy)

मनुष्य के मस्तिष्क की अनियंत्रित अवस्था मिर्गी रोग कहलाती है, जिसमें मनुष्य असामान्य व्यवहार करने लगता है। वास्तव में मस्तिष्क की तंत्रिकाएँ, जिन्हें न्यूरॉन कहा जाता है, एक-दूसरे के साथ विद्युत आवेगों से संचार करती हैं किन्तु जब इन तंत्रिकाओं के विद्युत आवेग बाधित हो जाते हैं तब मस्तिष्क असामान्य एवं अजीब व्यवहार करने लगता है जिसे मिर्गी रोग की संज्ञा दी जाती है। इसमें दौरे पड़ने लगते हैं जो कभी कम समय के लिए होते हैं तो कभी लम्बे समय तक चलते हैं।

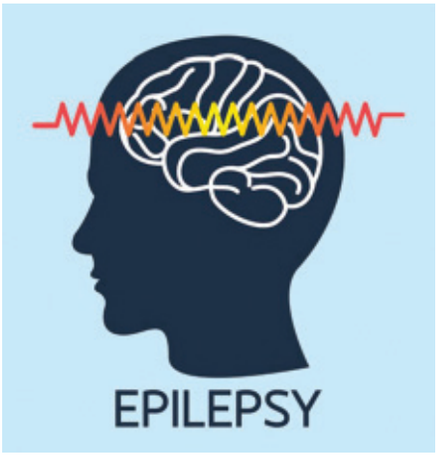

चित्र 15.7: मिर्गी रोग

वास्तव में हमारे शरीर के सभी अंगों एवं अंगों की सभी क्रियाओं पर मस्तिष्क का प्रतिक्षण नियंत्रण रहता है। परन्तु वह अवस्था जब शरीर के अंग और क्रियाओं पर मस्तिष्क का नियंत्रण नहीं होता है और मनुष्य की चेतना असन्तुलित होकर वह अजीब व्यवहार करने लगता है, वह अवस्था मिर्गी रोग कहलाती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं-

मिर्गी रोग के प्रमुख लक्षण

1. मनुष्य का कुछ समय के लिए बेसुध अथवा चेतनाहीन हो जाना।
2. हाथों-पैरों अथवा सिर को असामान्य रुप से झटकना अथवा पटकना।
3. मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करने के कारण मनुष्य के द्वारा असामान्य व्यवहार करना।
4. शरीर की मांसपेशियों का बहुत कड़ा अथवा बिल्कुल ढ़ीला हो जाना और मनुष्य का अचानक गिर पड़ना।
5. स्वभाव में अस्थिरता आ जाना, भय-चिन्ता से ग्रस्त रहना और आत्मविश्वास का अभाव आदि लक्षण प्रकट होना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण मिर्गी रोग का संकेत करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 15.1

सही/गलत बताइए :

(क) मस्तिष्क और सुषुम्ना तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख अंग होते हैं। ( )

(ख) वर्टिगो रोग में रोगी व्यक्ति को चक्कर आने लगते हैं। ( )

(ग) मनुष्य का कुद समय के लिए बेसुध या चेतनाहीन हो जाना मिर्गी रोग का लक्षण नहीं है। ( )

15.2 तंत्रिका तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा

तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि के उपचार में अंग्रेजी दवाईयों का सेवन करने से विशेष लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है अपितु कुछ समय के लिए लक्षण कम होने से आराम आराम की अनुभूति होती है किन्तु रोग से स्थाई मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। इसके साथ-साथ अंग्रेजी दवाईयों का शरीर एवं मन पर दुष्प्रभाव भी पड़ता है। इसके स्थान पर योग चिकित्सा के द्वारा तंत्रिका तंत्र के इन रोगों का स्थाई उपचार किया जा सकता है। तंत्रिका तंत्र के इन रोगों की योग चिकित्सा में मन को भी स्वस्थ एवं सकारात्मक बनाया जाता है।

मानव तंत्रिका तंत्र का मन के साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। मन के स्वस्थ और सकारात्मक रहने से तंत्रिका तंत्र भी स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है जबकि मन में नकारात्मक विचार एवं भावनाएँ उत्पन्न होने से तंत्रिका तंत्र के विभिन्न रोग जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान काल में इन रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आयी हुई है। छोटी उम्र के बच्चों से लेकर व्यस्क और वृद्ध सभी आयु वर्ग के मनुष्यों में ऐसी समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। वर्तमान समय में मन की चंचलता बढ़ने के साथ मनुष्य में धैर्य का स्तर और भाव-सवेंदनाएँ समाप्त सी होती जा रही हैं। आपसी मतभेद दिनोंदिन तेजी से बढ़ते जा रहे हैं और सामंजस्य कम होता जा रहा है। मानवीय गुणों- सहानुभूति, क्षमा, दया और सरलता के ह्रास के साथ तामसिक वृत्तियाँ- क्रोध, अहंकार, ईष्या और द्वेष बढ़ते जा रहें हैं। इस क्रम में नई पीढ़ी अपने अलग सपनों की दुनिया के साथ नशे के जंजाल में जकड़ती जा रही है। ऐसी अवस्था में योग चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। वास्तव में यौगिक क्रियाएँ मनुष्य के मन, मस्तिष्क और सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रुप से प्रभावित करती हैं। तंत्रिका तंत्र रोगों की योग चिकित्सा इस प्रकार होती है-

15.2.1 यम-नियम का पालन करना

योगसूत्रों के रचनाकार महर्षि पतंजलि अष्टांग योग का प्रारम्भ यम-नियम के साथ करते हुए कहते हैं -

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि॥

(पा. यो. सूत्र 2/29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि अष्टांग योग के आठ अंग हैं। यम मनुष्य को सामाजिक स्तर सकारात्मक बनाते हैं तो वहीं दूसरी ओर नियम का पालन करने से मनुष्य व्यक्तिगत स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बनता है। यम-नियम का पालन मनुष्य को हिंसा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष एवं संग्रह की वृत्ति से मुक्त बनाता है। यम और नियम का जीवन में पालन करने से मनुष्य का मन स्वच्छ एवं मस्तिष्क शान्त-स्थिर बनता है। यम-नियम का पालन मनुष्य के चारों ओर सकारात्मक ऊर्जा का घेरा बनने लगता है। वाणी में प्रभाव, आचरण में श्रेष्ठता और व्यवहार में दिव्यता आने लगती है। ऐसे साधक पुरुष की शारीरिक और मानसिक ऊर्जा सकारात्मक कार्यों की ओर उन्मुख होने लगती है तथा नकारात्मक भाव एवं तामसिक राक्षसी वृत्तियाँ स्वत: ही नष्ट होने लगती है। यम-नियम को व्रत के रुप में धारण कर पालन करने वाले मनुष्य का तंत्रिका तंत्र पूर्ण रुप से स्वस्थ, विकारमुक्त एवं उन्नत अवस्था में बना रहता है तथा ऐसे व्यक्ति का जीवन समाज के लिए एक आदर्श होता है और इससे सिरदर्द, माइग्रेन और मिर्गी आदि तंत्रिका तंत्र के रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार यम-नियम का पालन तंत्रिका तंत्र के रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

15.2.2 षट्कर्म का अभ्यास

षट्कर्म की छ: शोधन क्रियाएँ भी मानव तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव रखती हैं। शोधन क्रियाओं में नेति, त्राटक और कपालभाति का अभ्यास अधिक लाभकारी प्रभाव रखता है।

चित्र 15.8: षट्कर्म का अभ्यास

नेति क्रिया से मस्तिष्क प्रदेश का शोधन होता है और नाड़ियाँ स्वच्छ होने का सकारात्मक प्रभाव तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है। सिरदर्द एवं माइग्रेन रोग में नेति क्रिया का नियमित अभ्यास करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। इसी प्रकार पेरेलाईसिस एवं पार्किन्सन रोगी को भी नेति क्रिया का अभ्यास करने से नाड़ियों पर मस्तिष्क का सन्तुलन बढ़ने से लाभ प्राप्त होता है। अर्थ यह है कि नेति क्रिया तंत्रिक तंत्र के रोगों में विशेष लाभ प्रदान करता है।

त्राटक मानसिक एकाग्रता और स्थिरता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। मनुष्य की बिखरी ऊर्जा एवं शक्तियाँ त्राटक क्रिया के अभ्यास से केन्द्रित होने लगती है। मस्तिष्क का अचेतन भाग भी जाग्रत अवस्था में आने लगता है। मानसिक तनाव, अनिद्रा, अस्थिरता, कमजोर स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता का अभाव आदि विकारों में भी त्राटक क्रिया बहुत लाभकारी प्रभाव देती है। कपालभाति क्रिया का अभ्यास करने से प्रश्वास के रुप से गन्दगियाँ शरीर से बाहर निकलती है। इसके साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर से सूक्ष्म स्तर पर प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है। कपालभाति का अभ्यास मस्तिष्क की न्यूरॉन सैल्स की क्रियाशीलता में भी वृद्धि करता है। इस प्रकार शोधन क्रियाओं के अभ्यास से तंत्रिका तंत्र स्वच्छ और क्रियाशील बनता है जिससे इससे सम्बन्धित सभी रोग दूर होते हैं।

15.2.3 योगासनों का अभ्यास

योगासनों के अभ्यास का फल महर्षि पतंजलि द्वंद सहने करने की क्षमता में वृद्धि के रुप में वर्णित करते हुए कहते हैं-

ततो द्वन्द्वानभिघातः।। **(पा. यो. सूत्र 2/48)**

यहाँ पर समझने का विषय यह है कि आसन का अभ्यास मस्तिष्क की सहन शक्ति और धैर्य क्षमता में वृद्धि करता है। इससे एक ओर जहाँ शरीर की क्षमता विकसित होती है तो वहीं दूसरी ओर मन तथा बुद्धि में धैर्य का विकास होता है। इसके परिणामस्वरुप सांवेगिक स्थिरता (Emotional Balance) प्राप्त होती है और विपरित परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता विकसित होती है। ताडासन, तियर्क ताडासन, वृक्षासन, वातायनासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, सिंहासन, वृक्षासन, गरुडासन आदि आसनों का अभ्यास तंत्रिका तंत्र के रोगों में बहुत लाभ प्रदान करता है। विभिन्न शोध यह स्पष्ट करते हैं कि सिंहासन का अभ्यास तंत्रिका तंत्र के रोगों में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। इनके साथ-साथ मंत्रों का वाचन करते हुए सूर्यनमस्कार का नियमित अभ्यास करने से सम्पूर्ण शरीर एवं मस्तिष्क में रक्त संचार भलि-भांति होता है और तंत्रिका तंत्र के रोग दूर होते हैं।

सूर्यनमस्कार का अभ्यास करने से मेरुदण्ड स्वस्थ एवं लचीली बनती है, साथ ही साथ सम्पूर्ण शरीर में फैली तंत्रिकाएँ सक्रिय एवं स्वस्थ बनती है जिसके परिणामस्वरुप मनुष्य का तंत्रिका तंत्र के सभी रोग दूर होते हैं और तंत्रिका तंत्र ऊर्जावान एवं रोगमुक्त बनता है।

इसके साथ-साथ ध्यानात्मक आसनों जैसे- पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन और शवासन का अभ्यास करने से मस्तिष्क एवं तंत्रिकाओं को आराम के साथ-साथ स्थिरता और ऊर्जा भी प्राप्त

चित्र 15.9: योगासनों का अभ्यास

होती है जिसका मनुष्य के तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन आसनों के अभ्यास से मानसिक तनाव, सिर दर्द, माइग्रेन, बैचैनी और अनिद्रा जैसे मानसिक रोगों में विषेश लाभ प्राप्त होता है। ताड़ासन और त्रिकोणासन आदि आसनों के अभ्यास से तंत्रिका तंत्र के रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

15.2.4 प्राणायाम का अभ्यास

प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रुप में प्रभावित करता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से अधिक मात्रा में शुद्ध प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन शरीर की कोशिकाओं को प्राप्त होती है। नियमित प्रात:काल प्राणायाम का अभ्यास करने से मस्तिष्क की न्यूरॉन सैल्स को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त होती है जिससे एक ओर जहाँ मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है तो वहीं दूसरी ओर इन महत्वपूर्ण कोशिकाओं की औसत आयु में वृद्धि होती है। सार

रुप में स्पष्ट करें तो नियमित प्राणायाम के अभ्यास से मस्तिष्क की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति तीव्र और दीर्घ बनती है, मानसिक एकाग्रता बढ़ने के साथ कठिन और जटिल विषयों को समझना आसान हो जाता है और सिरदर्द, माइग्रेन, मिर्गी, पक्षाघात और पार्किंसन आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। प्राणायाम के लाभों को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि योगसूत्र में कहते हैं-

ततः क्षीयते प्रकाशवरणम्॥ (पा. यो. सूत्र 2/52)

अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने से अज्ञानता का आवरण नष्ट होता है और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है। चूंकि मनुष्य की अधिकांश रोगों, समस्याओं और दुखों की जननी अविद्या के साथ नकारात्मक चिन्तन करना होता है जिससे सिर दर्द, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन जैसे गंभीर रोग उत्पन्न होते हैं। जबकि प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राणऊर्जा में वृद्धि के साथ-साथ अविद्या का नाश और आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है अतः प्राणायाम का अभ्यास इन सभी विकारों में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। योग ग्रन्थों के अनुसार भस्त्रिका प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से शरीर में स्थित 72 हजार सूक्ष्म नाड़ियों की शुद्धि होती है और इड़ा-पिगंला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित होने के साथ-साथ प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है। यह स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्म की भी एक उच्चतम् अवस्था होती है। इसी प्रकार भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास मस्तिष्क में सकारात्मक स्पंदन उत्पन्न करता है। नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास तंत्रिका तंत्र के रोगों में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। नाड़ी शोधन, अनुलोम-विलोम, शीतली, सीत्कारी, उज्जायी और भ्रामरी आदि प्राणायामों का विधिपूर्वक और नियमित अभ्यास करने से सिरदर्द, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन जैसे रोग जीवन में नहीं आते हैं।

15.2.5 प्रत्याहार का पालन

इन्द्रियों पर संयम का मनुष्य के तंत्रिका तंत्र पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन्द्रियों पर असंयम अथवा प्रज्ञापराध से तंत्रिका तंत्र विभिन्न प्रकार के विकारों से ग्रस्त हो जाता है। इन्द्रियों पर संयम करते हुए प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयपूर्व उठने, प्रातःकालीन भ्रमण, नियमित योगाभ्यास, सुव्यवस्थित दिनचर्या और शुद्ध सात्विक आहार का सेवन करने से मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र स्वस्थ बना रहता है। इन्द्रियों पर संयम करते हुए साप्ताहिक अथवा शुक्ल-कृष्ण पक्ष में एक बार विधिपूर्वक उपवास करने से सिरदर्द, अनिद्रा, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन आदि तंत्रिका तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

15.2.6 धारणा, ध्यान एवं समाधि का प्रभाव

योग में धारणा, ध्यान और समाधि को एक साथ सम्मिलित रुप से 'संयम' की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य के तंत्रिका तंत्र पर धारणा, ध्यान एवं समाधि सीधे और स्पष्ट रुप से अनुकूल प्रभाव डालती हैं। सकारात्मक सोच-विचार को धारण करने एवं अच्छे विषयों का ध्यान करने से तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं विकारमुक्त बनता है जबकि नकारात्मक सोच-विचार एवं गलत संगत तंत्रिका तंत्र को रोग ग्रस्त बना देती है। वर्तमान काल में बढ़ते तंत्रिकीय रोगों का मूल कारण नकारात्मक चिन्तन के साथ नकारात्मक वातावरणीय दशाएँ है। वर्तमान काल में समाज में बढ़ती हिंसात्मक

घटनाओं के दुष्प्रभाव से मन और मस्तिष्क दोनों ही विकारों से ग्रस्त हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में ही सिरदर्द, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन आदि रोग उत्पन्न होते हैं जबकि इसके विपरित सकारात्मक धारणा, ध्यान सकारात्मक अनुभूतियाँ करने से मस्तिष्क और सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनने के साथ सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके साथ-साथ तंत्रिका तंत्र के रोगों में निम्न अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए –

(क) अपथ्य आहार : चाय, कॉफी, चीनी, नमक आदि उत्तेजक एवं तामसिक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मैदा और मैदे से बने सभी खाद्य पदार्थों, कृत्रिम रंगों एवं रसायनों से युक्त बाजार की मिठाईयों व खाद्य पदार्थों का प्रयोग त्याग देना चाहिए। धूम्रपान, मद्यपान और नशीली दवाईयों को संकल्पशक्ति के साथ पूर्णरुप से त्याग देना चाहिए।

(ख) पथ्य आहार : प्रात:काल उषापान करते हुए प्रात:कालीन भ्रमण और नियमित योगाभ्यास करने के साथ अंकुरित आहार का सेवन, जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चोकर सहित रोटियों का सेवन, गाय का घी, बादाम, अखरोट, अंजीर, मुनक्का, पिस्ता आदि सूखे मेवे, मौसम के अनुसार हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मैथी, पालक, लौकी, तुरई, परवल, करेला, नींबू आदि का सेवन करना चाहिए। मौसमी ताजे फलों जैसे मौसमी, सन्तरा, अनार, आम, पपीता, अंगूर आदि का पर्याप्त सेवन करना चाहिए।

यूनिटगत प्रश्न 15.2

रिक्त स्थान भरिए :

(क) यौगिक क्रियाएँ मनुष्य के मन, मस्तिष्क और संपूर्ण तंत्रिका तंत्र को बहुत ..... रूप में प्रभावित करती हैं।

(ख) योग ग्रंथों के अनुसार भस्त्रिका प्रणायाम का नियिमित अभ्यास करने से शरीर में स्थित ..... हजार सूक्ष्म नाड़ियों की शुद्धि होती है।

(ग) योग में धारणा, ध्यान और समाधि को एक साथ सम्मिलित रूप से ..... की संज्ञा दी जाती है।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षाार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में तंत्रिका तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों का सामान्य परिचय देते हुए इनके लक्षणों का उल्लेख किया गया है और इसके उपरान्त इन रोगों की यौगिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि यम-नियम का पालन करने से मनुष्य का आचरण

श्रेष्ठ बनता है और अच्छी आदतों का सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है। यौगिक षट्कर्म का नियमित अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है जिससे तंत्रिकाओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं रोग मुक्त बनता है। तंत्रिका तंत्र को स्वस्थ, सक्रिय और रोग मुक्त बनाने में योगासन और सूर्यनमस्कार बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं। शरीर संर्वधनात्मक आसनों का अभ्यास करने से मस्तिष्क की और रक्त तीव्र बनता है जबकि रीढ़ लचीली बनती है। इसके साथ-साथ ध्यानात्मक आसनों का अभ्यास करने से मस्तिष्क की कार्यकुशलता और क्रियाशीलता में अभिवृद्धि होती है। इसका सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र पर पड़ता है।

यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि, तंत्रिका तंत्र के रोगों में प्राणायाम का अभ्यास विशेष लाभ प्रदान करता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से एक ओर जहाँ शुद्ध प्राणवायु तंत्रिका कोशिकाओं (न्यूरॉन) को प्राप्त होती है तो वहीं दूसरी और चित्त शान्त और स्थिर बनता है। इसी प्रकार इन्द्रियों पर संयम करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या का पालन करना और सकारात्मक विषयों को ग्रहण करने से इन रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। सकारात्मक चिन्तन के साथ विचारों में स्थिरता और अपने चारों और वातावरण में सकारात्मक अनुभूतियाँ करने से तंत्रिका तंत्र के सभी रोग समूल नष्ट होते हैं। यूनिट में यह भी समझाया गया है तंत्रिका तंत्र के रोगों में आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए और रोगावस्था से मुक्त होने के लिए रोगी व्यक्ति को सदैव अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का ही सेवन करना चाहिए।

यूनिटांत प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. अनिद्रा रोग के प्रमुख लक्षण लिखते हुए इसकीं यौगिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
3. पार्किन्सन रोग के प्रमुख लक्षण समझाते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा लिखिए।
4. टिप्पणियाँ लिखिए-
   (क) माइग्रेन की यौगिक चिकित्सा
   (ख) तंत्रिका तंत्र के रोगों में यम-नियम का महत्व

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

(क) सही (ख) सही (ग) गलत

15.2

(क) सकारात्मक (ख) 72 (ग) संयम

16

जीवनशैली सम्बन्धित रोग एवं उनकी यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली यूनिटों में आपने शरीर के महत्वपूर्ण तंत्रों से सम्बन्धित रोगों के लक्षण एवं कारणों के विषय में जाना और इन रोगों की यौगिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया। मानव शरीर में रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण आहार-विहार की विकृति एवं दिनचर्या पालन का अभाव होता है इसके फलस्वरुप शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है और शरीर में रोगों की उत्पत्ति होने लगती है। वास्तव में मनुष्य का आहर-विहार एवं दिनचर्या को सम्मिलित रुप से जीवनशैली कहा जाता है। जीवनशैली का मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। जीवनशैली के अनुशासित एवं सुव्यवस्थित होने पर मनुष्य का स्वास्थ्य उन्नत बना रहता है जबकि जीवनशैली की विकृति का दुष्प्रभाव मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के स्तर पर पड़ता है और नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रस्तुत यूनिट का विषय जीवनशैली जनित रोगों को जानकर उनकी यौगिक चिकित्सा को समझना है।

जीवनशैली का सामान्य अर्थ होता है-जीवन जीने का तरीका अथवा ढ़ंग। अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार और जिस रुप में अपना जीवन व्यतीत करता है उसे जीवनशैली कहा जाता है। इसके अन्तर्गत आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का समावेश होता है जिनके पालन करने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रुप से स्वस्थ रहता है। इसके साथ-साथ आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित आहार-निद्रा एवं ब्रह्मचर्य भी हमारी जीवनशैली का महत्वपूर्ण भाग होते हैं। आहार-निद्रा एवं ब्रह्मचर्य को स्वास्थ्य के उपस्तम्भ कहा गया है। अर्थात् यह तीन स्वास्थ्य के प्रमुख उपस्तम्भ होते हैं जिन पर ध्यान देते हुए इनका पालन करने से स्वास्थ्य का स्तर उत्तम बना रहता है। आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित उपरोक्त कारक हमारी जीवनशैली के प्रमुख घटक अथवा कारक होते हैं जिनका पालन करते हुए जीवनशैली को अनुशासित बनाया जा सकता है किन्तु इन कारकों का पालन नहीं करने पर हृदय रोग, तनाव, मधुमेह, मोटापा, उच्च-निम्न रक्तचाप

और थायरॉयड सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वर्तमान समय में मनुष्य की जीवनशैली विकृत होने के कारण यह रोग बहुत तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। वर्तमान समय में आंकड़ों पर दृष्टिपात करें तो 40 प्रतिशत से भी अधिक मौतें इन जीवनशैली जनित रोगों से हो रही हैं। यहाँ पर दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि 35 से 50 आयुवर्ग के मनुष्य इन रोगों की चपेट में बहुत अधिक आ रहे हैं। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में यौगिक चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती है। प्रस्तुत यूनिट में इन जीवनशैली जनित रोगों के यौगिक उपचार का वर्णन किया गया है।

उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- जीवनशैली जनित रोगों का सामान्य परिचय दे सकेगें;
- जीवनशैली जनित रोगों के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे;
- जीवनशैली जनित रोगों की यौगिक चिकित्सा पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- जीवनशैली जनित रोगों से बचाव के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की व्याख्या कर सकेंगे।

16.2 जीवनशैली जनित रोगों का सामान्य परिचय

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रत्येक मनुष्य प्रातः निश्चित समय पर उठता है और दिनभर के कार्य करता है। इसी प्रकार उसका सोने का समय भी निश्चित रहता है और खाद्य सामग्री, भोजन पकाने का ढ़ंग, भोजन ग्रहण करने का ढ़ंग भी निश्चित होता है। इसके साथ-साथ प्रातःकालीन भ्रमण, योगाभ्यास, ईश्वर उपासना, सोच-विचार और चिन्तन-मनन आदि को समुचित रुप से जीवनशैली (Life Style) कहा जाता है। इस जीवनशैली को अनुशासित एवं सुव्यवस्थित बनाने से मनुष्य का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नत रहता है जबकि जीवनशैली अनुशासनहीन और अव्यवस्थित होने पर शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इन रोगों के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह रोग धीरे-धीरे शरीर में प्रवेश करते है। किन्तु शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त यह जीर्ण एवं असाध्य रुप धारण कर लेते हैं जिससे ग्रस्त मनुष्य का जीवन बहुत कठिन बन जाता है। जीवनशैली जनित रोगों में हृदय रोगों एवं उच्च-निम्नरक्तचाप का वर्णन बहुत प्रमुख रुप से आता है। इसके साथ-साथ तनाव, चिन्ता और बैचेनी का मूल भी जीवनशैली के साथ जुड़ा होता है। वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता रोग मधुमेह भी जीवनशैली जनित रोगों की श्रेणी में आता है। मधुमेह को सहशताब्दी रोग घोषित किया गया है जिसकी उत्पत्ति में विकृत जीवनशैली प्रमुख कारक होती है। इसी प्रकार वर्तमान समय में फैल रहे थायरॉयड ग्रन्थि से सम्बन्धित समस्याएँ और मोटापा भी प्रमुख जीवनशैली जनित रोग है।

जीवनशैली जनित रोगों के सन्दर्भ में महत्पूर्ण बिन्दु यह है कि, इन रोगों के उपचार में दवाईयों और औषधियों से अधिक महत्वपूर्ण भूमिका जीवनशैली की ही होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इन रोगों के उपचार में सर्वप्रथम रोगी मनुष्य की जीवनशैली में ही परिवर्तन किया जाता है। जीवनशैली में परिवर्तन करने से इन रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है जबकि जीवनशैली में सुधार किए बिना इन रोगों का उपचार संभव नहीं होता है और यह रोग जटिल रुप धारण करने लगते हैं। इसके साथ-साथ जीवनशैली जनित रोगों के उपचार में यौगिक चिकित्सा भी बहुत महत्वपूर्ण एवं लाभकारी प्रभाव रखती है। इस प्रकार अब आपके मन में जीवनशैली जनित रोगों की जिज्ञासा और अधिक बढ़ गयी होगी अत: अब जीवनशैली जनित प्रमुख रोगों पर विचार करते हैं।

16.2 हृदय रोग

प्रिय शिक्षाथियों, हृदय मानव शरीर का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। इसके स्वस्थ रहने पर सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सुचारु रुप से चलती हैं जबकि हृदय में विकार उत्पन्न होने पर शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ बाधित होने लगती हैं। जीवनशैली के कारण हृदय सम्बन्धित निम्न प्रमुख विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं-

16.2.1 उच्च-निम्न रक्तचाप

मानव शरीर में सामान्यतया 5.5 लीटर रक्त उपस्थित होता है। इस रक्त की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि, शरीर में रक्त किसी भी स्थान पर रुकता नहीं है अपितु, प्रतिक्षण हृदय और रक्तवाहिनियों में परिभ्रमण करता रहता है। शरीर में रक्त जिस दबाव के साथ हृदय से रक्तवाहिनियों में बहता है उसे रक्तचाप कहा जाता है। जब हृदय सिकुड़ता है तो 120 mm of Hg का दबाव होता है जिसे सिस्टोलिक प्रेशर कहा जाता है जबकि, इसके विपरित जब हृदय फैलता है तो 80 mm of Hg का दबाव होता है जिसे डायस्टोलिक प्रेशर कहा जाता है। इस प्रकार स्वस्थ मनुष्य का रक्त चाप 120-80 mm of Hg होता है। जिसे स्फेमोमेनोमीटर नामक यंत्र की सहायता से मापा जाता है। परन्तु जब किन्ही कारणों या परिस्थितियों के प्रभाव से रक्तचाप इस सामान्य स्तर से अधिक अथवा कम होता है तब उस अवस्था को रक्तचाप रोग की संज्ञा दी जाती है। रक्तचाप

चित्र 16.1: उच्च-निम्न रक्तचाप

सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़ी महामारी है जिससे ग्रस्त होने वाले रोगियों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

इस रोग के दो प्रमुख प्रकार होते हैं। प्रथम उच्चरक्तचाप में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. तेज सिरदर्द के साथ पसीना आना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अचानक तेज हो जाना।
3. हाथों-पैरों में सूक्ष्म कम्पन होने के साथ श्वास फूलना।
4. संवेगों पर नियंत्रण का अभाव होने के साथ अधिक क्रोध और स्वभाव चिड़चिढ़ा हो जाना।
5. बैचेनी के साथ नींद में कमी होना और नाक से खून निकलना उच्चरक्तचाप के लक्षण हैं।

इस रोग का दूसरा प्रकार निम्न रक्तचाप होता है जिसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. सिर में हल्का दर्द के साथ हाथ-पैर ठंडे रहना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अनियमित हो जाना।
3. हाथों-पैरों में शक्तिहीनता के साथ कार्य में मन नहीं होना।
4. जी मिचलाना, उल्टी होना, धुंधला दिखलाई देना और बेहोशी होना निम्न रक्तचाप रोग के लक्षण हैं।

शरीर में उपरोक्त लक्षण रक्तचाप रोग की ओर संकेत करते हैं।

16.2.2 कोरोनरी धमनी रोग (Coronary Artry Disease)

यह हृदय से सम्बन्धित ऐसा रोग है जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। विकृत आहार-विहार का सेवन करने, शरीर में मोटापा, उच्चरक्तचाप, धूम्रपान अथवा अन्य कारणों के परिणामस्वरुप जब शरीर में हृदय से सम्बधित धमनियों में वसा जमने के कारण इनका आकार संकरा हो जाता है तब उस स्थिति में हृदय में रक्त संचार की क्रिया बाधित होने लगती है और सीने में तीव्र चुभन के साथ दर्द उत्पन्न होता है जिसे कोरोनरी आटरी डिजीज कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी व्यक्ति की शल्य चिकित्सा (एन्जियोप्लास्टी) कराई जाती है किन्तु इससे भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं होता है। वास्तव में यह जीवनशैली जनित रोग है जिसका उपचार जीवनशैली को अनुशासित किए बिना नहीं किया जा सकता है।

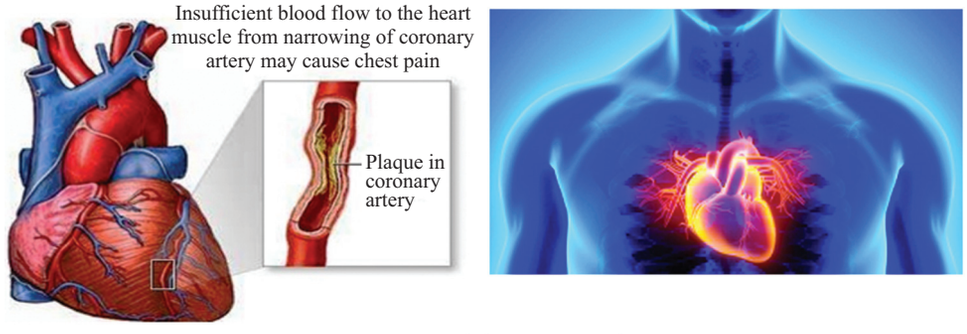

चित्र 16.2: कोरोनरी धमनी रोग

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ सुई के समान चुभन का होना इस रोग का सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण लक्षण होता है।
2. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ दिल का दौरा भी पड़ जाता है।
3. दीर्घ श्वास में परेशानी होने के साथ छोटी श्वासें आना एवं श्वासों का फूलना।
4. सीने में दर्द के साथ जी मिचलाना।
5. असामान्य रुप से बिना कार्य किए हुए बहुत थकान होना।
6. वक्ष में सूजन के साथ ठंडा पसीना आना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण हृदय से सम्बन्धित कोरोनरी आटरी डिजीज रोग की ओर संकेत करते हैं। कुछ परिस्थितियों में मनुष्य इसे पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मानकर पाचन तंत्र में जलन मानकर इस ओर ध्यान नहीं देता है जबकि ऐसी अवस्थाओं में बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि आगे चलकर यह गंभीर हृदयाघात (Heart attack) का कारण भी बन सकता है।

16.2.3 एंजाइना पेक्टोरिस रोग (Angina Pectoris Disaese) का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर के वक्ष स्थल में बांयी ओर उठने वाले दर्द को कई बार पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मानकर इसे अनदेखा कर दिया जाता है जबकि, कई बार मनुष्य इसे हृदयाघात मानकर बहुत परेशान हो जाता है जबकि, वास्तव में यह हृदय का एंजाइना पेक्टोरिस रोग होता है जिसमें हृदय की मांसपेशियों को कम मात्रा में रक्त आपूर्ति होने कारण वक्ष के बायें भाग में दर्द के साथ श्वास लेने में परेशानी होती है।

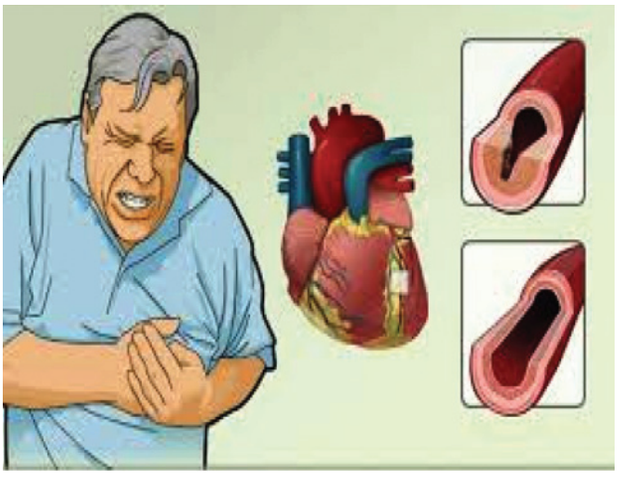

चित्र 16.3: एंजाइना पेक्टोरिस रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मानव शरीर में एंजाइना पेक्टोरिस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. सीने में बांयी ओर हल्का अथवा तेज दर्द होना इस रोग का सबसे प्रमुख मूल लक्षण होता है जो इस रोग की ओर संकेत करता है।
2. छाती में जलन के साथ बैचेनी महसूस होना।
3. सीने में जकड़न के साथ भारीपन महसूस होना।
4. सीने का दर्द कन्धों, गले और पीठ की ओर भी फैलना।
5. शरीर में कमजोरी के साथ कार्य करने में रुचि का अभाव होना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण हृदय के एंजाइना पेक्टोरिस रोग की ओर संकेत करते हैं। इस रोग की जाँच के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम (इ.सी.जी.) कराया जाता है।

इस प्रकार, जीवनशैली में विकृति के परिणामस्वरुप उपरोक्त हृदय रोगों की उत्पत्ति होती है। इन रोगों से गस्त होने पर मनुष्य की कार्यक्षमता कम होने के साथ-साथ हृदयाघात की संभावनाएं भी बढ़ जाती है। विकृत जीवनशैली का दुष्प्रभाव इन हृदय रोगों के साथ-साथ मानसिक तनाव को भी उत्पन्न करता है। मानसिक तनाव अनेक रोगों की जननी होता है जिसके प्रभाव से मनुष्य दुख:, कष्ट, उलझन, समस्याओं और पीड़ा के जाल में फसने लगता है।

16.3 मानसिक तनाव (Stress) का सामान्य परिचय एवं लक्षण

आधुनिक समय में मनुष्य के जीवनशैली में आये बदलाव के कारण तनाव हम सभी के लिए ऐसा व्यवहारिक शब्द बन गया है कि इसका प्रयोग दिन-प्रतिदिन में अनेक बार किया जाता है। यद्यपि, एक ओर यह मनुष्य को लक्ष्य की और जाने के लिए अभिप्रेरित भी करता है किन्तु इस तनाव की अधिकता मनुष्य के जीवन को रोगावस्था में ले जाती है। वर्तमान समय में इस रोग ने महामारी का रुप धारण कर लिया है जिससे ग्रस्त रोगियों की संख्या में दिनोंदिन बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है। स्वास्थ्य संगठन के अनुसार आने वाले समय में तनाव सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़ी और गंभीर महामारी का रुप धारण कर सकती है। तनाव का शरीर और मन दोनों पर गलत प्रभाव पड़ता है।

चित्र 16.4: मानसिक तनाव का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

1. जीवन की सामान्य क्रियाएँ एवं सामान्य कार्यों में बाधा उत्पन्न होना।
2. स्मरण शक्ति कमजोर होना, भूख नहीं लगना एवं उदास अथवा उत्तेजित रहना।
3. एकाग्रता का अभाव होने के साथ किसी भी कार्य में मन नहीं लगना।
4. सांवेगिक अस्थिरता के साथ भावनात्मक क्रियाओं जैसे अचानक रोना, हँसना अथवा क्रोधित होना।
5. लगतार सिरदर्द रहना, रक्तपाप बढ़ना, बाल झड़ना एवं सफेद होना।
6. हमेशा उलझन में रहने के साथ समस्याओं से घिरे रहने के साथ दुर्व्यसनों के साथ जुड़ जाना।

उपरोक्त लक्षण तनाव (Stress) की ओर संकेत करते हैं। तनाव की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि, इससे ग्रस्त होने का पता ही नहीं चल पाता है। अपितु, जब मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं और व्यवहार में अस्वाभाविक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं उस अवस्था में दूसरे व्यक्तियों को यह पता चलता है वह मनुष्य मानसिक तनाव से ग्रस्त हो चुका है और इसके उपरान्त यह तनाव उस मनुष्य की दिनचर्या का अंग बन जाता है और चाह कर भी मनुष्य इससे मुक्त नहीं होने में स्वयं को असक्ष्म अनुभव करने लगता है। वहीं दूसरी ओर तनाव से ग्रस्त होने पर भूख-प्यास और निद्रा जैसी मूलभूत जैविक क्रियाएँ असन्तुलित एवं अव्यवस्थित होने लगती हैं। इससे परिणामस्वरुप शरीर की चयापचय दर (Metabolism) भी असन्तुलित हो जाती है जिसके फलस्वरुप, विभिन्न शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है और धीरे-धीरे यह समस्या गंभीर रुप धारण करने लगती है। इस गंभीर अवस्था में मनुष्य का स्वयं पर (शारीरिक और मानसिक स्तर) नियंत्रण कम होने लगता और तथा मनुष्य दुर्व्यसनों की चपेट में आने लगता है। विभिन्न शोध इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि वर्तमान सभ्य और शिक्षित समाज में तेजी से बढ़ते दुर्व्यसनों में मानसिक तनाव एक महत्वपूर्ण कारक की भूमिका वहन करता है।

यूनिटगत प्रश्न 16.1

सही/गलत बताइए :

(क) शरीर में रक्त किसी भी स्थान पर रूकता नहीं है। ( )

(ख) वक्ष में सूजन के साथ ठंडा पसीना आना कोरोनरी आटरी रोग का लक्षण नहीं है। ( )

(ग) स्फेमोमेनोमीटर नामक यंत्र की सहायता से रक्तचाप मापा जाता है। ( )

16.4 मधुमेह रोग (Diabeties) का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मधुमेह पहले केवल उच्च वर्ग का रोग माना जाता था किन्तु आज विकृत जीवनशैली के कारण यह उच्च, मध्यम एवं निम्न अर्थात् समाज के हर वर्ग का रोग बन गया है। इसके बढ़ते प्रभाव

को देखते हुए इसे सहशताब्दी की बीमारी (Disease of the Millennium) भी घोषित किया गया है। यह ऐसी गंभीर बीमारी है कि कुछ चिकित्सक इसे धीमी मौत की संज्ञा भी देते हैं। इसकी गंभीरता को देखते हुए चारों तरफ इस बीमारी पर अनेक शोध किए जा रहे है किन्तु यह फिर भी काबू से बाहर हो रही है। रोग के भयानक प्रभाव को देखते हुए सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष 14 नवम्बर का दिन **''विश्व मधुमेह दिवस''** के रुप में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य मधुमेह रोग के प्रति जनसामान्य में जागरुकता उत्पन्न करना है क्योंकि जागरुक होकर ही इस रोग से बचा जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मधुमेह वर्तमान समय में विकृत जीवनशैली से फैलता जा रहा गंभीर जीर्ण रोग (Chronicl Disease) है जिससे ग्रस्त होने पर मनुष्य कमजोर होने लगता है और उसकी शारीरिक व मानसिक क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं-

मधुमेह के प्रमुख लक्षण

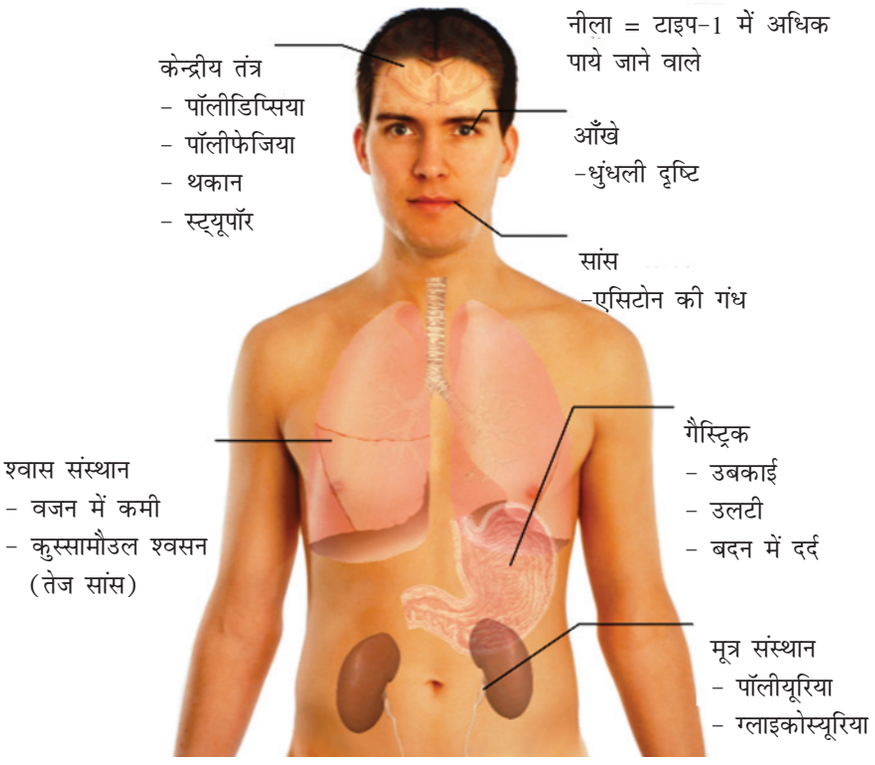

चित्र 16.5: मधुमेह रोग का सामान्य परिचय एवं लक्षण

मधुमेह रोग से ग्रस्त होने पर मनुष्य में निम्न लिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. बार-बार एवं ज्यादा प्यास लगने के साथ होंट सूखे रहना।
2. बार-बार पेशाब आना एवं पेशाब के स्थान पर चीटियों का आना।

3. लगातार भूख बने रहना एवं खाना खाने की इच्छा नहीं होना।
4. शारीरिक और मानसिक कमजोरी के साथ शरीर का वजन तेजी से कम होना।
5. चोट लगने पर घाव नहीं भरना एवं दृष्टि धुंधली हो जाना।
6. चेहरा कान्तिहीन हो जाना एवं कार्यों में मन नहीं लगना।

इस प्रकार शरीर में उपरोक्त शारीरिक और मानसिक लक्षणों के साथ हर समय थकान बने रहना, चेहरा तेजहीन होने के साथ लगातार शरीर का वजन कम होना मधुमेह रोग से ग्रस्त होने की ओर संकेत करता है।

16.5 मोटापा रोग (Obesity) का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय में मनुष्य दिन-प्रतिदिन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। वह नित्य नये संसाधनों की खोज कर रहा है। शरीर को आराम देने वाले नित्य नये साधनों का मनुष्य प्रतिदिन उपयोग कर रहा है। फ्रिज, कूलर ए.सी., बोयलर, हीटर, मोबाइल और इंटरनेट के नियमित प्रयोग से मनुष्य अक्रियाशील जीवन की ओर बढ़ता जा रहा है। मनुष्य को जो भोजन प्रकृति द्वारा उत्कृष्ट रूप में मिला है, वह उसे अत्यधिक संशोधित और महीन करके खा रहा है जिससे वह अनेक रोगों से भी ग्रस्त हो रहा है, इसके साथ-साथ मनुष्य का जीवनशैली सम्बन्धी बदलाव भी उसे रोगग्रस्त कर रहा है। इन सब कारकों का परिणाम मोटापा रोग के रुप में प्राप्त हो रहा है।

वर्तमान समय में मोटापा व्यापक रूप से बच्चों, बूढ़ों और व्यस्कों में व्याप्त हो रहा है। मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियों की संख्या में दिन दुगनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। मोटापा सिर्फ शरीर का फूलना, मोटा होना या कुरूप होना भर नहीं है, अपितु, यह एक बड़ी बीमारी का रूप धारण कर चुका है। विशेष रुप से समृद्ध समाज में श्रम अभाव से मोटापा रोग बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं –

1. पेट पर चर्बी बढ़ने के साथ शरीर फूलकर भारी होना।
2. पेट पर मोटापा बढ़ने के साथ कूल्हे, स्तन और हाथ-पैरों में अत्यधिक फैट जमा होना।
3. आन्तरिक अंगों जैस यकृत, मांसपेशियों, गुर्दो और हृदय आदि अंगों का आकार भी बढ़ने के साथ इनकी क्रियाशीलता कम होना।
4. शरीर में आलस्य, भारीपन होने के साथ कार्य में अरुचि उत्पन्न होना और निद्रा बढ़ जाना।
5. कम शारीरिक श्रम में ही श्वास फूलने के साथ अधिक पसीना आना।
6. शरीर भारी होने के साथ जोड़ों एवं कमर में दर्द रहना।
7. शरीर का आकार असन्तुलित होने के साथ व्यक्तित्व में विकृति उत्पन्न होना।

इस प्रकार वर्तमान समय में विकृत जीवनशैली के कारण उत्पन्न मोटापा रोग विश्व के अनेक देशों मे सर्वव्यापी समस्या के रूप में उभर रहा है। मोटापा एक ऐसी बीमारी है जो बढ़ने के साथ-साथ अनेक रोगों को जन्म देता है। यह शारीरिक अंगों की कुशलता को कम कर उनके कार्यों को प्रभावित करता है और इसके साथ मधुमेह, ब्रोन्काइटिस, आस्ट्रियोआर्थोराइटिस, उच्च रक्तचाप, एन्जाइना और हार्टअटैक आदि की समस्याओं में वृद्धि कर देता है।

16.6 थायरॉयड सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय एवं लक्षण

प्रिय शिक्षार्थियों, विकृत जीवनशैली का सबसे अधिक दुष्प्रभाव शरीर की अन्त:स्रावी ग्रन्थियों पर पड़ता है। इससे एक ओर जहाँ मधुमेह जैसे घातक रोग की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं तो वहीं दूसरी ओर थायरॉयड ग्रन्थि की क्रियाशीलता भी प्रभावित होती है। थायरॉयड मसूर के दानें के समान गले में स्थित ग्रन्थियाँ होती हैं जो हमारे शरीर की चयापचय दर को नियंत्रित करने का कार्य करती है। विकृत जीवनशैली के प्रभाव से कुछ अवस्थाओं में यह ग्रन्थि कम क्रियाशील हो जाती है जिसे हाइपोथायरॉडिज्म कहा जाता है। जबकि इसके विपरित कुछ परिस्थितियों में जब यह ग्रन्थि अधिक क्रियाशील हो जाती है उसे हायपर थायरोडिज्म कहा जाता है। यह दोनों ही रोगावस्थाएँ होती हैं जिसमें अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

चित्र 16.6: थायरॉयड सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय एवं लक्षण

इनका वर्णन इस प्रकार है-

16.6.1 हाइपो थायरॉडिज्म के लक्षण

हाइपो थायरॉडिज्म की अवस्था में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं-

1. शरीर में शक्तिहीनता के साथ वजन बहुत तेजी से बढ़ना।
2. श्वसन दर, हृदय गति एवं चयापचय दर कम हो जाना।
3. त्वचा रुखी, खुरदरी और भद्दी हो जाना और पसीना कम आना।
4. हाथ-पैर फूलने के साथ चेहरे पर सूजन आना और शरीर भद्दा हो जाना।

5. जोड़ों में दर्द और सूजन के साथ मांसपेशियों में दर्द और कार्य करने की क्षमता में कमी आना।
6. स्मरण शक्ति कम होना।
7. महिलाओं में मासिक चक्र अनियमित होना और प्रजनन क्षमता कम हो जाना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण हाइपो थायरॉडिज्म रोग का संकेत करते हैं।

16.6.2 हाइपर थायरॉडिज्म के लक्षण

हाइपर थायरॉडिज्म की अवस्था में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं–

1. शारीरिक क्रियाशीलता में असामान्य वृद्धि होने के साथ शरीर का वजन बहुत तेजी से कम होना।
2. श्वसन दर, हृदय गति एवं चयापचय दर असामान्य रुप से बढ़ जाना।
3. हाथों एवं शरीर के अन्य भागों में सूक्ष्म कम्पन प्रारम्भ होना एवं आँखें उभर कर बाहर आ जाना।
4. अधिक गर्मी लगने के साथ पसीना अधिक आना।
5. हृदय धड़कन बढ़ने के साथ उच्चरक्तचाप से ग्रस्त रहना।
6. स्वभाव उग्र एवं क्रोधी होने के साथ अनिद्रा की समस्या उत्पन्न होना।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षण हाइपर थायरॉडिज्म रोग का संकेत करते हैं।

यूनिटगत प्रश्न 16.2

रिक्त स्थान भरिए :

(क) प्रतिवर्ष ..... का दिन 'विश्व मधुमेह दिवस के रूप में मनाया जाता है।

(ख) विकृत जीवनशैली का सबसे अधिक दुष्प्रभाव शरीर की ..... ग्रन्थियों पर पड़ता है।

(ग) थायरॉयड ..... के दाने के समान गले में स्थित ग्रंन्थियाँ है।

16.7 जीवनशैली जनित रोगों की यौगिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, वास्तव में योग मूल रुप से चिकित्सा पद्धति नहीं है अपितु एक अनुशासनात्मक जीवनशैली है जिसका प्रारम्भ महर्षि पतंजलि **''अथ योगानुशासनम्''** योगसूत्र के साथ करते हैं। इस अनुशासन का सीधा सम्बन्ध हमारी जीवनशैली के साथ होता है। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग के आठ अंगों का पालन जीवनशैली को सुव्यवस्थित एवं सोच–विचार सकारात्मक बनाता है जिसके फलस्वरुप जीवनशैलीजनित रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ हठयोग के

सप्तसाधनों का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है और मन में सकारात्मक ऊर्जा का विस्तार होता है। इसका सकारात्मक प्रभाव जीवनशैलीजनित रोगों में पड़ता है। हठयोग के सप्तसाधनों का नियमित एवं विधिपूर्वक अभ्यास करने से जीवनशैलीजनित रोगों के उपचार में बहुत सहायता प्राप्त होती है। योग चिकित्सा के प्रभाव से यह रोग समूल नष्ट होते हैं।

योग चिकित्सा के अन्तर्गत सर्वप्रथम इन रोगों के उपचार में रोगी मनुष्य की दिनचर्या एवं आहार-विहार को सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित किया जाता है। प्रात:काल सूर्योदय पूर्व उठकर रात्रिकाल तांबे के बर्तन में रखे एक से डेढ़ लीटर जल का सेवन (उषापान) करने के साथ मनुष्य की दिनचर्या का आरम्भ होता है। प्रात:काल शौच आदि से निवृत्त होने के उपरान्त क्षमतानुसार भ्रमण करना और यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करने से मनुष्य रोगमुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। जीवनशैलीजनित रोगों के उपचार में निम्न यौगिक चिकित्सा दी जाती है-

16.7.1 षट्कर्म की शुद्धि क्रियाओं का प्रभाव

षट्कर्मो में जल नेति का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। प्रतिदिन जल नेति का अभ्यास करने से मस्तिष्कीय तनाव दूर होता है। जिससे तनाव और अवसाद आदि भावनाएँ दूर होती हैं और मनुष्य की चयापचय दर सन्तुलित बनती है।

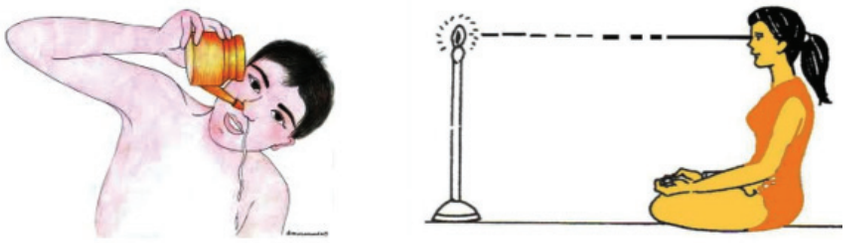

चित्र 16.7: षट्कर्म की शुद्धि क्रियाओं का प्रभाव

शोधन क्रियाओं में वर्णित शंखप्रक्षालन क्रिया का अभ्यास भी मोटापा रोग को कम करने में सहायक होता है। शंखप्रक्षालन एवं वस्ति क्रिया के अभ्यास द्वारा पाचन तंत्र का शोधन होता है और कब्ज रोग से मुक्ति मिलती है जिसका सकारात्मक प्रभाव पूर्व वर्णित सभी रोगों में प्राप्त होता है। इसी प्रकार नौली क्रिया का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदिप्त होती है जिससे पाचन क्रिया सुव्यवस्थित होने के साथ भूख अच्छी प्रकार लगती है और शरीर को सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं।

त्राटक क्रिया मानसिक स्थिरता और एकाग्रता उत्पन्न करती है। त्राटक क्रिया का अभ्यास करने से तनाव दूर होता है। इसके अभ्यास से हृदय को बल मिलता है और इससे मन में प्रसन्नता एवं उत्साह का विस्तार होता है जिससे शारीरिक क्रियाशीलता बढ़ती है और मोटापा रोग दूर होता है। इसके साथ-साथ मधुमेह और थायरॉयड सम्बन्धी रोगों में भी त्राटक क्रिया बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। षट्कर्म की शोधन क्रियाओं के अन्तर्गत कपालभाति का अभ्यास जीवनशैलीजनित

सभी रोगों के उपचार लाभ प्रदान करता है। कपालभाति के अभ्यास से विषाक्त तत्व शरीर से बाहर उत्सर्जित होते हैं जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और इन सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। यहाँ पर महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि उच्चरक्तचाप रोग की अवस्था में कपालभाति का अभ्यास नहीं करना चाहिए और शोधन क्रियाओं के अभ्यास में प्रयुक्त जल में नमक का प्रयोग नहीं करना चाहिए अपितु, नमक के स्थान पर सौंफ के जल का प्रयोग करना चाहिए।

16.7.2 आसन का प्रभाव

जीवनशैलीजनित रोगों के उपचार आसनों का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखते हैं। रोगी व्यक्ति को सूक्ष्म अभ्यास से प्रारम्भ करना चाहिए। पैरों से प्रारम्भ करते हुए सन्धि संचालन के सभी अभ्यास नियमित रुप से करने के उपरान्त योगासनों का अभ्यास करना चाहिए। ताड़ासन, त्रिकोणासन, वातायनासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, शशांकासन, भुजगांसन, धनुरासन, मकरासन और शवासन का अभ्यास हृदय रोगों एवं तनाव में लाभकारी प्रभाव रखता है। उच्च रक्तचाप की अवस्था में शवासन और योगनिन्द्रा का अभ्यास परन्तु यहाँ पर महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि हृदय रोगों एवं तनाव की अवस्था में शीर्षासन और सर्वांगासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। विशेष रुप से उच्च रक्तचाप एवं मानसिक तनाव की अवस्था में शीर्षासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वैज्ञानिक शोधों से स्पष्ट होता है कि वज्रासन, मण्डूकासन और अर्द्धमत्स्येन्द्रासन का अभ्यास मधुमेह रोग में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

मोटापा रोग में चक्रासन, धनुरासन, हलासन, उत्तानपादासन, नौकासन, पादहस्तासन, पवनमुक्तासन, चक्कीचालन और तितली आसन का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। इनके साथ-साथ शरीर की क्षमतानुसार सूर्यनमस्कार का अभ्यास करने से मोटापा रोग दूर होता है। मोटापे की अवस्था में कठिन आसनों का अभ्यास शरीर से पसीना निकलने तक करते रहना चाहिए। कठिन आसनों का अभ्यास करने से शरीर में स्थित अनावश्यक चर्बी पिघलने लगती है और मोटापा रोग से मुक्ति प्राप्त होती है। थायरॉयड ग्रन्थि से सम्बन्धित रोगों में मत्स्यासन और उष्ट्रासन का अभ्यास विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। इस प्रकार योगासनों का अभ्यास करने से जीवनशैलीजनित रोगों के उपचार में बहुत लाभकारी एवं महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं।

16.7.3 मुद्रा और बंध का प्रभाव

मुद्राओं का अभ्यास करने से आन्तरिक ऊर्जा में वृद्धि होती है जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवन शक्ति उन्नत बनती है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। जीवनशैलीजनित रोगों में आन्तरिक ऊर्जा को संचित करने हेतु मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध, जालंधर बन्ध, महाबन्ध, शाम्भवी मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए। इसके साथ-साथ विपरित करणी और शक्ति चालनी मुद्राओं का अभ्यास करने से आन्तरिक ऊर्जा जाग्रत होती है और रोग से मुक्ति प्राप्त होती है।

16.7.4 प्रत्याहार पालन का प्रभाव

प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रियों पर संयम करना होता है जबकि जीवनशैलीजनित रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण इन्द्रियों पर संयम का अभाव होता है। प्रत्याहार पालन करते हुए प्रातःकाल सूर्योदय

पूर्व उठना और सुव्यवस्थित दिनचर्या का पालन किया जाता है। इसके साथ-साथ इन्द्रियों पर संयम करते हुए शुद्ध-सात्विक और शरीर के लिए हितकारी भोजन का ही सेवन किया जाता है जिससे इन सभी रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। प्रत्याहार पालन के अन्तर्गत राजसिक और तामसिक आहार का त्याग करते हुए निश्चित समय रोग में हितकारी भोजन का सेवन किया जाता है और दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन करते हुए संयमित जीवन व्यतीत किया जाता है। इसका रोगावस्था में बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

16.7.5 प्राणायाम का प्रभाव

जीवनशैली के विकृत होने पर प्राणऊर्जा क्षीण हो जाती है और रोगों की उत्पत्ति होती है अत: इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। हृदय रोगों में दीर्घ श्वास-प्रश्वास का बहुत लाभ प्राप्त होता है। लम्बी और गहरी श्वसन क्रिया करने से हृदय को आराम मिलता है और रोग दूर होते हैं। उच्चरक्तचाप एवं मानसिक तनाव की अवस्था में दीर्घ श्वसन के साथ प्रणव जप के साथ अनुलोम-विलोम, नाड़ी शोधन, शीतली और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। जबकि निम्नरक्तचाप और मोटापा रोग को दूर करने में में सूर्यभेदी, भस्त्रिका और उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। विभिन्न शोध-अनुसंधानों से प्रमाणित हुआ है कि निममित प्राणायाम का अभ्यास करने से पेन्क्रियाज और थायरॉयड ग्रन्थि की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है जिससे मधुमेह और थायरॉयड सम्बन्धी रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। विशेष रुप से उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास थायरॉयड ग्रन्थि की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है जिससे हाइपोथयरोडिज्म रोग में लाभ प्राप्त होता है।

यहाँ पर महत्वपूर्ण बिन्दु है कि प्राणायाम का अभ्यास शान्त एवं स्थिर मन के साथ करना चाहिए एवं प्राणायाम को दिनचर्या का प्रमुख अंग बनाते हुए इसका अभ्यास नियमित रुप से एवं पर्याप्त समय तक करना चाहिए। उच्च रक्तचाप एवं तनाव की अवस्था में सूर्यभेदी एवं भस्त्रिका आदि ऊर्जा में वृद्धि करने वाले प्राणायाम का अभ्यास कदापि नहीं करना चाहिए।

16.7.6 ध्यान का प्रभाव

जीवनशैली विकृत होने पर स्वत: ही तनाव उत्पन्न होता है और तनाव का शरीर और मन दोनों स्तरों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पूर्व का अध्ययन भी स्पष्ट करता है कि हृदय रोगों, मोटापा, मधुमेह और थायरॉयड आदि रोगों के मूल में तनाव ही प्रमुख कारण होता है। इस तनाव को दूर करने का सबसे सरल एवं प्रभावकारी उपाय ध्यान का अभ्यास करना होता है। ध्यान करने से तनाव से मुक्ति प्राप्त होती है जिससे इन सभी रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। अत: प्रात:काल साफ-स्वच्छ स्थान पर सकारात्मक ऊर्जा का ध्यान करने से इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है। ध्यान के साथ-साथ ईश्वर की उपासना में लीन रहना, ईश्वर भक्ति के भजन गाना और श्रद्धाभाव से ईश्वर से प्रार्थना करने का भी बहुत सकारात्मक प्रभाव इन रोगों में प्राप्त होता है।

16.7.7 समाधि का प्रभाव

अष्टांग योग के शीर्ष सोपान के रुप में समाधि का वर्णन आता है। समाधि की अवस्था में साधक सर्वत्र ईश्वर की सकारात्मक सत्ता की अनुभूति करता हुआ अपने स्वरुप में लीन हो जाता है। साधक की इस अनुभति से समस्त दुख और क्लेश नष्ट होकर उसे आत्मानन्द एवं परमानन्द की प्राप्ति होती हैं। यह योग साधना की उच्चतम् अवस्था होती है परन्तु जब अष्टांग योग में वर्णित अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य आदि यम-नियम में दृढ़तापूर्वक स्थापित होकर मनुष्य इस सकारात्मक अनुभूति को ग्रहण करता है तब स्वत: ही उसकी जीवनशैली सुव्यवस्थित होने के साथ उसे इससे सम्बन्धित सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होने लगती है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि योग चिकित्सा के द्वारा जीवनशैली जनित रोगों जैसे हृदय रोग, उच्च-निम्न रक्तचाप, मोटापा, मधुमेह और थायरॉयड आदि में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। योग चिकित्सा में यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने के साथ-साथ पथ्य-अपथ्य आहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन रोगों की यौगिक चिकित्सा में रोगी मनुष्य को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए निम्न पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए-

(क) अपथ्य आहार : चाय, कॉफी, चीनी, नमक आदि उत्तेजक एवं तामसिक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मैदा और मैदे से बने सभी खाद्य पदार्थों, कृत्रिम रंगों एवं रसायनों से युक्त बाजार की मिठाईयाँ एवं अन्य प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थों का प्रयोग त्याग देना चाहिए। धूम्रपान, मद्यपान और नशीली दवाईयों को संकल्पशक्ति के साथ पूर्णरुप से त्याग देना चाहिए।

(ख) पथ्य आहार : प्रात:काल उषापान करते हुए प्रात:कालीन भ्रमण और नियमित योगाभ्यास करने के साथ अंकुरित आहार का सेवन, जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चौकर सहित रोटियों का सेवन, गाय का घी, बादाम, अखरोट, अंजीर, मुनक्का, पिस्ता आदि सूखे मेवे, मौसम के अनुसार हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मैथी, पालक, लौकी, तुरई, परवल, करेला, नींबू आदि का सेवन करना चाहिए। मौसमी ताजे फलों जैसे मौसमी, सन्तरा, अनार, आम, पपीता, अंगूर आदि का पर्याप्त सेवन करना चाहिए।

16.8 महत्वपूर्ण सुझाव

जीवनशैली जनित रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए रोगी मनुष्य को निम्न महत्वपूर्ण नियमों को अपने आचरण अर्थात् दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में अवश्य लाना चाहिए-

1. प्रात:काल सूर्योदय पूर्व निश्चित समय पर जागरण और रात्रिकाल में निश्चित समय पर शयन का नियम बनाना चाहिए।
2. प्रात:काल नियमित रुप से उषापान अर्थात् खाली पेट पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए।

3. प्रात:कालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास को दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए।
4. स्वयं पर संयम करते हुए निश्चित समय पर शुद्व-सात्विक एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करना चाहिए।
5. मानसिक संवेगों जैसे क्रोध, तनाव, इर्ष्या, घबराहट और बैचेनी आदि से स्वयं को मुक्त रखना चाहिए।
6. दिनचर्या का प्रबन्धन करते हुए प्रतिदिन कुछ समय रचनात्मक क्रियाओं जैसे सफाई करना, हस्त लेखन करना आदि, मनोरंजन एवं परोपकार में व्यतीत करना चाहिए।
7. जीवन में परिश्रम की आदत बनानी चाहिए एवं पूर्ण परिश्रम के उपरान्त सन्तोष के भावों को ग्रहण करना चाहिए।
8. जीवन में ईश्वर प्रणिधान को अपनाते हुए सदैव सुख-दुख में सम, प्रसन्न और सकारात्मक रहने का प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सुझावों का नियमपूर्वक पालन करने मनुष्य जीवनशैली जनित रोगों से मुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य के साथ आनन्द की अनुभूति करता है।

यूनिटगत प्रश्न 16.3

(क) त्राटक से शरीर पर प्रभाव बताइए।

(ख) जीवनशैली जनित रोगों में किए जाने वाले दो आसनों के नाम बताइए।

(ग) थायरॉयड ग्रन्थि से संबंधित रोगों में किन आसन के अभ्यास से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

आपने क्या सीखा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत यूनिट में जीवनशैली जनित रोगों की यौगिक चिकित्सा को समझाया गया है। यूनिट के प्रारम्भ में जीवनशैली के अर्थ एवं स्वरुप को समझाया गया है। जीवनशैली का अर्थ होता है मनुष्य का जीवन जीवने का तरीका अथवा ढ़ंग। जीवनशैली के अन्तर्गत आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का समावेश होता है। इसके साथ-साथ आहार-निद्रा और ब्रह्मचर्य पालन भी जीवनशैली का महत्वपूर्ण अंग होते हैं। इनका पालन करने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नत बना रहता है किन्तु इनका अपालन करने से हृदय रोग, उच्च-निम्न रक्तचाप, तनाव, मोटापा, मधुमेह और थायरॉयड से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों को जीवनशैली जनित रोग कहा जाता है। इन रोगों के उपचार में यौगिक चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है।

यूनिट में स्पष्ट किया गया है कि दिनचर्या को अनुशासित और सुव्यवस्थित करते हुए प्रात:काल सूर्योदयपूर्व उठने और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से इन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। प्रात:काल खाली पेट उषापान करने के शरीर का शोधन होता है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। षट्कर्म की शोधन क्रियाओं शारीरिक स्वच्छता एवं मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है। इसके साथ-साथ सूक्ष्म अभ्यास और आसन करने से रक्त संचार में वृद्धि होती है और अंगों की क्रियाशीलता बढ़ती है। प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों पर संयम स्थापित होता है और प्राणायाम के अभ्यास से प्राणऊर्जा बढ़ती है अत: इन्द्रियों पर संयम करते हुए प्राणायाम का अभ्यास करने से इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ ध्यान और सकारात्मक अनुभूतियाँ करने से भी इन रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है। यूनिट में यह भी समझाया गया है जीवनशैली जनित रोगों में आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए और रोगावस्था से मुक्त होने के लिए रोगी व्यक्ति को सदैव अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का ही सेवन करना चाहिए।

यूनिटांत प्रश्न

1. जीवनशैली जनित रोगों की यौगिक चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।
2. मोटापा रोग के प्रमुख लक्षण लिखते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
3. हाइपो थायरॉयड के प्रमुख लक्षणों एवं यौगिक चिकित्सा की व्याख्या कीजिए।
4. मधुमेह रोग के प्रमुख लक्षण समझाते हुए इसकी यौगिक चिकित्सा लिखिए।
5. टिप्पणियाँ लिखिए-
   (क) तनाव की यौगिक चिकित्सा
   (ख) जीवनशैली जनित रोगों में आसन एवं प्राणायाम का महत्व

यूनिटगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

(क) सही (ख) गलत (ग) सही

16.2

(क) 14 नवम्बर (ख) अन्त: स्रावी (ग) मसूर

16.3

(क) त्राटक क्रिया मानसिक स्थिरता और एकाग्रता उत्पन्न करती है।

(ख) वज्रासन, मण्डूकासन

(ग) मत्स्यासन, उष्ट्रासन